धर्म-परख

मानवता के कर-कमलों में

लेखक

कृष्ण मुरारी मिश्र

प्रकाशक

श्रीधर मिश्र बी० ए०

७८, अमानीगंज, अमीनाबाद रोड

लखनऊ.

प्रथमावृत्ति—सन् १९६५ ई०

मूल्य छै रुपये

मुद्रक

कृष्ण प्रिन्टिङ्ग प्रेस

१०, जगत नारायण रोड,

लखनऊ.

RASHTRAPATI BHAVAN,
NEW DELHI-4
राष्ट्रपति भवन,
नई दिल्ली-4

३१ मई १९६५ ।

प्रिय श्री मिश्र,

आपका दिनांक २४ मई का पत्र एवं "धर्म परख" की एक प्रति प्राप्त हुई, इसके लिए धन्यवाद । मुझे आशा है कि बहुत लोग इस पुस्तक का अध्ययन करेंगे और यह पाठकों के लिए मूल्यवान सिद्ध होगी ।

आपका,

स. राधाकृष्णन

(स० राधाकृष्ण)

आचार्य श्री कृष्ण मुरारी मिश्र,
प्रवर्तक, विश्व कल्याण संसद,
७८, भवानीगंज,
लखनऊ ।

उद्देश्य

[illegible] श्री [illegible] साधक रचना को देखने का मुझे [illegible] इसकी [illegible] में दिया है वह सर्वथा मनोहर [illegible] और स्वावलम्बित अन्त्यज जाति [illegible] वर्णन करते हुए जिस लेखक ने [illegible] और धर्म की परख [illegible] नाना प्रकार की स्थितियों [illegible] वास्तव में सब धर्मों अर्थात् [illegible] वास्तविक नैतिक [illegible]

[illegible] ओर देता है। जब तो हमारी [illegible] अपनी रुचि पर हर व्यक्ति को पूर्ण-[illegible] के अनुसार चलने की स्वतन्त्रता देते रहे। अन्य देशों की तरह हमारे देश में किसी एक धर्म को राज्य का या राष्ट्र का धर्म नहीं घोषित किया गया। [illegible] इसी कारण यहां पर [illegible] लोगों ने आश्रय पाया। इसी कारण यहां पर ईसाई और मुसलमानों [illegible] अपने सिद्धान्तानुसार रहने में कोई बाधा उपस्थित नहीं हुई। हिन्दू धर्म के [illegible] बौद्ध सिक्ख आदि यहां उत्पन्न हुए। सभी यहां पर [illegible] रहे। सबके ही अनुयायी भाई-भाई की तरह रहते थे।

[illegible] साम्प्रदायिक दुर्भावनाएं इसके [illegible] परिणाम यहां तक हुआ कि देश का विभाजन किया गया और विभिन्न धर्मों के मानने वालों में परस्पर की कटुता बढ़ती गयी। हमें अपनी पुरानी परम्परा को फिर स्थापित करना है। उसे पुनर्जागृत करना अत्यावश्यक है विशेषकर जब हमने अपने संविधान में देश को धर्मनिरपेक्ष राज्य का रूप दिया है और इसमें सब धर्मावलम्बियों को बराबर माना गया है।

पंडित कृष्णमुरारी मिश्र ने इसी उद्देश्य से इस पुस्तक को लिखा है कि हम यह पहिचानें कि सब धर्म वास्तव में एक हैं। देश और काल के अनुसार उनके प्रदर्शन मे रूप और रंग, भाषा और वाणी में अनिवार्य रूप से अन्तर हो सकता है पर सिद्धान्तत सब एक ही बात सिखलाते हैं और एक ही स्थान पर ले जाते हैं। जैसा भगवान श्री कृष्ण ने कहा है--

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्--
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।

यदि हमें संसार को वह शिक्षा देनी है जिसके लिए हमारे देश की सृष्टि की गयी थी और यदि हम अपने प्रति सच्चाई का व्यवहार करना चाहते हैं तो हमको यह नही भूलना होगा कि प्राणिमात्र भाई हैं और सबके श्रष्टा एक ही हैं। मैं आचार्य कृष्ण मुरारी मिश्र जी को इस पुस्तक को लिखने के लिए बधाई देता हूँ और मेरी शुभकामना है कि इसका अच्छा प्रचार हो और अधिकाधिक नर-नारी इससे लाभ उठावें, सब लोग इस बात को जाने, पहचाने और अपने जीवन मे कार्यान्वित करें कि धर्म की सच्ची परख यही है कि वह सब वाह्यरूप से विरोधी विचारों का समन्वय कर जाति मत, सम्प्रदाय, रंग-भेद-नीति पूँजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद आदि को अपनी माला मणियों में पिरोने की क्षमता रखें और हमें यह अनुभव करने की शक्ति दें कि जीवन के प्रत्येक क्षण में हम धर्म का ही स्वरूप पावें और उसकी गति-विधि मे धर्म को ही विचरण करना देखें।

सेवाश्रम, वाराणसी-१
दिनाक ९-५-१९६५ ई०

डा० श्री प्रकाश
भूतपूर्व राज्यपाल,
महाराष्ट्र तथा मद्रास

प्राक्कथन

धर्म-परख के विद्वान लेखक श्री कृष्ण मुरारी मिश्र जी ने युग की नाड़ी परखकर जिस अन्तर्दर्शन की गहनता में उतार कर एवं विश्व व्यापक दृष्टिकोण अपनाते हुए धर्म को संस्कृति, अध्यात्म, तत्व योग दर्शन, विज्ञान, समाज तथा राजनीति के मञ्च पर उतार कर कथोपकथन शैली में इस ग्रन्थ का प्रणयन किया वस्तुतः हिन्दी जगत में एक अनूठा प्रयास है।

यह ग्रन्थ धर्म का सार गर्भित स्वरूप और धर्म की वास्तविकता का प्रतीक है। ग्रन्थ कर्त्ता ने धर्म के बहुमुखी अनुभूतियों से भर कर धर्म के सार को निकालने का सफल प्रयत्न किया है।

प्रस्तुत रचना लेखक के ज्ञान-गाम्भीर्य द्वारा निर्मित एवं सुलझे हुए विचारों का द्योतक है। लेखक ने धर्म आदर्श के प्रस्तुतीकरण में वातावरण की सृष्टि का सृजन कर अपने अक्षुण्ण प्रतिभा कौशल का परिचय दिया है। इस प्रकार का प्रयास इस युग के लिए अनुपम योगदान है।

राजनीति के उन्मुक्त वातावरण में धर्म की प्रेरणा तथा आगे एक स्वस्थ समाज का प्रतिबिम्ब इस ग्रन्थ के स्वरूप को और भी अलंकृत करता है।

जाति, मत, सम्प्रदाय, वर्ग भेद, रङ्ग-भेद, पूंजीवाद, साम्राज्य-वाद, विस्तारवादी साम्राज्यवाद, समाजवाद, साम्यवाद, धर्म निरपेक्षवाद आदि अनेक वादों को धर्म क्षेत्र में उतार कर मानवता के हित एवं विकास में आदि पुरुष 'मनु' के द्वारा उपदेशित धर्म के दस लक्षणों से जिस प्रकार मानव को आबद्ध किया है वस्तुतः धर्म के सम्बन्ध में यह एक मौलिक दृष्टिकोण है।

इसके अतिरिक्त धर्म, सत्य और प्रेम के संवाद में प्रेम के सत्य स्वरूप को धर्म से अलंकृत कर जिस शैली का अनुकरण किया गया है वह विश्व बन्धुत्व की भावनाओं को जागृत कर आज के युग की अनेक समस्याओं को सुलझाने की क्षमता रखता है।

कतिपय पाठक इस कृति को उपन्यास की दृष्टि से देखेंगे तथा कुछ महानुभाव पात्रों के संवाद में नाटकीय-रस का अनुभव करेंगे ।

विद्वान लेखक ने मानव समाज को धर्म से [illegible] वसुधैव कुटुम्बकम् का सिद्धान्त अपनाया है और धर्माडम्बर से मानव-जगत को [illegible] उसके निर्मल स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है ।

भाषा परिमार्जित, प्रवाह युक्त एवं रोचक है । [illegible] व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सुन्दर अभिव्यञ्जन है ।

हिन्दी भाषा भाषी एवं साहित्य प्रेमियों, धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्रों, ग्राम पंचायतों, वाचनालयों तथा शिक्षा संस्थाओं में इस ग्रन्थ की उपयोगिता सिद्ध होगी ही, साथ ही विश्व की विविध भाषाओं में अनूदित होने पर यह ग्रन्थ धर्म के [illegible] स्वरूप को अलङ्कृत कर विश्व-बन्धुत्व की ज्योति जगायेगा ।

आचार्य युगल किशोर
एम० ए० ([illegible])
भूतपूर्व, उप कुलपति, लखनऊ विश्व विद्यालय
तथा
शिक्षा मन्त्री, उत्तर प्रदेश.

* दो शब्द *

ज्योतिष और तन्त्रशास्त्र के आचार्य पं० कृष्ण मुरारी मिश्र द्वारा लिखित 'धर्म परख' नामक ग्रन्थ को मैंने बड़ी रोचकता के साथ पढ़ा। इस अनूठे ग्रन्थ में पंडित-प्रवर ने 'धर्म क्या है' इस विषय का स्पष्टीकरण व्यक्ति और किसी समाज विशेष की संकुचित विचार-परिधि को हटाकर विश्वव्यापक दृष्टि से किया है। ग्रन्थ-रचना की शैली शुष्क, तार्किक और शास्त्रीय ढंग की न हो कर सरस साहित्यिक है। धर्म के अन्तर्गत अध्यात्म, तन्त्र, योग, अनेक मत, पंथ दार्शनिक वाद तथा विज्ञान, राजनीति, समाजशास्त्र आदि अनेक विषयों का प्रतिपादन उपन्यास की कथोपकथन शैली में किया गया है। कथोपकथन में भाग लेने वाले जिज्ञासु पात्र आधुनिक युग के शिक्षित सत्यान्वेषी, धर्म के वास्तविक स्वरूप को जानने की इच्छा रखने वाले युवक-युवती हैं। धर्म की सत्य व्याख्या और धर्म के अन्तर्गत आने वाले विविध विषयों के जैसे-ज्ञान, योग, और उपासना के मार्गों और व्यापारों के उद्घाटन करने वाले कुछ पात्र तो मानव रूपधारी देवगण हैं, कुछ मानव सद्वृत्तियों के प्रतीक मानव रूपधारी काल्पनिक व्यक्ति हैं और कुछ प्राचीन भारतीय परम्परा के तप और त्याग की प्रति-मूर्ति ऋषि-मुनि हैं। पुस्तक में ज्ञान और प्रेम की वृत्तियों का मानवीकरण रोचक है।

विद्वान लेखक ने आज की कूट राजनीति और संघर्ष के युग में अन्तर्राष्ट्रीय राष्ट्रसंघ की तरह 'इस ग्रन्थ में अन्तर्राष्ट्रीय-धर्म-संसद' की स्थापना कर धर्म के सार्वभौमिक तथा सार्वकालिक सार-रूप के प्रसारण की व्यवस्था की है और इस व्यापक धर्म के ज्ञान और इसके अनुकरण से सुख-शान्ति की कामना की है। इसी प्रकार सद्शिक्षा और सत्य धर्म के प्रचार के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना भी की है जिसका उद्देश्य है कि विश्व में सब मत पंथों की सामान्य सद् शिक्षाएं संग्रहीत कर अनेकरूपता में एकरूपता की स्थापना हो और विश्व का पाठ इस विश्व विद्यालय द्वारा लोग लें। 'धर्म परख' का मूल उद्देश्य लेखक के शब्दों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय-धर्म-संसद के सदस्यों की प्रतिज्ञाओं में निहित है जो इस प्रकार है :—

(१) "हम अन्तर्राष्ट्रीय-धर्म-संसद के सदस्य इस बात को स्वीकार करते हैं कि धर्म को जातीय बन्धनों से पृथक कर मानव मात्र के कल्याणार्थ नैतिकता के आधार भूत धर्म के दसों लक्षणों (धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः, धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्') से युक्त बिना किसी भेदभाव के एक संगठन का गठन कर विश्व में धर्म के प्रसारार्थ जन जागृति करेंगे तथा सत्य, अहिंसा, सदाचार आदि को प्रश्रय देकर आध्यात्मिक शक्तियों का अभ्युदय करेंगे।"

(२) "हम अन्तर्राष्ट्रीय धर्म संसद के सदस्य गण इस बात की घोषणा करते हैं कि धर्म की भेदात्मक विविधता को उन्मूलित कर उसकी समग्रता में एकरूपता का मार्ग प्रशस्त करते हुए विश्व के समस्त राष्ट्रों में घर घर धर्म के आधारभूत तथा सिद्धान्तों का प्रसार करने में सतत् प्रयत्न करते रहेंगे।" आदि-आदि—

लेखक ने अनेक वादों की जैसे जातिवाद, मतवाद, सम्प्रदायवाद, विविध धर्म वाद और अनेक राजनीतिवादों की आलोचना की है और उनमें सुधार के सुझाव देकर उनको आदि पुरुष मनु के द्वारा प्रतिपादित धर्म के दस लक्षणों में समाहित कर दिया। प्रस्तुत ग्रन्थ विविध शास्त्रों का एक प्रकार से संचित भण्डार है जिससे पाठक की अनेक विषयों की ज्ञान-वृद्धि होती है और लेखक के प्रगाढ़ पाण्डित्य, उनके उदार विचार और स्वस्थ समाज सृष्टि की सद्भावनापूर्ण कामना का परिचय मिलता है। पुस्तक की भाषा परिमार्जित प्रवाहपूर्ण और गम्भीर है। शास्त्रीय विषयों का प्रतिपादन उपन्यास की शैली में काव्य रस के पुट से रोचक बना दिया गया है। इसे मैं लेखक की सृजन पटुता कहूंगा।

मुझे विश्वास है कि इस ग्रन्थ का जीवन के विविध क्षेत्र में स्वागत होगा और यह उपयोगी सिद्ध होगा। मैं लेखक श्री मिश्र जी को बधाई देता हूं।

(दीन दयालु गुप्त)
एम. ए., एल. एल. बी., पी. एच. डी., डी. लिट्.
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष हिन्दी तथा
आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय,
लखनऊ



लेखक

वक्तव्य

धर्म, सृष्टि की आत्मा है इसी से त्रैलोक्य का सृजन हुआ। धर्म का सीधा अर्थ धारण करना है। संस्कृत में धर्म शब्द की व्युत्पत्ति 'धृ' धातु से हुई है। 'य धारयते इति स धर्मः' इन वाक्यों से धारण करने का ही भाव परिलक्षित होता है।

प्रकृति-गुणों के भेदाभेद से युक्त अपने स्वरूप को धारण करती है। आकाश-शब्द, नक्षत्र एवं सौर मण्डल को धारण करता है। मानव, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, शुक, मूषक, अण्डज, स्वेदज, जरायुज, उद्भिज, धान्य, तृण, वृक्ष, रस, फल, पुष्प, जन्म, मरण, पाप, पुण्य, तन्त्र, अलंकार आदि अगणित पद-पदार्थों के कोटि कोटि योनियों को पृथ्वी धारण करती है। जल एवं उससे उत्पन्न विविध जीव जन्तुओं तथा पद-पदार्थों को पाताल धारण करता है। अर्थात चराचर जगत एवं त्रैलोक्य की सत्ता को एकमात्र धारण करने वाला धर्म ही है।

पञ्चभूत—पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश को मानव की पञ्च ज्ञानेन्द्रियों ने प्रकृति-जन्य गुणों के अनुसार धारण किया। पृथ्वी का गुण गन्ध है अतः गन्ध को नासिका, जल को जिह्वा, अग्नि को नेत्र, वायु को त्वचा और आकाश तत्व को श्रोत्र ग्रहण कर अपने में धारण करता है। सारांश में पञ्च तत्वों को पांच ज्ञानेन्द्रियां अपने गुणों के अनुसार धारण करती हैं।

मानव के कल्याणार्थ हमारे देव विभूतियों ने सामान्य-धर्म, विशेष-धर्म और आपद-धर्म वस्तुतः धर्म को इन तीन श्रेणियों में मुख्य रूप से विभाजित किया है। धृति, क्षमा, दम अस्तेय, शुद्धि, इन्द्रिय-निग्रह, धी, विद्या, सत्य और शांति, धर्म के इन दस लक्षणों को सामान्य-धर्म की कोटि में बांध कर प्रथमता दी है। मानव जीवन के नित्य कर्म, आचार विचार, यम-नियम आदि से सम्बन्धित व्यविधानों को विशेष धर्म की परिधि में बांधा। पञ्चतत्वों के भेदाभेद, आकर्षण एवं विकर्षण तथा योगायोग से उत्पन्न, भूकम्प, जल-प्लावन, झञ्झावात, प्रलय ऐसी विविध दैवी आपदायें, अथवा मानव-कृत्य युद्ध, संघर्ष आदि अकल्पित एवं आकस्मिक घटनाओं को आपद धर्म की कोटि में सीमित किया है। इस प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति एवं सृजन-काल से धर्म की व्यापकता अविच्छिन्न सनातन सिद्ध होती है। अतएव सर्वतोभावेन

सुस्पष्ट है कि प्रथम हमे सामान्य धर्म [illegible] जगत मे उतारना है तब कही हम विशेष धर्म [illegible] जीवन मे ढाल कर उन्हें ग्रहण करने के लिये [illegible] सकेंगे ।

मानव जीवन के व्यावहारिक पक्ष मे धर्म और समाज [illegible] व्यक्त करते है । किसी वस्तु, समुदाय, विचार या उनके जीवन दर्शन और [illegible] धारण 'धर्म' कहलाता है । इस प्रकार शब्दों के भाव-मूलक [illegible] से 'धर्म' शब्द समाज का भावाभिव्यञ्जन करता है । हमारे ऋषि मुनियो ने अपने दिव्य-चक्षु से शब्दो की व्युत्पत्ति एवं उनके [illegible] की व्यापकता देते हुए धर्म को समाज के भीतर उतारा । मानव जीवन के जन्म से मरण पर्यन्त उसके प्रत्येक क्षण का संचालन धर्म ही से होता है । ऋषि मुनियों तथा वेद-प्रणीत वाक्यो से धर्म उनके अन्तर्निहित है । धर्म अपने [illegible] दर्शनो का विकास कर मानव का कल्याण करता है । [illegible] की कसौटी है । इसी पर कस कर प्राणी को मोक्ष पद प्राप्त होता है ।

सृष्टि की उत्पत्ति काल मे जाति, मत, वर्ग, सम्प्रदाय, [illegible], हिन्दू, मुसलमान ईसाई, पारसी, बौद्ध, जैन, सिख ऐसे विविध नामों की कल्पना भी मानव बुद्धि से परे थी । परन्तु जनसख्या की गतिविधि के अनुसार समाज [illegible] गुण कर्मानुसार विश्व की समस्त दिशाओं मे विकसित होने लगा । देश, [illegible] आदि के आधार पर विश्व के समस्त दैवी विभूतियों, ऋषि, मुनियो एवं अवतारी महापुरुषो ने विविध स्वप्रतिष्ठापित क्षेत्रो मे सात्विक तत्वों का विकास कर [illegible] मानव को धर्म के दसो लक्षणों के अन्तर्गत उतारा जो तत्तत् क्षेत्रो के जन समुदायों द्वारा शनै. शनैः अगणित मत, पन्थ, जातियों, सम्प्रदायों का [illegible] करते हुये अखिल विश्व में छा गया । कुछ समय पश्चात् तक धर्म के [illegible] स्वरूप सुनियन्त्रित रूप से टिका रहा परन्तु काल की गति [illegible] उत्पन्न हो गये । फलस्वरूप इन पर साम्प्रदायिक प्रभाव अर्थात् [illegible] चश्मा चढ़ने लगा जो विश्व मे संघर्षों का केन्द्र बन बैठा ।

आज के युग का सर्वोच्च वैज्ञानिक, [illegible] आदि, [illegible] वर्ग, पन्थ, सम्प्रदाय आदि के विकारों मे [illegible] मानव को [illegible] कल्याण-मूलक मार्ग की खोज मे एवं विश्व-बंधुत्व की भावना जगाने मे सतत प्रयत्नशील है । [illegible] भावना से मैंने मानव को धर्म क्षेत्र मे ही उतारकर धर्म का यथार्थ दिग्दर्शन कराते हुये एवं धर्माडम्बर से मानव को निकाल कर उसे धर्म के वास्तविक स्वरूप को परखने के लिये "धर्म-रहस्य" का [illegible] किया है । धर्म के [illegible] सिद्धान्तो [illegible]

कथोपकथन शैली में अभिव्यक्त करते हुये यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि धर्म किसी जाति, मत, पन्थ या सम्प्रदाय विशेष की परिधि तक सीमित नहीं है। विज्ञान-जगत को आलोकित करने वाला धर्म ही है। पुनीत राजनीतिज्ञों मे धर्म ही विचरण करता है। श्रीमद्भगवत गीता ने धर्म-क्षेत्र मे ही राजनीति को स्थान दिया है।

संयुक्त राष्ट्र संघ (यू० एन० ओ०) संसार की एक महान संस्था मानवता के मेरु दण्ड पर विश्व मे बिखरी हुई समस्त संस्कृतियों का समन्वय स्थापित करने एवं "वसुधैव कुटुम्बकम्" के आधार पर मानव जगत को एक दूसरे के निकट लाने में लगी है। वस्तुतः यह संस्था धर्म के मूल तत्वों, संस्कृति, समाज और ज्ञान के सद् लक्षणों का प्रतिनिधित्व करती है। इसी प्रकार सद्गुणों एवं सात्विक विचारों को धारण कर निष्पक्ष चिन्तन करने वाली संस्थायें, पीठ, संगठन, संस्थान, प्रतिष्ठान आदि धर्म के ही स्वरूप को अनुकूल करते हैं।

धर्म जगत के प्राणी अपने दृष्टिकोण से इस ग्रन्थ को आकेंगे ही परन्तु आज का साम्यवादी विचारधारा का मानव इसे आद्योपान्त अध्ययन कर धर्म के सच्चे स्वरूप को परखेगा और अपने जीवन मे धर्म को उतारेगा। इस ग्रन्थ में मैंने पूंजीवाद, साम्राज्यवाद, विस्तारवादी साम्राज्यवाद, समाजवाद, साम्यवाद, धर्म निरपेक्षवाद एवं अनेक वादों को धर्म की भूमि पर विवेचन करते हुये उतारा है।

धर्म के मूल-भूत दस लक्षणों को धारण करने वाले युग-धर्म के प्रवर्तक, विश्व-जन-नायक ब्रह्मीभूत श्री जवाहर लाल नेहरू, जिन्होंने धर्म-प्रसूनों को संसार मे बिखराकर नई चेतना जाग्रत कर दी। उस युग पुरुष के जीवन-दर्शन का पथ-प्रदर्शक यह 'धर्म-परख' जन-जीवन की भावनाओं को अनुप्राणित करने मे सहायक हो यही मेरी कामना है।

इस लघु प्रयास को मैंने चौदह परागों मे अनुबन्धित किया है—

प्रथम पराग:—

नवीन और उषा दो नागरिकों द्वारा धर्म का सत्यान्वेषण करने के लिये प्रस्थान, धर्म के लक्षण एवं उनकी व्याख्या; भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के स्वरूप का वर्णन, दया और क्षमा द्वारा धर्म का पथ-प्रदर्शन, मानस तीर्थों तथा शारीर तीर्थों की लक्षणाभिव्यञ्जना, असुर का आगमन तथा उनसे पात्रों का वाद-संवाद।

द्वितीय पराग —

कलि का आगमन तथा पात्रों से वाद-सवाद, ज्ञान की खोज, धर्मश्रुति का आगमन, अन्तर्राष्ट्रीय धर्म सम्मेलन, पांच देवताओं का प्रकट होना तथा उनके उपदेश,

अन्तर्राष्ट्रीय धर्म विश्वविद्यालय का आयोजन, गान्धू का मिलन एवं वार्तालाप, मुनि जी के दर्शन तथा पात्रों से वाद-संवाद।

तृतीय पराग:—

माया का रूप, धर्म और समाज की एक-रूपता, साम्प्रदायिक वाद-विवाद धर्म और चार्वाक मत तथा चार्वाक और आस्तिक मत का वाद-संवाद।

चतुर्थ पराग —

उषा और प्रदीप की हैदराबाद यात्रा, मुमताज, तूबीया बानू, अशरफ अली, डा० वी० एन० वाडिया, श्रीमती सोहराब का ट्रेन यात्रा में परिचय तथा कुछ दार्शनिक वाद-संवाद, अनन्तपाद श्री चक्रपाणि जी का आगमन, तन्त्र की व्युत्पत्ति, तन्त्र के तत्त्व बीज, तन्त्र की कलायें, तन्त्र में भक्ति की अवस्थायें, तन्त्र की मुद्रायें, तन्त्र के रूप तथा तन्त्र की मयूखायें; ब्रह्ममुहूर्त निर्णय, प्राणायाम के रूप, वार-प्रवृत्ति विचार तथा पञ्चमकार की व्याख्या।

पंचम पराग:—

शक्ति का आवाहन, लोक कल्याण महायज्ञ, पाश्चात्य वैज्ञानिकों तथा दार्शनिकों द्वारा यज्ञ-प्रशंसा एवं अन्वेषण, धर्म का दार्शनिक विवेचन।

षष्ट पराग—

तन्त्र और योग, धर्म और योग, योग की महत्ता, योग के आसन योग-साधन-विधि तथा फल, मुद्रासन तथा उनका फल।

सप्तम पराग —

प्रदीप का विदेश गमन, योगिराज का आगमन तथा उषा को वरदान, काल का निरूपण, उषा की हृदय-वेदना तथा उषा का विदेश गमन, उषा और प्रदीप की विवाह-वार्ता और विदेशों में भाषण, धर्म और विज्ञान का स्वरूप, मूर्ति पूजन पर डा० मैकडानल्ड के विचार।

अष्टम पराग —

प्रदीप के पिता कुलदीप सिंह, ज्येष्ठ भगिनी मञ्जुला, माता सूर्यभानु कुंवरि का प्रदीप से वाद-संवाद, प्रदीप और उषा के विवाह सम्बन्ध में वार्ता, दैवज्ञ द्वारा जन्माङ्गों पर विचार एवं निर्णय, धर्म सभा का आयोजन, धर्म और जाति बन्धन, समस्त जातियों मे परस्पर विवाह सम्बन्ध पर शास्त्रार्थ।

नवम पराग.—

ग्रामीणों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय विवाह पर वार्ता, धर्म गुरु का वर्ण व्यवस्था पर भाषण, उल्लासपूर्ण वातावरण, प्रेम का आगमन. धर्म और परत्म मे प्रेम का स्थान-

संवाद, पाप-पुण्य, रजोगुण, सतोगुण, हिंसा-अहिंसा, धर्म और जाति, धर्म और जाति परिवर्तन, धर्म और रङ्गभेद-नीति, पूंजीवाद, साम्राज्यवाद, साम्यवाद, धर्म-निरपेक्षवाद, समाजवादी-धर्म-निरपेक्षवाद आदि में धर्म का सम्बन्ध, धर्म और संस्कृति, धर्म और प्रेम, प्रेम-धर्म द्वारा साम्यवाद और साम्राज्यवाद की एकरूपता, धर्म और रजोगुणी प्रेम, परम और प्रेम का वाद-संवाद तथा धर्म गुरु का उपदेश।

दशम पराग.—

दर्शन शब्द की व्यापकता, श्रौत—दर्शन, उपनिषद्, जैन-दर्शन, बौद्ध-दर्शन, न्याय-दर्शन, गीता-दर्शन, वैशेषिक-दर्शन, सांख्य-दर्शन, मीमांसा-दर्शन, अद्वैत-वेदान्त दर्शन, वैष्णव-दर्शन, निम्बार्क-दर्शन, रसेश्वर-दर्शन, पाश्चात्य-दर्शन आदि पर वाद-संवाद।

एकादश पराग.—

उषा की नाम शुद्धि, दत्तक पुत्री संस्कार, दैवज्ञ द्वारा उषा का धर्म-पुत्री के रूप में संस्कार-समारोह, नर-नरेशों का आगमन, राजकुमार श्री विभूति नारायण सिंह जी का उत्सव में आगमन तथा उषा से प्रभावित होकर बम्बई राज-महल आने के लिये उषा को आमन्त्रित करना।

द्वादश पराग:—

हंसकुंवरि और उषा का बम्बई प्रस्थान, राजकुमार के साथ अजन्ता केव की यात्रा, उषा और राजकुमार का परस्पर स्नेह-स्पन्दन, उषा के लिये राजकुमार द्वारा रत्नाभूषण लेना, देव दर्शन के लिये प्रस्थान, उषा और राजकुमार का प्रेम सम्बन्धी मर्म-स्पर्शी वाद-संवाद, उषा का दैवी चमत्कार, उषा और राजकुमार की आध्यात्मिक वार्ता, प्रदीप की रुग्णता पर उषा द्वारा दैवी शक्ति का आवाहन।

त्रयोदश पराग:—

बम्बई में उषा और राजकुमार से डा० रिचार्ड फिलिप के परिवार का अचानक मिलन, डा० फिलिप की एकमात्र पुत्री भारतीय दर्शन की विदुषी कुमारी मार्गेट का राजकुमार विभूति नारायण सिंह से परस्पर दार्शनिक वाद-संवाद एवं एक दूसरे से प्रभावित होना, डा० फिलिप, श्रीमती फिलिप, कुमारी मार्गेट, श्रीमती हंसकुंवरि, राजकुमार और उषा का परस्पर आध्यात्मिक, वैज्ञानिक तथा भौतिकवाद पर वाद-संवाद, उषा द्वारा राजकुमार और कुमारी मार्गेट से विवाह कराने का सङ्कल्प, प्रदीप का बम्बई आगमन।

चतुर्दश पराग —

प्रदीप का स्वागत, राजकुमार, प्रदीप, उषा, कुमारी मार्गेट, डा० फिलिप तथा श्रीमती फिलिप का परस्पर वाद-संवाद, राजकुमार के पिता महाराजाधिराज श्री दिग्विजय सिंह और माता महारानी यशोधरा का बम्बई आगमन तथा उनका भव्य स्वागत, सभी पात्रों से परिचय, महाराजाधिराज, महारानी, कुमारी मार्गेट, उषा, डा० फिलिप, प्रदीप, हंसकुंवरि का परस्पर वाद-संवाद, महाराजा और महारानी का उषा से प्रभावित होना, कुछ आध्यात्मिक वार्ता तथा उषा से धर्म-दीक्षा देने के लिये आग्रह, उषा द्वारा धर्म दीक्षा, उल्लासपूर्ण वातावरण, राजकुमार और कुमारी मार्गेट की विवाह चर्चा, अनेक तर्क वितर्क तथा उषा द्वारा शास्त्रीय समाधान, राजकुमार और कुमारी मार्गेट तथा उषा और प्रदीप की परिणय-वेला, शुभ-कामनायें तथा अभिनन्दन।

इस लघु प्रयास मे मुझे जिन-जिन ग्रन्थों ने प्रेरणा दी उन उन ग्रन्थों एवं उनके लेखकों का मै सदा आभारी रहूँगा ही परन्तु मैं अपने परम स्नेही चिरञ्जीव प्रो० रमेश चन्द्र अवस्थी, डी. ए. वी. कालेज, लखनऊ, का विशेष आभारी हूं जिन्होंने साहित्यिक भावनाओं से इस कृत्य को अलंकृत करने मे अपना यथाशक्ति सहयोग दिया है।

इस ग्रन्थ की उपादेयता देख कर उत्तर प्रदेश सरकार ने इसके प्रकाशन हेतु अपने विवेकाधीन कोष से जो धनराशि देकर मेरा उत्साह वर्धन किया है उसका मैं सदैव कृतज्ञ रहूगा। भूतपूर्व शिक्षा मन्त्री आचार्य जुगुल किशोर तथा लखनऊ विश्वविद्यालय, फैकल्टी आर्टस के डीन तथा उत्तर प्रदेश सरकार की हिन्दी समिति के अध्यक्ष श्री डा० दीनदयाल गुप्त जी का मैं अत्यन्त आभारी हूं जिन्होंने इस पुस्तक की महत्त्वता देख कर राज्य सरकार से आर्थिक सहायता दिलाने में अपना पूर्ण सहयोग दिया। राज्य के शिक्षा मंत्री श्री कैलाश प्रकाश जी, शिक्षा सचिव, उप सचिव तथा शिक्षा विभाग के समस्त अधिकारी गणों के प्रति भी आभार प्रदर्शित करता हूं जिन्होंने इस कृति के प्रकाशन में अपने सौजन्यवश यथानुरूप यथोचित धनराशि दिलाने की कृपा की।

आदि कवि महर्षि वाल्मीक, वेदव्यास, कालिदास, बाण भट्ट, भवभूति, चार्ल्स डिकेन्स, सर वाल्टर स्काट, टालसटाय, टामस हार्डी, मैक्सिम गोर्की, एलेक्जेन्डर डूमा तथा प्रेमचन्द आदि विश्व के महान लेखकों ने मानवीय सत्य को प्रतिभासित करने के लिये जिस प्रकार काल्पनिक पात्रों का आश्रय लिया उसी प्रकार मैंने काल्पनिक पात्रों की रचना कर धर्म के सत्य को अभिव्यक्त करने की चेष्टा की है।

कह नहीं सकता कि इस लघु प्रयास द्वारा मानवता की सेवा करने में मैं कितना सफल हो सका परन्तु इसके अध्ययन से एक भी प्राणी का ध्यान इसके प्रति यदि आकृष्ट होगा तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूंगा ।

यद्यपि मैंने शुद्धि-पत्र लगा दिया है, इसके अतिरिक्त भी यदि दृष्टि-दोष तथा मुद्रण में जो त्रुटियाँ रह गई हों उन्हें पाठक-गण अपने सौजन्यवश सुधार कर हमें क्षमा करेंगे ।

वैवस्वत मनु आर्यों के आदि पुरुष तथा मानव-सभ्यता और संस्कृति के प्रथम प्रतीक हैं । उच्छृंखल-जीवन तथा विशृंखलित-समाज को मनु ने नियमित-जीवन एवं भावी विकास की परम्परा प्रदान की । मनुस्मृति, मनु की सर्व श्रेष्ठ रचना है जिसके नियमों के अन्तर्गत आर्य-जीवन एवं वैदिक सनातन-धर्म गतिशील हुआ ।

मानव, मानवता के श्रेष्ठ गुण ग्रहण करता हुआ संसार में सुख और समृद्धि का पात्र बने अतएव मनु ने मानव को धर्मविभूति होने के लिये धर्म के दस लक्षणों का उल्लेख किया जिनके द्वारा ही जन-जीवन जनार्दन मय हो सकता है ।

मैंने अपने जीवन के चिन्तन एवं मनन के क्षणों में मानव का सर्व श्रेष्ठ कल्याण कर्त्ता देव श्रेष्ठ 'मनु' को ही पाया । मनु के जीवन दर्शन में ही मुझे पूर्ण विकसित मानव के दर्शन हुये । अतएव इन्हीं दस लक्षणों को आधार मानकर मैंने इस नाटक को कल्पना के सूत्रों से आबद्ध कर दिया । आदि कवि महर्षि वाल्मीकि ने इन्हीं दस लक्षणों से युक्त अपने महान नायक 'राम' का चरित्र दर्शाया । उसी भाव-समरसता से मैंने भी कतिपय पात्रों की कल्पना की ।

श्रेष्ठतम आर्य महा-मानव, समाज एवं शासन नियामक उस महान् 'मनु' को अभिनन्दन करता हुआ अपनी अभिव्यक्ति महाकवि कालिदास के ही शब्दों में प्रगट करता हूँ —

वैवस्वतो मनुर्नाम, माननीयो मनीषिणाम् ।
आसीन्महीक्षितामाद्यः, प्रणवश्छन्दसामिव ॥

७८ भवानीगंज
लखनऊ
माघ शुक्ल दशमी, सं० २०२१ वि०
गुरुवार ११ फरवरी १९६५ ई०

कृष्ण मुरारी मिश्र

शुद्धि-पत्र

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
शुल्क	शुक्ल	१	१
कोध	क्रोध	३	३०
सभा	सभी	४	२
हा	हो	४	५
मूर्गी	मूर्गों	७	८
चिरपुवा	चिरौवा	७	१८
विरमत	विस्मित	८	२१
अलोकित	आलोकित	९	७
अस्तर	स्तर	१३	१८
पञ्चम	पंचम	१३	१८
पंथिको	पथिकों	१५	१७
विनम्न	विनम्र	१७	२३
वायर	वयार	१६	१
कि कारण	कि क्या कारण	,,	१८
सा	सी	२०	१०
ज्यूं	ज्यों	२४	१२
कान्ठ	कंठ	२८	१९
अलङ्कृत	अलंकृत	२९	२०
सिख्ख	सिख	२९	२९
दुष्कर्म	दुष्कर्म	३१	३
अंत	अति	३२	२६
शूलयपाणि	शूलपाणि	३४	१५
अस्तबक	स्तबक	३८	५

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
प्रतात	प्रतीत	३८	८
रमणी यतास्ति	रमणीयतास्ति	३९	[illegible]
मीनाजनी	मीनाक्षी	४५	२१
यही	नहीं	५६	१७
मुनि	मूर्ति	५३	१४
उत्तीर्ग	उत्तीर्ण	५७	२७
जा	नी	५९	७
जोश्मशान	जो श्मशान	६०	१०
योगिन	योगिनि	६२	१०
६४००	६४०००	६२	२३
गोचर	गोवर	६३	१३
पर	पड़ा	६३	१३
कुलाम्बिका	कुलाम्बिका	६४	३
मद्रा	भद्रा	,,	७
गका	गाका	,,	१०
बरापरा	परम्परा	,,	१६
पञ्चगोपरि	पचांगोपरि	६५	११
दवी-आपदा	दैवी आपदा	६७	३
अन्तरक्षितिज	अन्तक्षितिज	,,	२९
उपलब्धि हो	उपलब्धि न हो	७०	३०
अत्यन्त	अत्यन्त	७७	१८
पुनरुज्जीवित	पुनरुज्जीवित	७७	२५

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
गैमवा	मेघवा	७८	३
वत्वो	नत्वो	७६	३
कोइ	कोई	,,	२१
प्रवृतियां	प्रवृत्तियां	७९	२८
पाय	गुदा	९३	८
बढांता	बढाता	९५	२
स्तम्भव	स्तम्भन	९६	२५
जात	जाति	९९	३
पाय	गुदा	,,	१४
ग्रों	ओं	१११	२१
अ गूठी	अंगूठी	,,	२३
सभी	मभा	११२	२३
वपने	अपने	१३२	२९
अनि	आदि	१३४	११
वैश्व	वैश्य	,,	२०
अहम्	अहम्	१४७	२६
इजिप्ट	इजिप्ट	१५१	२१
कसा	कैसा	१५२	१०
हीते	होते	१५४	१५
सम्यवादी	साम्यवादी	१५५	६
महअ-स्तित्व	सह-अस्तित्व	१५६	२७
ओर	और	१५७	१५
त थाज्ञान	तथा ज्ञान	१६३	११
कितना	देवी	,,	२५
अधर्व-संहिता	अथर्व-सहिता	१६४	१५
अर्थवेद	अथर्व वेद	१६६	७
उपनिदों	उपनिषदो	,,	७
भाष्ग	भाष्य	,,	१३
ओर	और	१६७	१८

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
आत्मप विवत्रता	आत्म पवित्रता	१६९	१२
का	मे	१७०	१७
आवक	श्रावक	१७४	१६
वृद्धि	वृष्टि	१७४	२१
दर्शनिक	दार्शनिक	१७५	२८
कहलाला	बतलाया	१७६	९
मीमोसात्मक	मीमासात्मक	,,	१८
आमानुभूति	आत्मानुभूति	१७८	१६
सम्पूणं	सम्पूर्ण	१८०	६
स्थित प्रज्ञ	स्थित-प्रज्ञ	१८१	७
यतोडम्युदय	यतोऽभ्युदय	१८२	१७
सांख्य दर्शन	साख्य दर्शन	१८३	११
उपत्ति	उत्पत्ति	,,	२१
प्रयक्ष	प्रत्यक्ष	,,	२३
की	का	१८६	१
भिन्न अभिन्न	भिन्न-अभिन्न	,,	२६
आमा	आत्मा	१८७	१८
वक	थक	१९०	१
अलौमिक	अलौकिक	१९१	७
निर्धषण	निर्घर्षण	१९२	५
इच्छ	इच्छा	१९५	५
चिरत्नग	चिरन्तन	,,	१८
रहा	रहा है	१९६	६
वैदकाचार्य	वैदिकाचार्य	१९९	१५
नके	उनके	२००	३
वही	वही	२०२	२
देवज्ञ	दैवज्ञ	२०६	२
पञ्चयी	पंचमी	,,	२२
था	थी	,,	,,

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
तषा	तृषा.	२०७	१
बताय	बतायें	२०८	६
घटे	घन्टे	२०९	१५
सौनन्य	सौजन्य	,,	२६
हाने	होने	,,	.
नके	उनके	२०६	३
बताय	बतायें	२०८	९
अपनी	अपने	२११	१९
विचुम्बित	विचुम्बित	२१४	७
स्नेहमया	स्नेहमयी	२१५	३
कुट	कूट	२१७	७
इतवी	इतनी	२१८	१२
घबडा	घबड़ा	२१८	१४
किमबिहि	किमिवहि	२२०	२८
मंडमा	मंडन	,	,,
माकृतीनाम्	नाकृतीनाम्	,,	,,
हि सुन्दर	सुन्दर है	२२१	१
द्रव्य	द्रव्य	२२३	७
नयनो	नयनों	२२४	१३
वैकल्प	वैकल्य	२२४	१४
कछ	कुछ	२२५	२४
,,	,,	,,	२७
अस्वस्थ	अस्वस्थ	२२६	७
इमी	इस	२२६	१४
कछ	कुछ	,,	२१
निष्प्राणाकर	निष्प्राण कर	२२९	१८
अचना	अधिक	२३०	१४
ध्रात्म तत्व	आत्म-तत्व	२३४	७
तत्व-क्षान	तत्व-ज्ञान	२३८	१
शिसके	जिसके	२४०	१७
मुग्ध लावण्य	[illegible]	[illegible]	१२
गूढ़ मैत्री	गूढ़ मैत्री	२४२	२१
सम्मिलन	सम्मिलित	२४३	१६
सार्थक	मार्ग	[illegible]	१२
हमारी	हमारी	२५०	२८
स्फुलिंक	स्फुर्लिंग	२५०	१२
आपके	आपके	२५१	३
वर्षा	वर्षा	२५२	१४
प्रतिबिम्बित	प्रतिबिम्बित	२५४	९
ज्ञान	[illegible]	२५४	५
जाप	[illegible]	२५५	५
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
मौन है	मौन क्यों है	२५८	११
का	की	[illegible]	१०
में	में	[illegible]	१५
विश्रब्ध	विश्राम	[illegible]	२५
मारी	कुमारी	२६०	२९
होग	होगा	[illegible]	५
और	और	२६५	१२
अन्तरक्षितिज	अन्तर्क्षितिज	[illegible]	१५
बिठाना	बैठाना	[illegible]	२८
ने	नों	[illegible]	[illegible]
अगुणान	मुगान	२६९	६
प्राण वल्लभे	प्राण वल्लभा	,,	१७
द्रगो	दृगो	,,	१८
विश्रुत	विश्रुत	[illegible]	१
लय	[illegible]	,,	२३
वक्षस्थल	स्कन्ध	२७१	१४
हृदयानिकूल	हृदयाभिनन्दन	,,	२२

प्रथम पराग

धर्म-परख

> यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
> अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
> परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
> धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥१॥

चैत्र शुक्ल की पूर्णिमा तिथि और गुरुवार का प्रभात काल, विश्व को आलोकित करने वाले भुवनभास्कर जब नई नई कमल की कलियो के सम्पुटो को अपने किरण चुम्बन मे विकम्पित करते हुये कुछ दूर गगन पर चढ रहे थे एवं बसन्त की शीतल बयार अपनी मादकता के साथ डोल-डोल प्रकृति मे सिहरन उत्पन्न कर रही थी दो तरुण प्राणी प्रदीप और उषा विश्व की अनेक उलझी हुई समस्याओ पर एक उद्यान मे बैठे परस्पर वार्त्तालाप कर रहे थे। दोनो एक ही विश्व विद्यालय के सहपाठी दर्शन शास्त्र (फिलासफी) के विद्यार्थी और एम० ए० प्रथम श्रेणी मे एक साथ उर्त्तीण हुये थे। प्रदीप बाइस वर्ष का एक क्षत्री-पुत्र और उषा एक्कीस वर्षीया एक अन्त्यज की पुत्री थी। उषा का प्रखर मस्तिष्क एव सौन्दर्य आकाश की पुत्री उषा के समान था। प्रदीप भी विशेष प्रतिभाशाली तथा कुशाग्र बुद्धि के थे अत उषा के मन को अधिक भाते थे। दोनो के सात्विक विचार होने से परस्पर प्रेम शुद्ध सात्विक भाव का था। विद्यालय मे एक साथ उठते-बैठते, पढ़ते-लिखते जिससे परस्पर प्रेम पल्लवित होता गया। अन्त मे दोनो एक ही भावना मे रम गये और एक दिन बातें करते धर्म के सत्यान्वेषण में निकल पडे। ढूंढते हुये धर्म-के द्वार पर पहुँचे। देखा। द्वार के सभी पट बन्द थे। कुछ प्रतीक्षा की, इधर-उधर दृष्टिपात किया, द्वार खटखटाये, पर कहीं कुछ आभास तक न मिला, हताश होकर बातें करते आगे बढे।

आज धर्म के सभी पट बन्द क्यो है, उषा ?

ऐसा भान होता है कि धर्म के सभी द्वार दीपक बुझ गये।

उषा के रहते धर्म सदा जीवित रहेगा।

कुछ दूर दोनों पहुँचे थे कि सामने एक मुनि गुफाद्वार पर दिखाई पड़े। निकट जाकर दोनो ने मुनि जी को साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

मुनि जी ने आशीर्वाद देते हुये पूछा। यहाँ किस प्रयोजन से भ्रमण कर रहे हो, युगुलतरुण !

प्रदीप— धर्म के सत्यान्वेषण में, मुनिवर।

मार्ग से हट कर कुछ दूर एकान्त मे एक मनोरम वाटिका थी। मुनि जी ने दोनो को उस ओर साथ चलने के लिये संकेत किया। उस रम्य वाटिका की हरीभरी दूर्वा पर मुनि जी ने उन्हें बैठने के लिये कहा और स्वयं पार्श्व मे पड़ी एक प्रस्तर शिला पर आसीन होकर बोले। प्रथम यह तुम्हे जानना कि धर्म है क्या ?

धर्म शब्द की व्युत्पत्ति व्याकरण के नियमानुसार "धृ" धातु से बनी है। "यः धारयते इति स धर्म" अर्थात जो धारण किया जाय उसे धर्म कहते है।

उषा ने विनम्र भाव से पूछा। धारण क्या किया जाय, मुनि जी।

धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधोदशकं धर्म लक्षणम् ॥

अर्थात धृति, क्षमा दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धी, विद्या, सत्य, और अक्रोध, धर्म के इन लक्षणो को धारण करें, कुमारिके।

उषा—इन लक्षणों की संक्षिप्त व्याख्या करने की कृपा करें, मुनिश्रेष्ठ।

मुनिजी—धृति, जिसे हम धैर्य अथवा सन्तोष कहते हैं इसके अभाव मे मानव लक्ष विहीन सा भ्रमित रहता है। "यथा लाभ सतोष," ऐसा शास्त्र वर्णित है, परन्तु इस का यह अर्थ नही कि हम उद्यम विहीन हो जायें। उद्यम से जो उपलब्ध हो उसी मे पूर्ण सतुष्ट रहना ही धैर्य है। गीता मे कहा है कि 'योगयुञ्जनमदाश्रय."।

क्षमा—दैहिक, दैविक एवं भौतिक तापों से जो विचलित न हो और प्रसन्न चित्त रहे, वही क्षमा है। क्षमा के अन्तर्गत अहिंसा भी आती है। योग दर्शन मे कहा है कि "अहिंसा प्रतिष्ठायां वैर त्याग" अर्थात किसी के प्रति कोई द्वेष का भाव मन मे न रहे। समचित्त होकर अपकारी और उपकारी के प्रति एक भाव रखना ही क्षमा है।

दम—"मनसो दमनं दम" अर्थात मन के दमन का नाम दम है। मानव के अन्तर्गत कुछ रागात्मक वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं जिन्हें हम मनोवृत्ति भी कहते हैं इन्हे ऊर्ध्वगामी होना चाहिये। पर प्रकृति स्वभाव और परिस्थिति-वश प्रबल होकर

तीव्र गति से सरागपूर्ण निम्नगा हो जाती हैं। रागात्मक वृत्तियों को निम्नगा न होने देना अर्थात उनका बलपूर्वक अवरोधन ही दम है।

अस्तेय—प्राणी स्वभावतः दुर्बल है। जिस वस्तु का मेरे पास अभाव है और दूसरे के पास वह वस्तु है तो उस वस्तु का अपहरण करना स्तेय कहाता है। पर उस वृत्ति को रोकना अर्थात बिना स्वामी की आज्ञा के किसी वस्तु को न ग्रहण करना ही अस्तेय कहलाता है।

शौच—मन, वचन और शरीर की शुद्धता ही शौच है। प्राणी को स्वस्थ रहने के लिये शुद्धताई का आचरण आवश्यक है। मानसिक शुचिता के सम्बन्ध में आचार्यों का मत है कि "योर्थेशुचि स शुचि"।

इन्द्रिय-निग्रह—ज्ञान एवं कर्म रूपी दस इन्द्रिया मानव को अपना दास बनाकर उचित-अनुचित कार्य मे प्रेरित करती है। इन्द्रियाँ हम पर शासक न हो अपितु हमारे आधीन और वशी-भूत रहे, ऐसे शक्ति-सचय को ही इन्द्रिय-निग्रह कहा है।

धी—"ध्यायति (चिन्तयति) सत्यासत्ये अनया" सा धी। अर्थात जिससे सत्य-असत्य का विवेचन हो उसे धी कहा है। धी को हम बुद्धि और ज्ञान की भी संज्ञा देते हैं। त्रैलोक्य की सत्ता का भान तथा चराचर जगत को अपने आलोक से आलोकित करना "धी" का काम है। इस परिपक्व बुद्धि को ही प्रतिष्ठित-प्रज्ञा कहा गया है।

विद्या—"वेत्ति धर्मा धर्मों यया साविद्या" अर्थात जिसके द्वारा धर्म-अधर्म का यथार्थ ज्ञान हो सके उसे विद्या (सत्य विद्या) कहते है। अज्ञानता का नाश और व्यापक अविद्या जिस ज्ञान द्वारा दूर की जाय वह विद्या है और मिथ्या जगत को ही अविद्या कहा है।

सत्य—"यद् वस्तु यथातिष्ठति तथैव तस्य ज्ञानं सत्यं" अर्थात किसी वस्तु-स्थिति का यथार्थ ज्ञान ही सत्य है। मानव को सर्वोत्कृष्ट स्थान पर ले जाने वाला सत्य है। इसी का अवलम्बन कर साधक अपनी साधना को पूर्ण करता है। वेदो में 'सत्य विजयते नानृतम्" कहा है। पाश्चात्य दर्शन ने भी 'ट्रूथ इज गाड' अर्थात सत्य ही परमेश्वर है ऐसा स्वीकार किया है।

अक्रोध—क्रोध समस्त प्रकार के पतन का मार्ग है। क्रोध के निर्मूलन से शान्ति मिलती है। गीता मे "क्रोधात् भवति सम्मोह" द्वारा सकेत किया है कि क्रोध ही से विविध प्रकार के विकार क्रमश. उत्पन्न होते हैं और अन्त मे इसी क्रोध से बुद्धि का नाश होकर प्राणी का नाश हो जाता है। अक्रोधी को शान्ति और प्रेम रूपी अमूल्य उपहार मिलते है। अत कोध का विनाश ही अक्रोध है।

प्रदीप—आपने कितनी सुन्दर व्याख्या की। पर क्या इन्हे धारण करने से

हमें धर्म मिल जायगा, मुनिवर ।

इनमे से एक ही को धारण करने से धर्म का द्वार-पट खुल जायगा । सभी लक्षणों से युक्त प्राणी धर्म-मय हो जाता है, तरुण ।

प्रथम किसे अपनाने से धर्म का द्वार सुलभ हो जायगा, तपस्वी ।

धृत रूपी संतोष को प्रथम धारण करे । इसी से धर्म के द्वार सभी सुलभ हो जायेंगे ।

सर्पा पिबन्ति पवनं न च दुर्बलास्ते, शुष्कैस्तृणैर्वनगजाः बलिनो भवन्ति ।
कन्दैर्फलैर्मुनिवराः क्षपयन्ति कालं, संतोष एवं पुरुषस्य परं निधानं ॥

अर्थात् सर्प पवन को पीकर, वन-गज सूखे तृण खाकर, मुनिजन कन्द मूल फल खाकर संतोष से रहते है और दुर्बल नही होते । मानव का परम धर्म संतोष ही है, तरुण ।

उषा—हमारे धर्म-पुराणो मे ज्ञान और वैराग्य को धर्म के दो मुख्य पोषक ... को ज्ञान की जननी कहा है । भगवान तथा-गत बुद्ध को ज्ञान के द्वारा धर्म का साक्षात्कार हुआ था तब हम ज्ञान का आश्रय क्यों न लें ।

प्रदीप—अग्नि, आदित्य, वायु और अंगिरा इन चार ऋषियो को भी ब्रह्म की प्रथमजा ज्ञान रूप मे प्रस्फुटित हुई थी जिनसे चारो वेदों का वैखरी स्वरूप प्रकट हुआ ।

मुनि जी—बिना स्वाध्याय, तप, यज्ञ व्रत, और दान के ज्ञान की प्राप्ति कठिन है ।

उषा—स्वाध्याय की व्याख्या करने की कृपा करें, मुनिश्रेष्ठ ।

"स्वेन अध्येतुं शक्य इति स्वाध्याय." अर्थात जो अपने से अध्ययन किया जाय उसे स्वाध्याय कहा है । तैत्तरीय उपनिषद् में लिखा है "स्वाध्यायान् मा प्रमदा" स्वाध्याय में प्रमाद न होना चाहिये । परन्तु योग दर्शन में इसका सुन्दर आध्यात्मिक विवेचन किया गया है "स्वाध्यायादि देवता संप्रयोग." अर्थात स्वाध्याय से इष्ट देवता का संप्रयोग होता है । अभीष्ट सिद्धि हेत्वर्थ स्वाध्याय अपेक्षित है । स्वाध्याय का तात्पर्य सत्य आचरण से ही है, कुमारिके ।

प्रदीप—बिना गुरु के स्वाध्याय साधना कैसे सम्भव है । आप ही हमें दीक्षा दें तो बड़ी कृपा हो ।

शिष्य को परीक्षा की कसौटी पर परख कर दीक्षा दी जाती है, तरुण ।

उषा—मंदिर, मसजिद, गिरिजाघर, मक्का, काबा, द्वारका, जगन्नाथपुरी आदि विश्व के जितने पुनीत धर्म संस्थान है क्या वे धर्म के द्वार नही, मुनिवर !

ससार के सभी धर्मों ने अपने २ भावनाओ की सीढी लगाकर विभिन्न नामो से एक मात्र उस सर्व-शक्ति-मयी सत्ता को अपने २ विश्वास के अनुसार अभिव्यक्त करते हुये सभी लक्षणों से युक्त धर्म की स्थापनाये की। कुछ ने साकार और कुछ ने निराकार रूप मे प्रतिष्ठापित कर मन्दिर, मसजिद, गिरिजाघर, गुरुद्वारा आदि धर्म सस्थान तथा तीर्थ स्थानो का निर्माण कराया जिन्हे हम धर्म के पुनीत क्षेत्र कहते है और जहाँ हमारे मन मे धार्मिक भावनाओ का उद्‌बोधन होता है परन्तु जब तक आप में स्वयं भावना-परिमल नही तब तक सभी द्वार काल्पनिक है। वस्तुत. आप का मन ही मन्दिर, मसजिद, काबा और गिरिजाघर है। मन ही मे सारा ससार बसा है। यदि आप को धर्म अपनाना है तो इन्ही दसलक्षणों को अपने मे भरना होगा।

प्रदीप—ज्ञान प्राप्ति के पाच साधनो के नियम और सयम क्या है, मुनि जी ?
मुख्य साधन सत्य है, जिससे मन की शुद्धि होती है—

अद्‌भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति मन. सत्येन शुध्यति ।।
विद्या तपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्धयति ।।

अर्थात् जल स्नान से देह शुद्धि, सत्य बोलने से मन की शुद्धि, तप रूपी साधन से विद्या की शुद्धि और ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है। अतः सत्य द्वारा मन को शुद्ध निर्मल कर लेने से धर्म का मार्ग स्वच्छ हो जायगा। धृति, धैर्य रूपी धर्म की माता, भक्ति, धर्म की सहचरी, ज्ञान और वैराग्य धर्म के दो पुत्र, दया और क्षमा दो पुत्रियां, माया नटनर्तकी, भावना, श्रद्धा और विश्वास धर्म के सोपान है।

पञ्च महाभूतो के ग्रहण मे इन्द्रियों की क्या उपादेयता है, भगवन् ?

वत्से। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश यह पंच महाभूत है। इनको धारण करने के लिये घ्राणेन्द्रिय, जिह्वा, नेत्र, त्वचा और श्रोत्र पाच ज्ञानेन्द्रिया है शेष पंच कर्मेन्द्रिया-वाणी- हस्त, पाद, पायु, और उपस्थ तो आप को विदित हैं ही। पच ज्ञानेन्द्रियों को विचरण करने के लिये तत्सम्बन्धी तत्वो को अधिकार मिले है। पृथ्वी का गुण गन्ध है इसे ग्रहण करने के लिये घ्राणेन्द्रिय (नासिका) जल के लिये रसना (जिह्वा) अग्नि के लिये नेत्र, वायु के लिये त्वचा (स्पर्शेन्द्रिय) तथा आकाश तत्व को ग्रहण करने के लिये श्रोत्र है। इन पंच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ही समस्त पञ्च

महाभूतो को प्राणी अपने में भरता है और उसे ज्ञान की उपलब्धि होती है जैसा कि न्याय दर्शन के सूत्र में है कि "इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष जन्यं ज्ञानम्" अर्थात् इन्द्रियों के सयोग से जो भान हो वही ज्ञान है।

उषा—आप का ज्ञान, अध्ययन और आप की प्रतिभा से हम प्रभावित हैं। आप ही से दीक्षा चाहते है, मुनिवर।

जिस प्रकार जल को छान कर पीना चाहिये उसी प्रकार गुरु को भी परख कर दीक्षा लेना चाहिये, कुमारिके।

परखने की क्षमता आप ही ऐसे मुनि जनो मे है हमतो केवल आत्म-समर्पण ही जानते है।

इतने मे एक असुर जी आकर बोले। इस युग मे आप कैसे आ गये, मुनि जी। जानते नही यह कलि का राज्य है। आप की यह अनधिकार चेष्टा अच्छी नहीं। उचित होगा यदि आप यथा-शीघ्र अपने धर्म-लोक में चले जायें।

मुनि जी—मैं जानता हूँ असुरों का शासन उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, धर्मानुशासन समाप्तप्राय है। फिर भी हमे अपने ज्ञान पुन्ज को प्रज्वलित करना ही है। निष्प्राण अर्थी की तरह बहते हुये प्राणियो को धार से काट कर उबारना और उन्हें मुक्ति के घाट उतारना है।

असुर जी—आप से कहीं बड़े बड़े तपस्वी, महात्मा, सन्त, फकीर, पीर, मुल्ला, मोलवी, पादरी, शूफी, गुरु-ग्रन्थी तथा समस्त विश्व के धर्मों उनके पुनीत स्थानों, मर्यादाओ मान्य-मान्यताओ मे कलि का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। अधिकांश तीर्थ स्थल धर्म के व्यापार केन्द्र बन गये हैं और सभी धर्मों की दीवारों में दरारें पड़ गई है। कलिकी गति तीव्र होती जा रही है। वह दिन अब अधिक दूर नहीं जब कि धर्म के नाम का कोई लेने वाला न होगा।

प्रदीप और उषा चौक पड़े। उषा ने विस्मित भाव से कहा। किस धर्म की बातें करते हैं, असुर जी। धर्म क्या कभी किसी का दास बन कर रहा करता। धर्म के बिना कलि का शासन कितने दिन चल सकता है।

प्रदीप ने उषा से कहा। शीघ्र ही धर्म-पुत्र के पास चलें और इस असुर की उलाहना करें। दोनो ने वहा से ज्ञान आलोक ग्रहण करने के लिये प्रस्थान किया।

हिमाच्छादित नगाधिराज की एक विस्तृत उपत्यिका में जहां की भूमि श्वेत पुष्पो से बारहों मास परिपूरित रहती है जिसके मध्य मे निर्मल पयस्विनी चञ्चल सरितायें

युवतियों की भांति विलसती हुई क्रीड़ायें करती है जहाँ दिवस में अन्शमाली की रश्मियों से हिम शिलायें प्रद्रवित हो उठती हैं। तथा पाषाण के हृदय से भी कठोर रस की बूँदें शिलाजीत के रूप में बह निकलती है। उसी स्थल पर जहा कालिदास की यक्ष कन्यायें गौर शरीर एवं धवल परिधान मण्डित हो शुभ्र बालुका के तट पर श्वेत हीरे के करण को अपने सुकोमल करतलों में छिपा कर सहेलियों से अठखेलिया करती है। रात्रि में कलाधर की शुभ्र किरणें हिम शिलाओं को श्वेत रजत खण्डों सी चमचमा देती है। सर्वत्र शुभ्रता का साम्राज्य फैल जाता है। जहाँ के जलाशयों में दिन में शुभ्र कमल और रात्रि में धवल कुमुदिनियां खिलती है। श्वेत मृगों की पक्तिया नाभि में मृग-मद की सुगन्ध से विक्षिप्त सी भागती फिरती है। उसी स्थल पर जहाँ विद्युत और काचन वर्णीय तरुणियां मल्लिका के पुष्पों का चयन करती हैं। ऐसे सुरम्य स्थल पर ऋषियों से सुना जाता है कि 'ज्ञान' का मन्दिर है। जिसके एक ओर आकाश को विचुम्बित करती हुई पर्वत श्रेणिया है तो उसके दूसरी ओर शुभ्र जल परिप्लावित मान सरोवर है जिसकी तरङ्गो पर श्वेत हंस मिथुन क्रीड़ा कर रहे है। कहते हैं प्राचीन काल से हमारे इस विस्तृत आर्यवर्त्त का प्राणी जिसे ज्ञान की जिज्ञासा हुई इन्ही उपत्तिकाओं की ओर चल दिया। ज्ञान की उपासना के इच्छुक प्रदीप और उषा भी पर्वत की दुर्गम श्रेणियों को पार करते एक दूसरे का कर ग्रहण किये यही पहुँचे।

उषा ने प्रदीप से कहा। मेरे सुहृद। इस स्थल की शोभा, यहा की शान्ति और चिरयुवा प्रकृति मन को अपनी ओर बरबस खीच रही है। हमारा तो हृदय कहता है कि यही पर ज्ञान का आलोक प्राप्त होगा। यद्यपि इतनी थकान हो गई है कि चलना दुस्तर सा है पर तुम्हारे बलिष्ठ करो का संबल ग्रहण करके किसी प्रकार यहां पहुंच गई। आओ अब कहीं विश्राम करलें।

प्रदीप ने अपने बड़े २ मादक दृगों से उषा के मुख की ओर देखते हुये कहा, सत्यनिष्ठे ! ज्ञान के पथ पर चला हुआ पथिक कभी थकता नहीं। तुम्हारी शक्ति-मयी भावना का संयोग पाकर ही इस स्थल तक पहुंच सके है फिर भी तुम परिक्लान्त हो जो तुम्हारे स्वभाव का भूषण है। चलो सामने उस निर्झर के पास बैठ कर विश्राम करले, जहा देखो—वह श्वेतगज अपनी सूंड में शीतल जल भर कर अपनी प्रिया के शरीर को सिंचित कर रहा है और वह श्वेत मृग मृगी के शरीर को अपने सींगो से धीरे धीरे सहला रहा है। वहीं बैठें, विश्राम करें, और जरा विचुम्बित शीतल समीर तरङ्गे हमारे कायिक क्लान्त का अपहरण

करें। सुनते है यहां जीवन मुक्त आत्मायें विचरती हैं। पञ्च पाण्डवों की आत्मायें भी यहीं विचरती सुनी जाती हैं। सम्भव है कोई पुरातन ऋषि मुनि संयोग से इधर मिल जायें और हमें ज्ञान के मन्दिर का दिग् दर्शन करा दें।

उषा और प्रदीप निर्झरिणी के निकट बैठे हुये प्रकृति की मनोहारिता पर वार्तालाप कर रहे थे। जल-कण परि सिंचित समीर ने उनकी क्लान्ति हरली थी। तब उनकी दृष्टि पर्वत के एक ढलाऊ मार्ग की ओर गई जहां उन्होंने देखा कि एक कृशकाय व्यक्ति, जिसके शरीर की प्रत्येक अस्थियां गिनी जा सकती थीं परन्तु मुख-मण्डल पर अलौकिक प्रतिभा थी जिसके श्वेत केश पीठ पर से झूलते हुये जानुओं का स्पर्श कर रहे थे, धीरे-धीरे उतर रहा था। प्रदीप ने कहा। उषे, देखो—यह कोई महात्मा हैं, वह यहाँ तक आये कि उसके पहले सम्मान रूप से हम वहीं चल कर उन्हें प्रणाम करें। उषा ने खिले हुये मनोरम पुष्पों को हाथ में लिया तथा उनके चरणों पर चढ़ाते हुये दोनो ने प्रणाम किया।

महात्मा ने पूछा। अल्पवयस्क ! तुम दोनों यहाँ किस प्रयोजन से आये हो। उषा और प्रदीप ने अपना मनोरथ निवेदन किया।

महात्मा ने उनके धैर्य और सत्यान्वेषण का साधुवाद करते हुये कहा। देखो—सामने वह एक विस्तृत जलाशय है उसके भी उत्तर दिशा में सूर्य की रश्मियों से चमकता हुआ रजत कलश तुम्हे दिखाई दे रहा है। वही ज्ञान मन्दिर है। परन्तु वहाँ जाने के पूर्व जलाशय के शीतल जल में स्नान करना आवश्यक है। कारण कि ज्ञान के दर्शन उसे ही मिलते हैं जिसे श्रम से प्रेम है और जिसने अपने 'अहम्' को नष्ट कर दिया हो। इतना कहते हुये उषा और प्रदीप के देखते ही देखते महात्मा कहीं अन्तर्ध्यान हो गये और दोनों विस्मत हो एक दूसरे की ओर देखने लगे।

उषा और प्रदीप आगे बढ़े तथा ज्ञान के द्वार पर पहुंचे। श्वेत हिम की शिलाओ से बनी हुई एक गुफा थी जिसके ऊपर हिम ने गल कर एक कलश का रूप धारण कर लिया था और जो सूर्य की रश्मियों से रजत सी चमचमा रही थी। उषा और प्रदीप को वहाँ यह अनुभव हुआ कि इस आश्रम के प्रत्येक वृक्ष की शाखाओं पर बैठे हुये पक्षी भी शास्त्रों का उच्चारण सा कर रहे हैं। वहाँ के वायु-मण्डल में वैदिक स्वर की लहरियां गूंजती सी प्रतीत हुईं। दोनो ने गुफा के द्वार पर देखा कि मध्य में श्वेत शिला के ऊपर चमरी का मृग चर्म बिछाये एक शुभ्र वर्ण के महापुरुष समाधिस्थ अवस्था मे बैठे हैं। उषा और प्रदीप बड़े ही शान्ति भाव से उनके चरणों के निकट बैठ गये तथा समाधि-भङ्ग के समय की प्रतीक्षा करने लगे।

कुछ घड़ियो के बाद समाधिष्ठ महात्मा के शरीर मे कम्पन हुआ उनमे चेतना का पुनर्जागरण हुआ तथा जैसे ही अपने मीलित चक्षुओं का उन्मीलन किया कि दोनो उनके चरणों पर साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुये गिर पड़े ।

ज्ञान ने कोमल स्वर से पूछा । तरुण प्राणियो ! मानव भूमि का परित्याग कर कर्म क्षेत्र से विमुख होकर किस शान्ति और कैवल्य की इच्छा से यहाँ आये हो ? प्रदीप ने विनम्र भाव से कर बद्ध कहा । हम भूतल की दुखी मानवता के प्रतिनिधि आपके शरण वास्तविक धर्म के प्राप्त हेतु आये है । हमे अपने आलोक से अलोकित करके आशीर्वाद दे कि जो हम आप से ग्रहण करे उसे जन-जन के हित मे उपयोग करे ।

उषा ने भाव भरे शब्दो मे कहा । एक दिन मार्ग में असुर जी अचानक मिले। उन्होंने कहा । संसार से धर्म चला गया । अब कलि का शासन है । इसमे धर्म का कोई स्थान नही ।

ज्ञान ने स्मित मुख हो कहा । साधन वृत्ति युगुल ! धर्म अमर है । माया नट-नर्तकी का यह सब प्रपञ्च है । कलि के दुराग्रह ने कही कही अधिकार कर लिया है । धर्म को विभिन्न जातियो और सम्प्रदाओं ने अपने आवरण से बन्दी बना दिया है। इन सब परिस्थितियो से धर्म अब स्वच्छन्द होकर एक अज्ञात दिशा से ससार को देख रहा है । ज्यूं ही कलि की गति चरम सीमा पर पहुँची धर्म पुनः अवतरित होगा, पुनीत आत्माओ का सरक्षण करेगा, विश्व के दुष्कृत प्राणियो का नाश कर विशुद्ध धर्म की स्थापना होगी और धर्म ही का शासन होगा ।

ज्ञान के आलोक से आलोकित होकर उषा और प्रदीप अपने निवास पर लौट आये तथा अपनी यात्रा का दूसरा चरण प्रारम्भ करने के लिये विचार करने लगे । उन्हें वैराग्य का भी पता लगा कर उनसे आदेश प्राप्त करना था परन्तु एक यात्रा से इतना क्लान्त हो गये थे कि उन्होंने यह निश्चय किया कि जब आकाश से जलधरो की टुकड़ियां बिदा हो जायें और शरद की चन्द्रिका वसुन्धरा का परिलम्भन करने लगे तभी हम वैराग की साधन-यात्रा पर चल पड़े ।

प्रदीप और उपा शुभ बेला मे वैराग्य के दर्शनार्थ जैसा कि उन्होंने सुना था कि दक्षिण दिशा के एक सुरम्य स्थल पर वैराग्य के दर्शन होंगे, चल दिये ।

दक्षिण की भूमि नर्मदा और कावेरी की नदियों से पवित्र हो रही थी । जहा अगस्त्य और परशुराम की प्रेरणा से आज भी मानव अनुप्राणित होता है । किंकणी के सदृश सागर जिसके तटो को आलिङ्गित किये है । नारियल के वृक्षों से जहाँ की

मेदिनी हरीतिमा-मयी है उसी प्रदेश मे शुभ्र भद्रा के किनारे कहते हैं कि एक विशाल अरण्य है। जहाँ वैराग्य का निवास स्थान था। उषा और प्रदीप जब वहाँ पहुँचे तो देखा कि अरण्य वृक्षो के मध्य एक रजत-गृह सूर्य की रश्मियों से आलोकित हो रहा है। उसके चारो ओर विभिन्न प्रकार के कला और कौशल केवल अपने श्रम से सगृहीत किये गये थे। वैराग्य के आश्रम में यह नियम था कि कहीं कोई भी वस्तु बाहर से क्रय करके नही आती थी। खेतो मे अन्न और वनस्पतियां उत्पन्न की जाती थी। गोशालाये और दुग्ध वितरण केन्द्र थे तथा स्वयं कपास के बीजों को बोकर उन्हीं का सूत कात कर उपयोग के लिये वस्त्र बनते थे।

प्रदीप और उषा बडे आश्चर्य में हुये कि वैराग्य के क्षेत्र में पहुंच कर साधुओं की टोलिया देखने को मिलेंगी। भस्म मण्डित शरीर और कमण्डलधारी सन्तों की पंक्तियां होंगी परन्तु उन्होने देखा कि प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण मनोयोग से कृषि के कार्य में, वस्त्र बुनने में और यन्त्रो के निर्माण में लगा है। उन्हें मध्य में बड़े सुसज्जित चिकित्सालय देखने को मिले। सामुदायिक भोजनालय भी थे। इससे चकित होकर उनको वहां की पथ-प्रदर्शिका ने आश्रम सचालक के निकट पहुँचाया।

एक श्वेत मण्डप के मध्य मे चन्दन की आसन्दी पर एक महापुरुष विराजमान थे, जो शरीर के अधोभाग मे दो गज शुद्ध खादी का वस्त्र लपेटे थे और शीत ऋतु होने के कारण जिनके प्रबल स्कन्धों पर हाथ की बुनी एक छोटी सी कम्बली पड़ी थी। उनका मुख आभा-मण्डित था, नेत्रों की ज्योति में आकर्षण था और अधरों पर सरलता विराजमान थी। पार्श्व में एक ओर लेखन सामग्री रखी थी तथा कोई सहायक आश्रम के उत्पादन के सम्बन्ध में उनसे कुछ वार्तालाप कर रहे थे। प्रदीप और उषा ने उन्हें प्रणाम किया। उन्होने आशीर्वाद देते हुये पास ही बिछे एक आसन पर बैठने का संकेत किया।

सचिव से वार्ता समाप्त कर प्रदीप और उषा की ओर घूमते हुये सरल भाव से पूछा। सौम्य युगुल ! किस प्रदेश के निवासी हो, इधर कैसे आये ?

प्रदीप ने विनय पूर्वक कर बद्ध कहा। देव पुरुष ! वास्तव मे धर्म पुत्र वैराग्य के दर्शन की जिज्ञासा से इधर आये हैं। समझा था वैराग्य महाप्रभु सन्यासी के रूप मे विरक्त हो किसी निर्जन गुफा मे दर्शन देंगे परन्तु आपको तो चारों ओर वैभव से ग्रसित देख रहा हूँ।

आश्रम के सचालक स्वामी सर्वोदय प्रभु ने अपने कुन्दन के समान दन्त पंक्तियों की आभा बिखेरते हुये कहा। भद्र ! सत्य कहते हो। दुर्भाग्य से आज वैराग्य का

अनुचित अर्थ हो गया है। हमारे शास्त्रो मे सब से महान विरक्त राजर्षि जनक कहे जाते हैं। वैराग्य का अर्थ कर्म-क्षेत्र का परित्याग कर दूसरे पर बोझ बनना नही, अपितु पूर्ण मनोयोग से कर्मभूमि में कार्य-रत मानव तथा समाज का अभ्युत्थान और कल्याण करते हुये राग रहित होना ही वैराग्य है। हमने एक सामुदायिक योजना का अनुबन्धन किया है। इस आश्रम में कोई भी व्यक्ति किसी भी वस्तु का स्वामी नही। ईश्वर ने समाज की रचना की है। हम समाज के अङ्ग हैं। समाज का परिवर्धन हमारा धर्म है। यहा प्रत्येक व्यक्ति समाज के लिये कार्य करता है। उत्पादन है समाज के लिये। सब वस्तुये सब की है परन्तु किसी को किसी वस्तु के प्रति राग उत्पन्न नही है। वस्तु मे राग होना उस पर अपने 'स्व' की छाप लगाना ही दोष है। यदि इसी वैराग्य की भावना से विश्व का मानव समाज, और सभी राष्ट्र कार्य मे समक्ष हो जाये तो राम-राज्य वही साकार हो उठेगा। ईशोपनिषद् का प्रथम मन्त्र है कि—

ईसावास्य इदं सर्वर्ग्यं यत् किंचित् जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेनभुंजीथा मागृधा कस्य चिद् धनम्॥

अर्थात इस संसार मे जो कुछ भी है वह परमात्मा से अनुप्राणित और आच्छादित है। इस जगत का उपभोग त्यागमयी भावना से करना चाहिये और किसी के वैभव के प्रति आसक्त नही होना चाहिये।

इस आश्रम का सचालन धर्म-पुत्र वैराग्य के आदेश से ही हो रहा है।

यह आश्रम उन्ही की प्रेरणा का प्रतिमूर्त्त है। उनके दर्शन के लिये तुम्हे थोड़ा आगे जाना होगा।

उषा ने कर बद्ध कहा। आपने तो कर्म-भूमि के वैराग्य को प्रतिष्ठापित किया है। इस आश्रम से बड़ी सान्त्वना और प्रेरणा मिली है। हम भी अपने प्रदेश में जाकर सर्वजन हिताय ऐसे ही आश्रमो को स्थापित करेंगे। हमे निर्देश दीजिये कि किस मार्ग का अनुसरण करें जिससे धर्म पुत्र वैराग्य के पुन्य स्थल के दर्शन करने का सौभाग्य मिल सके।

स्वामी सर्वोदय प्रभु के निवास स्थान से कुछ ही दूर छोटे से पर्वत के शिखर पर एक पर्ण कुटी थी, जिसके चारों ओर कन्दिराये और गुफाये ऐसी प्रतीत होती थी मानो प्रकृति ने अपने हाथों बनाई हों। उस ओर सकेत करते हुये सर्वोदय ने कहा। देखो—सामने वह कुटी है। जिसके ध्वज की शलाका नील गगन के मध्य

ऋद्धि सिद्धि के प्रतीक स्वरूप हीरक, मुक्तायें, बहुमूल्य मणियां एवं स्वर्ण मुद्रायें सजोई थी।

विश्वम्भरा शक्ति के चारों ओर अधोभूमि पर भक्त नर नारी अनुरूप वस्त्राभूषणो से सुसज्जित हो आसनो पर बैठे थे। किसी के हाथ में मृदङ्ग, किसी के मंजीर तथा किसी साधिका की कोमल अंगुलियां वीणा के तारों पर स्वर झंकृत कर रही थी। सब सम- वेद स्वर मे साम की ऋचाओं का गान करते हुये भक्त गण के पदों की स्वर लहरियो ने वातावरण को अनुराग रंजित कर रखे थे: मन्दार पुष्पों के सौरभ मे एव धूप दीपों की सुगन्ध से परिपूर्ण था। इसी शान्ति स्वर्ग-आभा-[illegible] वातावरण के मध्य उषा और प्रदीप ने प्रवेश किया तथा साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुये भक्ति जनों की पंक्ति के मध्य विनम्र भाव से बैठ गये और संगीत की स्वर लहरियो मे अपना योग देने लगे। कालान्तर मे वीणा की मूर्छना समाप्त हुई। संगीत के साम वेद स्वर में शिथिलता आई परन्तु देवी की ध्यान मुद्रा तथा पद्मासन पर स्थिर शरीर पूर्ववत ही रहा। प्रदीप ने विनम्रता पूर्वक एक भक्त से पूछा। मातेश्वरी कब नयन-पलक खोलेंगी! साधक साधिकाओ से उन्हे ज्ञात हुआ कि कभी २ तो महा देवी इसी अवस्था में ऐसी समाधिष्ट सी बैठी रहती है कि सूर्य अपनी द्वादश राशियों की परिक्रमा परिपूर्ण करलेता है।

प्रदीप और उषा ने विचार किया कि विश्व पालिका के दर्शन तो हो ही गये, कार्य-क्रम एवं भावी पुरोगम का भार अधिक है अतएव अन्य किसी अवसर पर जब देवी जाग्रत अवस्था मे होगी, दर्शन करेंगे। अब तो पुन. ज्ञान के पास चल कर भावी योजना का विधान शीघ्रातिशीघ्र बनाना अत्यन्त आवश्यक है। इतना कह कर दोनो धर्म-पुत्र ज्ञान की ओर चल दिये।

धर्म-पुत्र ज्ञान के मन्दिर से कुछ पूर्व ही उन्हें मार्ग मे दो दिव्य शक्तियो से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ जो साक्षात देवी स्वरूपा थी। उनकी आकृति तेजोमय थी। प्रदीप और उषा ने दोनो को प्रणाम किया।

उषा ने एक देवी से पूछा। शुभे! आप का परिचय?

मैं 'दया' धर्म की पुत्री हूँ।

प्रदीप ने दूसरी देवी से पूछा। कल्याणि! आप का शुभ परिचय?

मैं, धर्म की ज्येष्ठ पुत्री "क्षमा" हूँ।

उषा ने विनम्र भाव से कहा। देवि! आप से एक भिक्षा मांगती हूँ।

क्या भिक्षा चाहती है, कुमारि के?

धर्म के दर्शन की।

जब तुम मन से प्राणिमात्र पर दया करती हुई दया की मूर्ति बनजाओगी तुम्हे धर्म के दर्शन स्वय हो जायेगे। आओ इसी समय से दया का संकल्प लो और प्रतिज्ञा करो कि जब तक धर्म का साक्षात्कार न होगा शुद्ध सात्विक आहार-विहार के साथ प्राणि मात्र पर दया करेगे।

धर्म पुत्री दया के इस आदेश को सुनकर उषा ने उसी क्षण प्रतिज्ञापूर्वक संकल्प लिया और जीवमात्र पर दया सरसाना प्रारम्भ कर दिया।

प्रदीप ने क्षमा से याचना की कि देवि! आप के इस अनायास दर्शन से हमारे भाग्य जागे। आप से एक विनम्र निवेदन है।

वत्स! क्या जिज्ञासा है ?

धर्म के दर्शन।

युवक! यदि तुम इस क्षण से क्षमा-शस्त्र ग्रहण करने का संकल्प करलो तो तुम्हे धर्म का साक्षात्कार हो जायगा।

प्रदीप ने आदेशनुसार संकल्प लिया और शुद्ध आहार-विहार के साथ जीव मात्र पर क्षमा करना आरम्भ कर दिया।

अन्त मे दया और क्षमा को प्रमाण कर दोनो आगे बढे और एक विशाल वट-वृक्ष के नीचे आसन लगा कर बैठ गये। मार्ग में पंथिको को उषा दया की भिक्षा देती और प्रदीप क्षमा का सबल।

एक दिन सत्य कही अचानक पहुँच गये।

सत्य ने पूछा। युगुल तरुण! यहा किस प्रयोजन से बैठे है ?

उषा—दया की भिक्षा हेतु।

प्रदीप—क्षमा का संबल देने।

सत्य के बिना दया और क्षमा अपङ्ग हैं। कही तुम्हारे संकल्प व्यर्थ न हो जाये।

क्यों कि "सत्यार्दतेन धर्म." अर्थात सत्य से अतिरिक्त कोई धर्म नही है।

उषा और प्रदीप विस्मित हो उठे। प्रदीप ने याचना भाव से कहा। आप ही मार्ग निर्देशन करें।

उषा ने दया का अञ्चल पसारते हुये कहा। मैं सत्य से दया की भिक्षा मांगती हूँ।

सत्य दयार्द्र हो बोले। आज से प्रतिज्ञा करें कि सत्य को प्रमुखता दे कर दया

और क्षमा को अपनायेंगे।

दोनों ने सत्य से प्रतिज्ञा की और साष्टाङ्ग प्रणाम कर कुछ दूर आगे एक [illegible] मे बैठ कर परस्पर बातें करने लगे।

सत्य के अनायास दर्शन ने हमारे धर्म को कैसा प्रशस्त कर दिया अन्यथा अनेक कठिनाइयां सम्भव थीं, प्रदीप।

ऐसा प्रतीत होता है धर्म अपने मार्ग का दिक् दर्शन स्वयं करा रहा है, उषा।

मुझे स्मरण हो रहा है कि भारतीय धर्म शास्त्र ने मानस तीर्थों में "सत्य" को प्रथम तीर्थ माना है, प्रदीप।

'दया' भी तो तीर्थों की कोटि में आती है, उषा।

परन्तु 'क्षमा' को तो दया से भी पहले तीर्थ माना है।

मानस तीर्थों मे कौन-कौन आते है, उषा।

> सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थ मिन्द्रिय निग्रहः।
> सर्वभूत दया तीर्थं सर्वत्रार्जव मेव च॥
> दानं तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते।
> ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं, तीर्थं च प्रिय वादिता॥
> ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं पुण्यं तीर्थ मुदाहृतम्।
> तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा॥

अर्थात् सत्य, क्षमा, इन्द्रिय-निग्रह, समस्त प्राणियों पर दया, आर्जव अर्थात् आत्म शुद्धि, दान, दम, सतोष, ब्रह्मचर्य, प्रियवचन, ज्ञान, धृति इन्ही सबको पुण्य तीर्थ कहा है। पर सर्वोत्कृष्ट महा तीर्थ मन की परमशुद्धि है। भगवान शंकराचार्य जी ने कहा है कि "तीर्थं परं किं स्वमनो विशुद्धं"।

तुमने तो अति ही सुन्दर मानस तीर्थों का वर्णन किया, उषा। अब देह-रूपी शारीर तीर्थो के सम्बन्ध में भी कुछ प्रकाश डालें।

इन्हें तो आप ही बताने की कृपा करें, प्रदीप।

शारीरिक तीर्थों के सम्बन्ध मे आचार्यों का कथन है कि—

> यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
> विद्यातपश्चकीर्तिश्च सतीर्थ फल मश्नुते॥
> मनो विशुद्धं पुरुषस्य तीर्थं वाचां यमस्त्विन्द्रिय निग्रहस्तपः।
> एतानि तीर्थानि शरीर जानि स्वर्गस्य मार्गं प्रतिबोधयन्ति॥

अर्थात् हाँथ, पैर और मन के सयम रूपी तीर्थ मे जो अवगाहन करता है उसे विद्या, तप और कीर्ति रूपी फल प्राप्त होते है। पुरुष के लिये मन की शुद्धता परम तीर्थ है। वाँणी का सयम और इन्द्रियों का निग्रह परम तप है। शरीर से उत्पन्न हुये यही तीर्थ मानव के स्वर्ग मार्ग को प्रशस्त करते है, उषा।

आपकी अभिव्यञ्जना अति ही सुन्दर है, प्रदीप।

सब तुम्हारी दया है, उषे। क्यों कि दया ही धर्म का मूल है। तुमने तो मूल को पा लिया, तुम्हे तो धर्म मिल ही जायगा, पता नही मेरा क्या हो।

आप को दया की ज्येष्ठा "क्षमा" मिली है क्षमा तो दया से भी बड़ी है "क्षमा शस्त्र करे यस्य दुर्जन. कि करिष्यति" जिसके हाथ मे क्षमा का शस्त्र है उसका दुर्जन क्या कर सकता है।

क्षमा दुर्जनों के लिये अवश्य अनमोल शस्त्र है परन्तु दया की ऐसी भाव कोमलता कहाँ।

क्षमा का स्वरूप शान्त और गम्भीर सागर के सदृश है। ससार के सारे कष्टों और पापो को पीकर उन्हे अपने अन्तर्जगत से छान कर शुद्ध किया करता है।

दया और क्षमा के साथ सत्य अन्त करण को भी शुद्ध करता है।

इस प्रकार वार्ता करते दोनो ने निश्चय किया कि हर दृष्टि से अब "ज्ञान" को अपनाना है। इस भावना से दोनो पुनः ज्ञान के पास गये और साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

उषा ने प्रार्थना की कि आरम्भ में आप से आलोकित होकर पुन: आप के शरण आई हूँ। मुझे वह मार्ग आलोकित करायें जिससे मैं धर्म को पा सकू।

ज्ञान ने साकेतिक भावनाओ मे कहा। तुम्हारे पास दया और सत्य दोनो हैं। यदि किसी एक को जीवन में ढाल ले तो धर्म स्वयं मिल जायगा।

उषा ने विनम्र भाव से कहा। बिना आप (ज्ञान) के जीव भटकता ठोकरें खाता है उसे सत-असत् का यथार्थ बोध नही हो पाता। कलि का शासन उत्तरोत्तर बढ रहा है। सत्य का गला घुट रहा है, पाप का बोल बाला है इसलिये बिना आप (ज्ञान) के मेरा जीवन कंटक है। देव !

साधिके ! जाओ। आज से स्वाध्याय मे तत्पर हो जाओ, इसीसे धर्म का साक्षात्कार होगा।

तत्पश्चात् प्रदीप ने प्रार्थना किया कि मुझे भी आप ऐसा मार्ग आलोकित करायें जिससे मैं सारे बन्धनों से मुक्त होकर धर्म की शरण ले सकूँ।

ज्ञान—तुम्हारे पास धर्म की ज्येष्ठ पुत्री क्षमा ने वास ग्रहण किया है जिससे सांसारिक बन्धनों से तुम्हे स्वयं छुटकारा मिल जायगा। सत्य से भी तुम अभिषिक्त हो चुके। फिर क्या कठिनाई है, धर्मानुरागी।

प्रदीप—बिना आप (ज्ञान) के क्षमा और सत्य अन्धकार के समान हैं। क्षमा यूं ही पगली सी दर-दर अपनी सत्ता दिखाती फिरे या 'सत्य' कलि के द्वार पर अपने अस्तित्व को खोता फिरे। आप धर्म के पुत्र हैं, आप ही बताइये। यदि आप (ज्ञान) का सदेश न देंगे तो सत्य और क्षमा कलि में पतीभूत होकर गर्त में जा गिरेंगे। अतः बिना आप (ज्ञान) के एक पग भी आगे चलना मेरे लिये असम्भव है।

यदि तुम्हारी यही दृढ़ात्मा कहती है तो मेरे ज्ञान-मय कोष का स्वाध्याय करो।

प्रदीप ने तत्क्षण स्वाध्याय का संकल्प लिया और योगी ज्ञान को साष्टाङ्ग प्रणाम कर चल दिये।

द्वितीय पराग

एक दिन मधु ऋतु मे जब मधुमती वायर स्नेह से वृक्षों की टहनियो को सहला रही थी और पुष्पो की पंखुडियो को गुदगुदा रही थी। वसुन्धरा के प्राँगण मे मादकता और उन्माद नृत्य कर रहे थे। कोकिला जिनके नृत्य पर सप्तपदी तान दे रही थी एवं भ्रमरावलि वींणा के तारो की झंकार को गुंजरित कर रही थी उसी समय उषा और प्रदीप प्रभात वेला में अ शुमाली के विहसने के कुछ पूर्व ही एक ऐसी मनोरम बाटिका मे जाकर बैठ गये जहां बेला फूल कर सुरभित हो चला था और आम्र की मंजरियाँ अपना पराग उडेल रही थी। परस्पर विचार विमर्श करने लगे कि कारण है जो इन्द्रिया चंचला हो रही है। मन स्थिरता का परित्याग कर रहा है। हमारे पास ज्ञान भी, क्षमा भी, दया भी, सत्य द्वारा मन शुद्धि भी होती जा रही है फिर भी अन्तर्जगत में इतना अन्तर्द्वन्द क्यो।

यह सब विचार विनिमय हो ही रहा था कि इतने मे कलि महाराज अचानक आकर बोले। तुम दोनो यहाँ किस लिये बैठे हो।

उषा विस्मित हो बोली। दया की भिक्षा हेतु।

प्रदीप— क्षमा का संबल देने, सत्य और ज्ञान के सहारे धर्म को प्राप्त करने।

कलि ने ललकारते हुये कहा। कहाँ है तेरी दया! देख–क्रोध ने दया को खा लिया, क्षमा को अहंकार ने निगल लिया, सत्य का गला झूंठ ने घोट दिया और ज्ञान गर्त्त मे पड़ा कराहता है। जानता नही, यह कलि का राज्य है।

प्रदीप ने कम्पित कण्ठ से कहा। मैं धर्म-पुत्र 'क्षमा' का उपासक हूँ, महाराज।

यहाँ कोई क्षमा नही। चला है धर्म की दुनिया बनाने। यदि जीवित रहना है तो मेरे नियमों का पालन करना होगा। यह मेरा युग है। आज की दुनिया मे धर्म के ठेकेदारो ने जहाँ धर्म को अपनी थाती बना रखा था वहाँ अब मेरा ही शासन है। देव मन्दिर, तीर्थ-स्थल, गिरजाघर, मसजिद, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, सिख

आदि सभी मे, कण-कण, पग-पग, जल, वायु अग्नि, पृथ्वी और आकाश तथा इन्द्रियो मे एव उस पर अश्व की तरह आरूढ मन पर अधिकार [illegible] रहा है। आज का मानव, झूठ, कपट, छल-छिद्र, व्यभिचार, अनाचार, दम्भ, और भय, आतङ्क द्वारा कितना फली-भूत होता जा रहा है; [illegible] प्राप्त है।

कलि का कथन यथार्थ है, उषा। धर्म के दर्शनार्थ कब से भटक रहे हैं पर उनकी तेजोमय झलक अभी तक न मिली।

कलि जी ने तो स्वयं दर्शन दे दिये। कैसे कृपालु हैं [illegible]। [illegible] अनुचरो को ही भेजा करते हैं।

उषा विह्वला सा कलि महाराज से बोली। [illegible] कृपा [illegible] भटके हुये को पथ-प्रदर्शन कराया और धर्माधर्म पर मथन करने के लिये [illegible] किया।

इतना कह कर दोनो आगे बढे। उषा के मन मे [illegible]। विक्षिप्त सी भाव भरे संगीत की कड़िया गाती हुई, दया, ज्ञान और [illegible]। प्रदीप बार-बार सान्त्वना देते पर वह मूर्छित हो जाती। [illegible] चेतना जागी और प्रदीप से बोली। कलि कहा गया, जिसने मेरे [illegible] को अन्तराल से निकाल कर कूड़े की तरह फेंकने का दुस्साहस किया और प्राण को बार-बार झिझकोरता रहा।

प्रदीप—हमे धरा के समान धैर्य को धारण कर क्षमा के [illegible] को [illegible] है। धर्म ने धैर्य को प्रथमता दी है, द्वितीय चरण में क्षमा आती है। यह माया रूपी नट-नर्तकी का सब जाल है। अभी हमें दम और इन्द्रिय निग्रह को अपनाना है। इन्हीं के अभाव से विचलता हुई। इनके बिना मन सुस्थिर नहीं रहता। कलि के आते ही हम कम्पित हो उठे। दया, क्षमा, सत्य और ज्ञान अपने [illegible] को छोड़ चले। परन्तु इन दोनों की प्राप्ति हेतु कठोर साधन और संयम अपेक्षित है, उषा।

यदि हम विश्वव्यापी धर्म सम्मेलन का आयोजन कर सभी धर्मों के प्रमुख आचार्यों एवं सन्त महात्माओ को आमन्त्रित करें तो उत्तम होगा। सत्य, अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह, इन्द्रिय-निग्रह इन पंचशील सिद्धान्तो पर गम्भीर विवेचन होकर घर घर उनके नियमो का पालन कराने के लिये धर्माचार्यों द्वारा केन्द्र स्थापित हो जायेंगे और कलि के अस्तित्व का पता भी चल जायगा।

धर्म के दस लक्षणों को लक्ष मे रखकर यदि धार्मिक आन्दोलन विश्व भर में

छेड दिया जाय तो निश्चित ही कलि का एक दिन पता भी न रहेगा और प्राणि मात्र की निम्नगा रागात्मक वृत्तिया ऊर्ध्व–मुखी हो उठेगी। पर इस आन्दोलन को सफल बनाने के लिये हमें धर्म-पुत्र ज्ञान का ही सयोजकत्व स्वीकार करने के लिये प्रार्थना करना होगा।

यद्यपि हमारे ऋषि-मुनियों ने उस दिव्य ज्ञान से ही संसार को सूचित किया है, परन्तु कलि ने उस ज्ञान पर भ्रम-कर्दम फेक कर उसका उज्वल स्वरूप धूमिल कर दिया है।

जब ज्ञान स्वयं साक्षी और सारा आयोजन उन्ही के हाथों रहेगा तब कलि कुछ न कर सकेगा।

इसी प्रसङ्ग के अन्तर्गत माया आकर बोली। युवक! किन कल्पनाओं के आकाश कुसुमो को तोडने का प्रयत्न कर रहे हो। आज के इस भौतिकवादी युग मे जिसे हम कलि प्रभाव प्रधान युग कहते है, धर्म का कही पर कोई विशेष अस्तित्व नही है। अर्थ और काम के युग मे वालुका भित्ति सदृश धारणाओं को बनाकर अपनी शक्ति का दुरोपयोग क्यो कर रहे हो।

उषा ने आगे बढ़कर विनय पूर्वक कहा। देवि! समस्त विश्व को अपने इङ्गित पर नर्तन कराने वाली महाशक्ति को धारण कर आप मुझे मार्ग से भ्रष्ट करना चाहती है जो हमने जन-जन हिताय बहुजन सुखाय स्वीकार किया है। शक्ति-मते। हमे तो आशा थी कि आप हमारे साथ सहयोग करेगी परन्तु कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि आप ने कलि से कुछ आन्तरिक समझौता करके हमे सुपथ से विरत करने का निश्चय किया है।

मुझ पर दोषारोपण व्यर्थ है, कुमारिके। यह कलि-काल है। स्वयं सिर पर चढकर दहाड़ता हुआ मानव के भेजे की मीग को खा जाता है। उसे पल-पल की सूचना रहती है।

प्रदीप ने कहा। आपने मुझे सचेत कर बड़ी कृपा की।

उषा और प्रदीप माया को प्रणाम कर आगे बढे और कुछ ही दूर जाकर प्राचीन बट वृक्ष की शीतल छाया के नीचे एक प्रस्तर शिला पर बैठ कर विचार करने लगे। सामने एक सुरम्य नील-जल-सरोवर लहरें ले रहा था जिसमे युगुल श्वेत हस विचर रहे थे और अरुण कमल इतरतत खिले हुये थे।

प्रदीप ने कहा! जब कलि हमारे प्रत्येक पग की बात जान लेता है तब कैसे क्या होगा, उषे।

ऐसी बात नहीं है, सुहृद । अभी कलि मे इतनी शक्ति व्यापक नहीं है । माया अपने भ्रम का रूप प्रसारित कर रही है । देखो—सामने नील जल की तरंगों पर कौन तैर रहे है । श्वेत हस हैं जो ज्ञान के प्रतीक है, देवी सरस्वती के वाहन हैं । ऐसी आसुरी शक्तिया जो धर्म क्षेत्र मे कदाचित् बाधक बन कर आ ही तो जाती है, ज्ञान और सत्य के तेज से तिरोहित होती देखी गई हैं ।

इतनी वार्ता के पश्चात् दोनो धर्म पुत्र ज्ञान के दर्शनार्थ चल दिये ।

उत्तर दिशा के एक शान्तिमय विस्तृत प्रदेश मे एक महावन था । जिसके मध्य वृत्ताकार मे श्वेत निर्मल जल से पूरित एक सरिता प्रवाहित हो रही थी । जिसका जल ऐसा निर्मल था जिसमे धरातल मे पड़ी हुई छोटी सी कंकड़ी भी सुस्पष्ट देख पड़ती थी । इसी के दक्षिण तट पर विविध सुमनो से परिपूर्ण रम्य वाटिका के बीच श्वेत प्रस्तर से बना एक मण्डप था जिसमें चन्द्र मणियां जड़ी हुई थी । उसके मध्य चन्दन की वेदिका पर अपनी आभा और कान्ति को बिखेरते हुये समाधिस्थ योगी की भांति इस बार यहा ज्ञान विराजमान थे । पक्षी-गण वाटिका में विहार कर रहे थे । उसी मनोरम वातावरण मे सत्यान्वेषण में तत्पर उषा और प्रदीप पहुंचे । पुण्यतोया सरिता मे हस्त, पाद, प्रक्षालन करके उस रम्य वाटिका मे जाकर, ज्ञान को प्रणाम के पश्चात सामने पड़ी श्वेत चमरी की बनी आसन्दियों पर कर बद्ध बैठ गये ।

प्रदीप ने विनम्र भाव से कहा । भगवन् ! आज विश्व की स्थिति बड़ी भया-वह है । शिष्टा की सर्वश्रेष्ठ रचना मानव आज पथ भ्रष्ट है । अपौरुषेय वाणी के द्वारा उसे जो धर्म-पथ दिखाया गया था आज उसने उसे विस्मृत कर दिया है । माया की मोहक भंगिमाओं का वह दास बन गया है, कलि के प्रभाव से अभिभूत है । हम मानव मे पुनः मानव की प्रतिष्ठा चाहते हैं, वह अपना स्वरूप पहिचाने, स्वयंभू मनु की वाँणी में उसे आस्था हो, अतः एक अन्तर्राष्ट्रीय धर्म-सम्मेलन की योजना का विचार है । आप से प्रार्थना है कि हमें मार्ग प्रदर्शित करें ।

ज्ञान ने आशीर्वादात्मक रूप में कहा । तुम्हारा यह दृष्टिकोण उत्तम है । इस सम्मेलन द्वारा धर्म की बेलि विकसित होगी और धर्म सम्प्रदाओं में सहिष्णुता और प्रेम का संचार होगा ।

प्रदीप ने अनुगृहीत हो ज्ञान के चरण कमलों का स्पर्श करते हुये कहा । जहां आप का वरद् हस्त है वहाँ सर्वत्र विजय है ।

इसी वार्तालाप के मध्य प्रदीप को आभासित हुआ कि दक्षिण दिशा से किसी का आगमन हो रहा है । उधर देखा—एक महात्मा मस्तक पर भस्म का त्रिपुण्ड अङ्कित

किये, कटि मे मुञ्ज-मेखला तथा कुश की कोपीन धारण किये, दक्षिण कर मे पलाश दण्ड और बायें मे जल पूरित कमण्डल लिये शान्ति गति से चले आ रहे हैं। निकट आकर उन्होंने ज्ञान को प्रणाम किया। प्रदीप और उषा पर अपनी स्नेह पूर्ण दृष्टि डालते हुये ज्ञान के दक्षिण दिशा मे बैठ गये।

ज्ञान ने प्रदीप से कहा। क्या इन्हे पहिचानते हो ? यह महात्मा धर्म-श्रुति है।

धर्म श्रुति ने एक गहरा निश्वास खीचा। उनके नेत्र जलमय हो उठे और कपोलो पर बहते हुये अश्रु बिन्दु श्वेत भस्म की आभा से मिश्रित हो उठे।

ज्ञान ने विस्मय से देखते हुये पूछा। सन्यासिन। कैसी वेदना है, इतना विकल क्यों हो ?

धर्म-श्रुति ने आसुओ को छलछलाते हुये करुण स्वर मे कहा। महाराज ! संसार में अधर्म बहुत बढ़ रहा है। क्या इसके निराकरण का कोई उपाय आपके विचार मे है ?

ज्ञान ने प्रदीप और उषा की ओर इङ्गित करते हुये कहा। देखो—यह दो तरुण इसी भावना को लेकर आये है, जाओ इन्हे सहयोग दो।

प्रदीप ने ज्ञान से निवेदन किया। कैसे शुभ मुहूर्त पर महात्मा धर्म श्रुति जी का शुभागामन हुआ है। अब सम्मेलन का कार्य महात्मा जी के मन्त्रित्व मे सम्पन्न हो जायगा। हम दोनो अनुचर बनकर कार्य करेंगे।

ज्ञान ने 'तथास्तु' कह कर अपने पार्श्व मे रखे हुये मन्दार कुसुमों को महात्मा धर्म-श्रुति, प्रदीप और उषा को आशीर्वाद रूप मे दिये।

समारोह के आयोजन का विश्व व्यापक प्रचार करने की दृष्टि से सभी समाचार पत्रो के प्रतिनिधियों को आमन्त्रित किया गया।

अन्तर्राष्ट्रीय-धर्म-सम्मेलन के तिथि की घोषणा, सभी धर्म-विभूतियों को आमन्त्रित कर उनकी सयुक्त प्रवर धर्म समिति की स्थापना करना, विश्व में बढ़ती हुई तामसी वृत्ति को रोकने के लिये एक सयुक्त मञ्च तैय्यार करना और धर्म के दसो लक्षणों से युक्त विविध धर्मो के प्रधान आचार्यों की एक प्रचार समिति गठित करना आदि विषय प्रसारित किये गये।

इस सूचना से अवगत होते ही विश्व के धर्म सस्थानो मे उल्लास का वातावरण पैदा हुआ। सभी धर्म सस्थानो से धन्यवाद और शुभकामनायें आने लगीं।

वर्षा ऋतु के मेघ आकाश में छट चुके थे और सुन्दर-प्रकृति वसुन्धरा पर अपने यौवन को बिखेर रही थी। समीर की [illegible] पर [illegible] गया शरद् पूर्णिमा के तीन दिन पूर्व कर्म सिद्धि [illegible] की शुभ बेला में अन्तर्राष्ट्रीय धर्म सम्मेलन का आयोजन किया गया। धर्म पुत्र ज्ञान के [illegible] व देवताओं के प्रमुख धर्माचार्य एवं प्रत्येक सम्प्रदाय के [illegible] में भाग [illegible] आ गया। भारत मानो धर्म का केन्द्र बन गया। विश्व के [illegible] के सभी [illegible] मत मतान्तरो के प्रतिनिधि भारी संख्या में तीन दिन पूर्व [illegible] गये।

अन्तर्राष्ट्रीय धर्म सम्मेलन का पिन्डाल विभिन्न धार्मिक झाँकियों से सुसज्जित था। सभी धर्म संस्थानों के द्वार अपने अपने ढंग शिल्पी एवं [illegible] के अनुसार सजाये गये थे। हजारों की संख्या में विशाल विद्युत [illegible] से सजे थे। धर्म पुत्र ज्ञान के आवाहन पर त्रैलोक्य के पांच देवता ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य और गणेश प्रमुख मंच पर अनायास ज्यूं ही प्रकट हुए सारा पाण्डाल जयकारों से गुंजायमान हो गया। ब्रह्मा को सृष्टि के रचयिता, विष्णु को पालन हार, महेश को संहारक, सूर्यको तेजोमय और गणेश को विघ्न हर्ता सभी धर्मों ने विभिन्न नामों से संज्ञा देकर माना। समस्त धर्मों के प्रतिनिधि अपने अपने धर्मों का प्रतिनिधित्व करने हेतु विविध वर्णों के परिधान पहने थे। प्रत्येक धर्म संस्थानों के प्रवेश द्वार पृथक २ मुख्य मंच पर जाने के लिये थे। मञ्च के दोनों ओर विभिन्न प्रकार के सुगन्धित पुष्प पात्र पंक्ति बद्ध सुसज्जित थे। मंच के मध्य में प्रवेश के लिये [illegible] पट्टी बिछी थी जो पिन्डाल के अन्त तक मार्ग का निर्देशन करती थी। आकाश वाणी के सभी केन्द्रों से प्रसारण की व्यवस्था थी।

अन्तर्राष्ट्रीय-धर्म सम्मेलन का उद्घाटन श्री विष्णु देवता के कर-कमलो द्वारा कराया जाना निश्चित हुआ था।

सम्मेलन के महात्मा धर्मश्रुति जी ने समस्त उपस्थित धर्मावलम्बियों की ओर संबोधित करते हुये कहा। आज हमारा अहोभाग्य है जो इस भूमि पर धर्म पुत्र की प्रार्थना से समस्त त्रैलोक्य के पंच महादेवताओं ने दर्शन देकर हमें कृतार्थ किया। श्री धर्म पुत्र जी से प्रार्थना है कि अपनी अमृतमयी वाणी का हमें रसास्वादन करायें।

रेशमी परिधान जिनके शरीर पर सुशोभित था। आभा और प्रभा जिनके चारों ओर ओज बिखेर रही थी। ऐसे सुधा-स्नात धर्म-पुत्र ज्ञान ने अपनी अमृत-वर्षिणी वाणी से बोलना प्रारम्भ किया।

परम पुनीत धर्म प्रजाप्रतिपालक, अनन्त कोटिनायक, पंचवमहादेवता गण, उपस्थित धर्मान्चार्य तथा समस्त प्राणि बान्धव।

मुझे आज परम आनन्द मिला जो त्रैलोक्य के पंच महा देवताओ ने हमारी प्रार्थना स्वीकार कर दर्शन दिये। जब जब धर्म की ग्लानि हुई धर्म के रक्षणार्थ हमारे पूज्य महा देवतागण इसी प्रकार अवतरित हुये। समस्त त्रैलोक्य के पालनकर्त्ता श्री विष्णु देवता से प्रार्थना है कि वह अपने अमृतरूपी सद् उपदेशो मे इस समारोह का उद्घाटन कर हमे कृतार्थ करे। प्रकाण्ड विद्वानों द्वारा प्रथम सभी वेदो की ऋचाओ का सस्वर पाठ हुआ। तत्पश्चात श्री विष्णु देवता का उपदेश आरम्भ हुआ।

लोकाराधक श्री विष्णु देव नील कान्ति मणि सदृश शरीर पर रेशमी पीताम्बर धारण किये थे। जिनके नेत्रों मे विश्व के पालन की करुण आभा विहस रही थी, अधरो पर माधुर्य और पूर्ण गम्भीर मुद्रा युक्त मण्डप के मध्य में स्वर्ण आसन्दी पर विराज मान थे। ज्ञान की प्रार्थना सुनते ही समस्त सभा सदो को अपने नयन कमलो के करुण जल से स्नान कराते हुये तथा प्रवाल अधरो पर मधुरिमा की मुस्कान बिखेरते हुये बोले।

त्रैलोक्य के समस्त प्राणी आमानव कीट पर्यन्त।

परम भक्त धर्म पुत्र 'ज्ञान' का आग्रह एक निमित्त मात्र इस स्थल पर हो गया। जब कभी भी धर्म की ग्लानि हुई हम सभी इस भूलोक में अवतरित हुये। कलि के प्रथम चरण ही से धर्म की माता धरा पाप के बोझ से व्यथित हो उठी। धरा पर बढती तामसी वृत्ति को देख कर हम यहा एकत्र हुये है। मुझे सृष्टि पालन का अधिकार मिला है। परन्तु पापाचार, अहंकार, दुराचार, भ्रष्टता, आदि का मै पालक नही। एक पापी अपने पूर्व देहार्जित कर्मो से कुछ सांसारिक वैभव को लेकर प्रत्यक्ष में फलता प्रतीत होता है परन्तु जब उसके संचित पुन्य की राशि समाप्त होती है तो पाप आक्रान्त हो उसे समूल नष्ट कर देता है। ऐसे फलते हुये प्राणियो को देख कर मानवों मे पाप पुन्य के परखने की शंका हो जाती है और पाप अपने मिथ्या आडम्बर द्वारा पुन्य को आच्छादित कर अपने अधिकार मे कर लेता है। यही दशा काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और ईर्ष्या की है। आज दिन इन्ही छै विकारों की उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। इनमें से किसी एक का भी अधिकार व्यापक रूप से यदि किसी प्राणी पर हो गया तो वह उसे आमूल नष्ट कर देता है। अतः यह षट्-विकार धर्म के कट्टर शत्रु है। इनसे सदा सतर्क रहना है। धर्म के सच्चे स्वरूप को धारण करना है। धर्म किसी जाति, वर्ग या संप्रदाय का ही नही, अपितु कीट, पतग, पशु, पक्षी सभी का धर्म पोषण करता है।

संसार को एक धर्म सूत्र में बांधने के लिये विश्वव्यापी धर्म की स्थापना अपेक्षित है। सभी राष्ट्रों के धर्म प्रतिनिधियों की एक संयुक्त विश्व-धर्म-समिति द्वारा ही आज एक अन्तर्राष्ट्रीय-धर्म-प्रतिष्ठान को आधार मिला और जन्म लेगा है। इसी के द्वारा ससार की सामाजिक एकता जागृत होगी। मानवता, मैत्री और प्रेम पनपेगा।

तदनन्तर ज्ञान ने कर-बद्ध अपनी प्रार्थना भरी दृष्टि आशुतोष भगवान शंकर के श्री चरणों को स्पर्श करने के लिये फेंकी।

भगवान शकर जिनका शरीर रजत भस्म के समान प्रदीप्त हो रहा था और शरीर मे वस्त्र के स्थान पर बाघम्बर धारण किये थे, अपनी करुणा दृष्टि ज्ञान की ओर फेरते हुये बोले। आयुष्मन्! क्या मुझे कुछ सम्बोधित करना है?

ज्ञान नम्रता पूर्वक अपने दोनों करों को जोड़ कर नत मस्तक हो गया।

जलपूरित श्याम मेघ के गर्जन सदृश गम्भीर स्वर में भगवान आशुतोष ने अपने स्थान से ही गिरा प्रसारण प्रारम्भ किया।

ब्रह्म की रचना के श्रेष्ठ प्रतिनिधियों।

यह सर्व विदित है कि कार्य विभाजन के समय प्रलय और संहार मेरे भाग्य में पड़े। मुझे इन्ही उप करणों के द्वारा विश्व में धर्म की रक्षा करनी पड़ती है, अतएव मुझे बढते हुये अधर्म का संहार करना है। धर्म आज जातीय बन्धन की श्रृंख-लाओं से बन्दी हो गया और सम्प्रदाय का विभीषिका से विकलित हो रहा है। ऐसी स्थिति मे हमें एक अन्तर्राष्ट्रीय-धर्म-संहिता तैयार करनी है जिसके द्वारा पूर्ण नियन्त्रण हो सके और मानव समाज सही दिशा मे आगे बढ़ सके। आज धर्म का असत्य रूप प्रदर्शित किया जा रहा है। विश्व का अधिकांश राजनीतिज्ञ धर्म को अपने क्षेत्र में प्रवेश होने देना नहीं चाहता। उसके समक्ष धर्म एक अवरोधक बन गया है जब कि विश्व की राजनीति का ध्रुव केन्द्र धर्म ही है। "धर्म ही राष्ट्र का निर्माण करता रहा है। बिना धर्म के मानव पंगु रहता है। जब मानव ही पंगु है तो मानव द्वारा बनाये हुये राष्ट्र का पंगु होना स्वाभाविक है। निष्कर्ष रूप में हमें संसार को धर्म का सच्चा स्वरुप देना है। आज की विश्व व्यापी संघर्षात्मक समस्याओं को धर्म ही सुगमता से सुलझाने मे सक्षम है। जो प्राणी धर्म मय हो जाता है उसमें हिंसा की भावना जन्म नहीं ले पाती।

धर्म आध्यात्मिक भावना का प्रतीक है। विश्व का सज्ञान प्राणी धर्म का सदैव आदर करता रहा है। धर्म का सीधा नाता 'न्याय' से है परन्तु आज का न्याय धर्म की आधार भित्ति से परिभ्रष्ट हो गया है। असत्य न्याय का प्रतिरोध करके हमे सत्य का न्याय स्थापित करना है। अन्त में मैं प्राणिमात्र को सावधान करता हूँ कि भविष्य में सब धर्म का अनुसरण करें।

उपदेश समाप्त होते ही सभा-मण्डप जय आसुतोष की ध्वनि से गुंजरित हो उठा।

ज्ञान, सभा को संबोधित करते हुये बोले।

विश्व के पुराण देव सृष्टि कर्ता ब्रह्मा को प्रणाम कर उनसे प्रार्थना करता हूँ कि हमारे हित के लिये अपनी कल्याण मयी वाँणी का प्रयोग करे।

उपस्थित देवताओ मे जिनकी आयु सबसे से अधिक थी जिनका वर्ण कुन्दन के समान प्रदीप्त हो रहा था और जिनके कन्धो पर रजत तारो के जाल फैले हुये थे तथा जिनके कर कमलो में आदि ज्ञान के प्रतीक चारो वेद सुशोभित थे ऐसे सृष्टि कर्ता चतुरानन ब्रह्मदेव अपने कमलाकार आसन पर बैठे हुये ज्ञान की वाणी को सुन कर धीरे से मुस्कराये और सुस्पष्ट वाङ्गमय से जन समुदाय के कर्ण-कुहरों को पूरित करते हुये बोले।

मेरी ही आत्मा के प्रति मूर्त्ति विश्व के समस्त प्राणियों—

सृष्टि की रचना के समय मेरी कल्पना में भाव जागरण हुआ था कि ज्ञान का अक्षय कोष मानव अपने अदम्य उत्साह से सृष्टि के सुन्दर सृजन में सहयोग देगा और धर्म से अनुप्राणित बुद्धि के द्वारा जीव मात्र के कल्याण की गंगा प्रवाहित करेगा परन्तु आज स्थिति विपरीति है। तथा विलोमगति गामी है। यदि इसी गति से संसार चक्र प्रवर्त्तित होता रहा तो निश्चित ही इसका भविष्य अंधकार में है और मुझे पुन: नवीन सृष्टि की रचना करना होगा। अभी समय है तुम सब सचेत होकर आज सकल्प लो कि भविष्य मे हम धर्म के सभी नियमो का पालन करते हुये धर्म के सभी लक्षणों के अनुयायी होंगे। जातीय विद्वेष और दलगत वर्गीय भावनाओ से ऊपर उठेंगे और धर्म को साम्प्रदायिकता की संकुचित रेखाओं में सीमिति न करेंगे।

इस प्रकार त्रिदेवों ने अमृतमय उपदेशो से ससार को सम्बोधित किया। सूर्य देवता अपने तेज पुंज से प्रकाश अविभूत करते एवं विघ्नेश्वर विनायक विघ्नो क अपहरण।

उपदेश समाप्ति के पश्चात् धर्मपुत्र ज्ञान के संयोजकत्व में अन्तर्राष्ट्रीय प्रमुख धर्माचार्यों की एक प्रवर धर्म-समिति का गठन कर सभी व्यवस्था अपने हाथ में ली गई। समिति में विभिन्न धर्मों से सम्बन्धित विश्व के सभी गणमान्य धर्माचार्यों को लिया गया जिन्होंने शीघ्र ही "अन्तर्राष्ट्रीय-धर्म-संसद" नाम की संस्था को जन्म देकर निम्नांकित प्रस्ताव पारित किये।

(१) हम अन्तर्राष्ट्रीय धर्म संसद के सदस्य गण इस बात की घोषणा करते हैं कि धर्म को जातीय बन्धनों से पृथक कर मानव मात्र के कल्याणार्थ लोक-कल्याण के आधार भूत धर्म के दसों लक्षणों से युक्त बिना किसी भेदभाव के एक सामूहिक शक्ति का गठन कर विश्व में धर्म के प्रसारार्थ जन जागृति लायेंगे और सत्य, अहिंसा सदाचार आदि को प्रश्रय देकर आध्यात्मिक शक्तियों का अभ्युदय करेंगे।

(२) हम अन्तर्राष्ट्रीय-धर्म-संसद के सदस्यगण इस बात की उद्घोषणा करते हैं कि विश्व में उभरी हुई तामसी एवं संघर्षात्मक वृत्तियों के शमनार्थ आध्यात्मिक ज्योति जगा कर घर २ शान्ति का सन्देश पहुँचायेंगे।

(३) हम अन्तर्राष्ट्रीय-धर्म-संसद के सदस्यगण इस बात का संकल्प लेते हैं कि धर्म की भेदात्मक विविधता को उन्मूलित कर उसकी अनेकता में एकरूपता का मार्ग प्रशस्त करते हुये विश्व के समस्त राष्ट्रों में घर २ धर्म के आधारभूत सभी सिद्धान्तों का प्रसार करने में सतत प्रयत्न करते रहेंगे।

इन तीनों प्रस्तावों को पारित करने के बाद उषा और प्रदीप ने धर्म की ज्योति जगाये रखने के लिये अपने मधुर कण्ठ से दो गीत गाये।

अन्तर्राष्ट्रीय धर्म सम्मेलन के सफल आयोजन से उषा और प्रदीप की भावनाओं में जीवन ज्योति का संचार हुआ। शरद पूर्णिमा तिथि को प्रातः दोनों टहलते हुये कुछ दूर एक उपवन में जाकर बैठे और परस्पर विचार विनिमय करने लगे।

उषा—इस सम्मेलन ने कलि का भय मेरे मन से हटा दिया।

प्रदीप—धर्म के सामने कलि कहाँ टिक सकता है परन्तु हमें यह नहीं समझना चाहिये कि उसका बिल्कुल पलायन हो गया। वह किसी भी क्षण उभर कर अपना प्रचन्ड रूप धारण कर सकता है। इसलिये कलि से हमें सर्वदा सतर्क रहना है, उषा।

उषा—अब हमें एक अन्तर्राष्ट्रीय-धर्म-विश्व-विद्यालय स्थापित करना चाहिये। जिसमें ईसाई, इस्लाम, बौद्ध, जैन, सनातन, वैदिक, पारसी, सूफी आदि विश्व के

समस्त धर्मों की शिक्षायें, उनकी धार्मिक मान्य मान्यताओं के आधार पर दी जायें। उनमे पंचशील सिद्धान्तो और धर्म के दसो लक्षणों को भर कर उनकी अनेकता मे एक रूपता लायें और अन्त में उन्हे धर्म की उच्च कोटि की उपाधि "धर्म-केसरी" से अलंकृत किया जाय।

प्रदीप—तुम तो मानो धर्मपुत्र ज्ञान के मुख मे बोल रही हो। ऐसे शिक्षापीठ की नितान्त आवश्यकता है। केवल उपदेश से काम नही चलेगा। ठोस ज्ञान की प्राप्ति ऐसे विद्यालयो द्वारा ही हो सकती है। बिना धार्मिक शिक्षा के प्राणी का नैतिक स्तर ऊँचा नही उठ सकता। इसका मूल श्रोत धर्म ही है। परन्तु भारत सरकार धर्म निर्पेक्ष है। यदि धर्म शब्द की अपेक्षा अध्यात्म शब्द जोड़ कर उसे अन्तर्राष्ट्रीय अध्यात्म विश्वविद्यालय रखा जाय तो उत्तम होगा। बात एक ही है अन्तर केवल शब्द का है।

उषा—अध्यात्म शब्द यद्यपि धार्मिक भावनाओ का उद्बोधन करता है परन्तु धर्म का अपना सर्वोत्कृष्ट स्थान है। धर्म शब्द को हटाना अर्थात् धर्म को ही मेटना है। शब्द ही तो ब्रह्म है। शब्द ही सब कुछ है। यह तो वही बात हुई कि राजा को हटा कर उसके युवराज को अधिकार दे दिया।

प्रदीप—धर्म के नाम पर जात और सम्प्रदाय के सारे झगड़े अध्यात्मवाद समेट लेगा और साथ ही सभी राष्ट्र खुलकर सहयोग देंगे।

उषा—हमारा मानव से सम्बन्ध है जिसके द्वारा राष्ट्र का निर्माण होता है। यदि मानव मात्र ने धर्म का सही रूप परख लिया तो एक दिन राष्ट्र स्वयं उस रूप से अलङ्कृत हो जायगा। विश्व का समस्त राजनीतिज्ञ उसी साँचे मे ढल जायगा। इस प्रकार धर्म के नाम पर चले आ रहे संघर्ष भी स्वतः तिरोहित हो जायेंगे।

प्रदीप—जनता जनार्दन में जागृति लाने के लिये कहीं २ राष्ट्र का अंकुश काम कर जाता है।

उषा—राष्ट्र के अधिकांश कर्णधारी तथा सत्ताधारी प्रत्यक्ष या परोक्ष से अपने-अपने विश्वास के अनुसार धर्म पर आस्था रखते ही हैं। भारत राष्ट्र प्रत्यक्ष में धर्म सापेक्ष इसलिये नहीं हो पाता क्योंकि 'धर्म" को जातीयता और साम्प्रदायिकता में जकड़ दिया गया है। ईसाई, इस्लाम, बौद्ध सिक्ख, सनातन, वैदिक ऐसे विविध धर्मों की संज्ञा देकर धर्म को फिरका परस्ती मे डाल दिया गया है जो आज विकार

बन कर संसार को खाये जा रहा है। वस्तुतः धर्म किसी व्यक्ति या व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति नहीं। धर्म व्यापक है। मानव मात्र का है। धर्म के बिना समाज का अन्तरंग खोखला है। धर्म के विलीन होते ही धर्म की माता धरा [illegible] में लिये पाताल लोक में समा जायगी।

प्रदीप—मैं अपनी उषा को उसकी मार्मिक एवं मर्मस्पर्शी विवेचनों से प्रभावित होकर ज्ञानश्री की पदवी से विभूषित करता हूं।

इसके पश्चात दोनों ने अन्तर्राष्ट्रीय-धर्म-विश्वविद्यालय की रूप रेखा तैयार की और उसे अन्तर्राष्ट्रीय-धर्म-संसद के मुख्य सचिव के सामने प्रस्तुत किया।

मुख्य सचिव ने अन्तर्राष्ट्रीय-धर्म-विश्वविद्यालय के विधान से प्रभावित होकर कहा। यह विश्वविद्यालय जाति, पन्थ, वर्ग सम्प्रदाय से रहित सर्वोदयी भावनाओं से ओतप्रोत है। इस विद्यालय का प्राणी धर्म के सभी रूपों से युक्त होकर अपने स्वरूप को पहिचानते हुये समाज बनायेगा और संसार को एक नवीन दिशा की ओर प्रेरित करेगा। मैं इस योजना को कार्यान्वित करने के लिये अखिल-धर्म-समिति के पास भेजता हूँ।

प्रदीप और उषा ने मुख्य सचिव को धन्यवाद दिया और अपने आवास की ओर चले। कुछ दूर पहुंच कर मार्ग में एक अपंग सा प्राणी [illegible] राज पथ पर पड़ा धर्म के नाम पर करुण क्रन्दन कर रहा था।

उषा ने पास जाकर सस्नेह पूछा—क्या हो गया है?

मेरे धर्म को लूटा गया, देवि।

उषा—धर्म भी कहीं लूटा जाता है।

धर्म के ठेकेदारों ने धर्म को लूटा है।

तुम्हारे किस धर्म को लूटा।

प्रदीप ने बीच में बोलते हुये कहा। इसका धर्म यही रुपया पैसा और क्या होगा। क्योंकि धन ही से धर्म और अधर्म होते हैं।

केवल धन ही नहीं अपितु मेरी धर्म पत्नी, (जो मूल्यवान आभूषण पहिने थी) को पता नहीं किस अज्ञात स्थान में ले गये और क्या किया।

उषा उस अपङ्ग को सान्त्वना देती हुई अपने आवास ले गई। और उसे नूतन वस्त्र देकर भोजन करवाया और यह पूछा। देवद्वार में भगवान के दर्शनार्थ

शुद्ध भावना से क्या नही गया था ?

देव मन्दिरों मे अधिकाश मानव अपने पापों का प्रायश्चित करने जाता है। पर विकार-युक्त प्राणी इन स्थानो पर दुष्कर्म करने मे ही अपने सुख का अनुभव करते हैं। देवि।

उषा—इस दृष्टि से देवता की सेवा मे रत पुजारी तो ऐसे निकृष्ट कार्य क्या कर सकेगा ?

आप इतनी विदुषी, ज्ञानी, दया की मूर्त्ति और सत्य-स्वरूपा होते हुये भी लोभ को नही पहचानती। इसी ने आज घर कर लिया है। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, ईर्षा इन्ही छै विकारों के वशीभूत समस्त संसार है। कलि ने अपने इन्ही दैत्यों को छोडा है। यही दिन रात सबके द्वार खट खटाते है। देव द्वार भी इनसे अछूते नही हैं।

उषा—तुम्हारे पास भावना की सुगन्ध नहीं। देवद्वार कभी अपवित्र नही होते। अपनी भावना ही मानव को अपवित्र बनाती है। विश्व के समस्त धार्मिक क्षेत्र, मन्दिर, मसजिद, गिरिजाघर आदि जो धार्मिक भावनाओ से स्थापित हुये हैं, जिनमे श्रद्धा और विश्वास का अकाट्य रूप है ऐसी पुण्यशीला संस्थायें अथवा धर्म क्षेत्र सदैव आदर के पात्र हैं उन्हे अपयश का भागी बनाना मानव की अपनी दुर्बलता और अदूरदर्शिता है।

प्रदीप—तुम्हारा यह तर्क न्याय-संगत नही, उषा। देवद्वार मे इस प्रकार के कान्ड होने पर उसे माध्यम बनाया ही जायगा। अपकीर्ति और अप्रतिष्ठा का जामा उस देवद्वार को धारण करना पड़ता ही है।

उषा—तो क्या, यह कान्ड भगवान की संरक्षकता में हुआ या भगवान ने साक्षी बनकर कराया।

प्रदीप—मैं इस प्रकार के अर्थ का अनर्थ नही करता परन्तु सांसारिक दृष्टि से बात कहता हूँ। माया का जाल तो सभी जगह बिछा है।

उषा—सम्भव है किसी दैत्य द्वारा उसकी बुद्धि भ्रष्ट कर दी गई हो और यह उसका लक्ष बन गया या किसी राक्षसी प्रवृत्ति के अज्ञात व्यक्ति ने अनायास आकर ऐसा किया। व्यर्थ का आरोप पुजारी पर क्यो लगाया जाय। न हो देवद्वार चलकर पता लगायें।

प्रदीप—देवता का आवाह्न कर अपने धर्मपुत्र ज्ञान के माध्यम से वस्तुस्थिति का बोध तो हो ही जायगा, उषे।

उषा—कितना सुन्दर। जहाँ ध्यान किया और भावों में अन्तर्दर्शन आभा-सित हो गया।

पश्चिम के अम्बर पर लालिमा का लेप हो चला था। पक्षीगण विशाल वृक्षों की शाखाओं में कलरव करते विश्राम स्थल ढूँढ रहे थे। पुजारी देव प्रतिमा के सम्मुख सायंकालीन स्तोत्र उच्च स्वर में पढ़ रहे थे, तथा भक्त जन घंटा, शंख, घड़ियाल की ध्वनि से दिग्दिगन्त को गुंजरित कर रहे थे, कि तभी प्रदीप और उषा मन्दिर की मर्यादा के अनुसार गात्र और मन की शुद्धि करते हुये ध्यान में मग्न देव प्रतिमा के निकट द्वार पर पहुचे। उधर देव स्तुति समाप्त हुई, निशा ने अपने मुख पर कालिमा का घूंघट खींचा, आकाश नक्षत्र मण्डल से जगमगा उठा, मन्दिर के [illegible] और चारो दिशाओ मे प्रकाश प्रस्फुटित हुआ। देवमूर्ति के निकट पहुँच कर [illegible] बैठे ही उस मूर्ति की ओर गम्भीर मुद्रा में निमग्न होकर दोनों ने निहारा कि मूर्ति स्मित हो उठी। दोनो भावनाओ में विभोर हो गये और कुछ ही क्षणों में उनके अन्तस्तल मे उस कागज की सारी वस्तु स्थिति [illegible] ने [illegible] कर दी। दोनो ने नयन पलकें खोली। देवताओं को साष्टाङ्ग प्रणाम किया तथा एक दूसरे की ओर भावपूर्ण मुद्रा में देखते हुये बोले।

उषा। सुहृद कुछ जान सके!

प्रदीप। हंस वाहिनी की अवतारिका लक्ष्मी की मूर्ति [illegible] उषा ही कुछ बताये।

उषा के नयनो में चंचलता डोली और प्रवाल अधरों पर स्नेह [illegible] की आभा-विकीर्ण करते हुये कोमल स्वरों से बोली।

मुझे आभासित हुआ है, आर्य। माया रूपी नट-नर्तकी ने उस अपङ्ग को अपने मोह जाल मे घेर लिया है।

मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, उषे। लोभ ने उक्त अपङ्ग को अपने बाहु-पाश में आबद्ध कर लिया तभी वह लोभ और मोह के वशीभूत धर्म की दुहाई देता और फूट फूट कर रोता है। इसीलिये कहते है कि—

नारी और लक्ष्मी इसी प्रकार के अनर्थ के कारण बनते आये हैं।

ऐसा न कहो तरुण। मङ्गल मूर्ति नारी जाति पर इस प्रकार का आरोप उचित नहीं। नारी विश्व की जननी, स्नेह का सम्बल और ममता की मूर्ति है। आप के पास तो ज्ञान है ही।

प्रदीप के कपोलो पर कुछ लज्जा की रेखा दौड गई और बोले । मेरा ऐसा भाव आप सरीखी विदुषियों के प्रति नही है, उषे । आप तो "ज्ञान श्री" की उपाधि से अलकृत हो ही चुकी । धर्म पुत्र ज्ञान ने सोचा होगा कि दोनो को ज्ञान कैसे बाटे ।

आपकी वाँणी मे आज व्यङ्ग क्यों है ?

उषा के 'ज्ञान श्री' हो जाने मे ।

उषा—ज्ञान शब्द पुरुष वाचक है । आप ने ही मुझे "ज्ञान श्री" की उपाधि से अलकृत किया । नारी जाति की सुकृति और विकृति पुरुष ही पर निर्भर है । पर इन छोटी २ बातो मे अपने विचारो को उलझाना व्यर्थ है ।

ससार मे रहकर सभी प्रपञ्च देखने करने पडते हैं, उषे । देवद्वार ऐसे पुनीत स्थान पर माया जब अपना वेष बदल कर पहुच जाती है और देवद्वार उसकी लीला का केन्द्र बन जाता है तब भला किसकी क्या कहे । भाव की ही तो यह यवनिका है जरा खिसकाया कुछ का कुछ देख लिया । भविष्य में मानव की परीक्षा कर यदि देवद्वार मे प्रवेशाधिकार दिया जाय तो उत्तम होगा ।

उषा—ज्ञानी-जन देखते और परीक्षा करते जाते है और अज्ञानी उलझनो में पड़ जाते हैं । कुछ करनी और कुछ कर्म गति । इतना कहकर दोनो ने देवता को प्रणाम किया । प्रदीप और उषा देवद्वार से बाहर आये और वहा से चलकर अपने निवास स्थान पहुचे ।

प्रदीप ने उस अपङ्ग से आकर कहा । जब तक तुम लोभ और मोह को अपने अन्दर से नही निकालते तब तक तुम्हे ऐसी आपत्तिया घेरे रहेंगी ।

इस माया जाल से मुक्त होना ऋषि, मुनि जनों से भी दुस्तर हो गया । श्रीमान जी !

सृष्टि की उत्पत्ति और सृजन काल के साथ माया का भी जन्म हुआ है । बडे बडे ज्ञानी, वैरागी इसी माया के चक्र में फस गये । उस महाप्रभु की विशेष कृपा से ही प्राणी इससे मुक्ति पा सकता है । परन्तु अपराधी दन्ड पायेगा ही । ईश्वर के यहा देर है अन्धेर नही ।

उषा—ज्ञान का घड़ा कभी कभी भरकर ऊपर छलक आता है, इसलिये "अत्त सर्वत्र वर्जयेत" कहा है । सभी कार्य सीमा बद्ध करना चाहिये । परन्तु इसके अर्थ यह नही कि पाप और पुण्य भी एक ही पलरे मे बराबर संतुलित अवस्था मे रहें ।

पाप-पुण्य का मूल्यांकन करना अथवा उसे परखना सरल नहीं था।

पाप-पुण्य के परख की कसौटी सत्य है और ज्ञान के बिन्दु में उनका मूल्यांकन किया जाता है परन्तु कभी पुण्य युक्त भूमि में भी प्राकृतिक गुण-दोषों से विकार आ जाता है।

कुछ दिवस पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय-धर्म-संसद के मुख्य सचिव द्वारा भेजा हुआ स्वीकृति का पत्र आया। विद्यालय के लिये उत्तम भूमि और उसके निर्माण का सारा व्यय समिति द्वारा स्वीकृत हुआ। साथही आचार्यों के आवास, छात्रावास तथा उनके भोजन वस्त्रादि की भी व्यवस्था समिति ने स्वीकार किया। आवर्तक सहायता के रूप में सवा कोटि की धन राशि अनुदान समिति द्वारा स्वीकार कर भेजा गया।

उस अनुदान को पाकर उषा और प्रदीप विश्व विद्यालय के निर्माणार्थ भूमि की खोज में निकले और धर्म प्राण भारत के अंचल में उत्तम जलवायु समस्त ऋतु में अनुकूल तपोभूमि पुण्यमयी भागीरथी के पावन तट पर विश्वविद्यालय का निर्माण करना निश्चय किया।

उषा और प्रदीप जब वहां से वापिस हरिद्वार होते हुये घर की ओर जा रहे थे। गंगा तट पर बैठे मुनि शून्यपाणि जी के पुनः दर्शन हो गये। दोनों ने मुनि जी को प्रणाम किया और चरणों के आगे बैठ गये।

मुनि जी ने पूछा—जीवन कैसा चल रहा है, साधना वृत्ति के पथिकों ?

उषा—मुनिवर के चरणों का प्रताप है।

प्रदीप–आप ही की प्रेरणा से अन्तर्राष्ट्रीय-धर्म-महा सम्मेलन और भावी कार्य क्रम बनते जा रहे हैं।

मुनि जी—ज्ञात हुआ एक अन्तराष्ट्रीय-धर्म-विश्वविद्यालय भी स्थापित करने का आयोजन है।

उषा—आपका कथन सत्य है, महाराज। इसी के निमित्त भूमि देखने गये थे।

प्रदीप—हम दोनो की उत्कट अभिलाषा आप ही से दीक्षा लेने की अभी तक बनी है।

मुनि जी–वस्तुत. भाव ही से गुरु शिष्य का अपनत्व सर्वोत्कृष्ट है। दया जिसके रोम कूपों मे प्रवेश करती हो, सत्य जिसके अन्तर्जगत के मैल को साफ कर शुद्ध कर चुका हो, क्षमा जिसका साक्षी बन कर मार्ग निर्देशन करता हो, धर्मयुत ज्ञान जिसके विवेक को सीख देता हो ऐसे प्राणी स्वयं गुरुता के पात्र हो जाते हैं।

उषा---अभी यह सब शिशु अवस्था मे हैं। कलि के एक थपेडे में सब निकल कर बाहर खड़े हो जाते है। जब तक धैर्य, दम, अस्तेय, आत्म शुद्धि, इन्द्रिय-निग्रह और अक्रोध इन्हे पूर्ण रूप से नही अपना पाते तब तक जीवन नैय्या सुचारूता से कैसे चले, तपोनिधि।

प्रदीप---दया, क्षमा, सत्य और ज्ञान को कलि महाराज का एक अनुचर भी आकर व्यथित कर डालता है। कलि की तो बात ही क्या, महाराज।

मुनि जी---इन चारो की दृढता आ जाने से मुक्ति मार्ग सरल हो जायगा। साधक इन्हो का सतत अभ्यास करते रहें। इतना कहकर मुनि जी आगे बढे।

उषा और प्रदीप पास के एक भव्य मन्दिर में भगवान के दर्शन करने गये। पहुंचते ही कृष्ण लीला आरम्भ हो गई। अनेक नव नारिकायें विभिन्न वस्त्रा भूषणों एवं सोलहो श्रृङ्गारों से अलङ्कृत भगवान कृष्ण के पद गाती हुई आरती उतारती। आरती गान के पश्चात् उषा और प्रदीप ने अपने मधुर कन्ठ से वन्दना करते हुये जैसे ही भक्ति मार्ग का गीत सुनाया सारा वातावरण भावनाओं मे विलीन हो गया। अन्त मे भगवान को प्रणाम करते हुये दोनो आगे चले। उनका विचार वहाँ से परिवर्तित हुआ और घर की ओर जाने की अपेक्षा यह धारणा हुई कि प्रकृति सुन्दरी का सतत नर्त्तन जो हिमालय के अन्चल में हुआ करता है उसे देखा जाय। एक मार्ग दर्शक को लेकर गङ्गोत्तरी की ओर बढे। उत्तर काशी से कुछ ही दूर आगे पहुंचे थे कि दिन--कर का यौवन क्षीण हो चला था और सन्ध्या केसरिया परिधान ओढ़ कर पर्वत के शिखर पर नाचने लगी थी इतने मे पार्श्व की झाडी झुर्मुटो मे कुछ खड खडाहट का शब्द हुआ और देखते ही देखते एक विशाल सिंह निकल कर उनके सामने खड़ा हो गया। सिह के शरीर पर बडे-बडे बाल और उसकी भयानक आकृति की झलक से ही दोनो का हृदय कम्पित हो उठा। परन्तु ज्ञान ने तत्क्षण पथ-पदर्शन किया और दोनो भक्ति भावना से आसन लगा कर बैठ गये। ध्यान मे भक्ति भाव की अनुरक्ति होते ही सिह पर देवी सवार होकर अवतरित हुई। नेत्र पट खोलते ही दोनो ने सिंह पर सवार देवी को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कुछ ही क्षणों में वह सिह नेत्रो से ओझल हो गया।

उषा ने प्रदीप की ओर भाव भरे नयन कोरों से निहार कर कहा। भक्ति ने कैसी रक्षा की। इस रहस्य को मैं समझ न सकी, प्रदीप। क्योकि भक्ति के पास रक्षा का अधिकार तो है नही।

प्रदीप—भक्ति धर्म की सहचरी है और धर्म साक्षात भगवान का स्वरूप है। इसलिये भक्ति के लिये क्या कठिनाई।

उषा—भाव ही के तो भगवान हैं। भावपूर्ण यदि भगवान की भक्ति में ध्यान लगाया जाय तो ऐहिक और पारलौकिक दोनों सुखों को प्राणी प्राप्त कर सकता है। इस युग मे भावना मात्र से भगवत प्राप्ति हो जाती है। धर्म और भगवान दोनो एक ही भावना के परिचायक हैं भगवत प्राप्ति अर्थात धर्म की प्राप्ति।

प्रदीप—धर्म ही भगवान का स्वरूप है। भक्ति जब धर्म की सहगामिनी है तो सर्वशक्तिमयी भक्ति को ही अपनाना है। आपत्ति काल मे भक्ति ही मुक्ति प्रदा-यिनी है।

उषा—भक्ति ही ने अपनी शक्ति द्वारा कामरूपिणि से इसे बनाया।

श्रवणं, कीर्त्तनं विष्णोः, स्मरणम् पाद सेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम्॥

अर्थात श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, चरण सेवन, अर्चना, वन्दना, सेवक सेव्य भाव, सखा भाव और आत्म समर्पण, भक्ति के यही नौ साधन अङ्ग हैं जो कि नवधा भक्ति के स्वरूप को अलकृत करते हैं। इसका अन्तिम सोपान आत्म समर्पण है।

प्रदीप—इस नवधाभक्ति में यह सिद्ध किया है कि भक्ति दुर्गा का रूप धारणकर काल क्या कलि के महाकाल का भी विनाश कर देती है। इसीलिये दुर्गा के सहस्र स्वरूपो का वर्णन करते हुये "काल विनाशिनि" (मातदुर्गे) कहा है।

उषा—भारतीय धर्मशास्त्र ने भगवत प्राप्ति के तीन ही मार्ग बताये हैं। प्रथम, भक्ति-मार्ग दूसरा ज्ञान-मार्ग और तीसरा कर्म-मार्ग। इसमें प्रथमता भक्ति को ही दी है। परन्तु भक्ति को ज्ञान और कर्म मार्ग के समकक्ष क्यों माना गया ? जबकि भक्ति ज्ञान की जननी है।

प्रदीप—भक्ति ही से ज्ञान उद्भूत होता है, उगे। भाव संचार के साथ शास्त्र ने अव-स्थायें बताई हैं। जिस प्रकार प्राणी की बाल, युवा और वृद्धा तीन अवस्थायें होती हैं उसी प्रकार भक्ति, ज्ञान और वैराग अवस्थानुसार उदबोधित होता रहता है। हम दोनों ने प्रथम ज्ञान को ही पाया परन्तु ज्ञान के गम्भीर सागर में पूर्ण रूप से अवगा-हित नहीं हो सके।

उषा—पूर्व जन्म के महान पुण्य के अभ्युदय होने पर तथा कठोर व्रत एव तपश्चर्या के पश्चात से ही ज्ञान का स्वरूप अलकृत होता है। भावना, श्रद्धा और विश्वास की सीढ़ियो पर चढ़ते हुये हमे ज्ञान के साक्षात दर्शन तो हुये और सरक्षण भी मिला परन्तु इससे हमें परितुष्ट होकर बैठना नहीं। हमे अपनी भावनाओं को नित्य सीचते हुये मूल तत्व-ज्ञान की प्राप्ति हेतु व्रत तपश्चर्या निरन्तर करते रहना होगा।

प्रदीप—हमें दसों इन्द्रियों पर शासन करने वाले मन को नियन्त्रित करना है अन्यथा सारा ज्ञान मन की कल्पना मे विलीन हो जायगा।

उषा—मन पर नियन्त्रण करना वस्तुत कठिन है। अभी हमे कई सीढ़िया चढ़ना है जिनमें धृति, दम, अस्तेय और इन्द्रिय-निग्रह यह चार प्रधान हैं।

उषा और प्रदीप भक्ति और ज्ञान के मूल-भूत सिद्धान्तो एवं उनके साधनो की उपलब्धि हेतु विचार विमर्श करते रहे। पर्वत की उपत्तिकाओं में कुछदिन विचरण करने के पश्चात अपने निवास नगर मे चले गये।

तृतीय पराग

प्रदीप के भव्य-भवन में बाहर एक बड़ा कक्ष (ड्राइङ्ग रूम) था जिसकी भूमि पर काश्मीर के कालीन बिछे थे, जिन पर उभरी हुई कुसुम कलिकाएं प्रकृति की कुसुम पतियों से होड ले रही थी। कालीनो पर मूल्यवान सोफा सेट पड़े थे, जिनके मध्य एक गोलमेज पर पुष्प पात्र रखा था। इस पुष्प पात्र में प्रतिदिन उद्यान पाल प्रात काल सर्वोत्तम सुगन्धित पुष्पो के स्तवक लगा देता था। द्वारों पर बहुमूल्य रेशमी पर्दे पड़े थे, जिन पर सोने चांदी के तारो के काम बने थे और दीवारों पर विश्व के लब्ध प्रतिष्ठित चित्रकारों द्वारा चित्रित चित्रावलियां लगी थी। प्रदीप प्रातः नौ बजे से मध्यान्ह एक बजे तक अपना व्यवसाय सम्बन्धी कार्य करते तत्पश्चात् कुछ भोजन और विश्राम के उपरान्त इसी कक्ष में आकर बैठ जाते थे। जैसे ही प्रदीप अपने ड्राइङ्ग रूम में आकर बैठे और पार्श्व मे रैक से निकाल कर किसी दार्शनिक की किसी पुस्तक के पन्ने पलट ही रहे थे कि सामने का पर्दा कुछ हिला और उषा ने कक्ष में प्रवेश किया।

उषा श्वेत रेशमी साडी और श्वेत रङ्ग की चोली पहने थी। जिसमें कसे हुये उसके उरोजों की आभा फूट पड़ रही थी। कक्ष में प्रवेश करते ही उसने अपने दोनो गुलाबी हाथो को जोड कर प्रदीप का अभिवादन किया और प्रदीप के इङ्गित पर उसके पास ही सोफे पर बैठ गई।

प्रदीप ने हँस कर कहा। आज तो तुम्हारे गौरवर्ण पर यह श्वेत परिधान ऐसा प्रतीत होता है मानो मान सरोवर की कोई राज मरालिनी हो।

उषा कुछ सकुचाती हुई बोली। आप में बहुत से गुण हैं। अपने व्यवसाय कक्ष मे पहुँच कर आप उच्चकोटि के व्यवसाई और उद्योग पति हो जाते हैं। जब कपिल और कडादि के सूत्रों की व्याख्या करते है तो उच्चकोटि के आध्यात्मिक और दार्शनिक हो जाते हैं। पता नहीं इस समय आप कवि कैसे हो गये ?

प्रदीप ने स्मित मुख से कहा। उषे। तुम वचनों में बड़ी निपुणा हो। मै तो केवल वह दर्पण मात्र हूँ जिसपर किसी दूसरे की रश्मियां जब पड़ती हैं तो वह

दीप्तायमान हो जाता है। अच्छा बताओ। आज प्रातःकाल से किन दार्शनिक ग्रन्थों का अवलोकन तुमने किया।

विद्वत्वर्य। आज मै शङ्कर का ब्रह्म सूत्र पर भाष्य पढ़ रही थी जिसमें उन्होने माया को नटनर्तिकी के रूप में सम्बोधित करते हुये कहा कि यह नटनर्तकी माया तीनो लोकों में व्याप्त है। देवासुर सग्राम इसी ने कराया।

मैंने प्रायः यह अनुभव किया है कि तुम मेरे मन की कल्पित मुक्तावलियों को चुन लेती हो।

इसमें आश्चर्य हो क्या। अभी आपने ही तो मरालिनी कहा है।

ऐसा प्रतात होता है कि कभी ज्ञान भी माया से भ्रमित हो जाता है। स्वाध्याय से पता चलता है कि माया सत, रज और तम तीनो गुणो में व्याप्त है।

प्रदीप—परन्तु हम दोनों तो सतोगुणी माया मे आते है।

उपा—अभी तक हम यही समझते है। आगे की भगवान जाने।

प्रदीप—तुम अपना भविष्य भगवान पर क्यो छोड़ती हो उषे? जबकि उस अज्ञात सत्ता का पता तक नहीं।

उषा स्मित मुख हो बोली। यह माया का जाल ही तो है जो ईश्वर की सत्ता को उद्भासित होने नही देता।

प्रदीप : घट-घट मे माया व्याप्त है। धर्म, कर्म, राग द्वेष सभी में माया जाल बिछा है। प्राय. लोग 'प्रभु की माया' कहकर सम्बोधित भी करते हैं, उषे।

उषा · भेद केवल गुण, कर्म और विवेक का है। भक्ति, सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा आदि मे माया सतोगुणी भावना से रहती है परन्तु काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहकार आदि में माया रज और तम के बिमिश्रण से चलती है।

प्रदीप : सतोगुणी प्राणियों में भी कभी २ माया तामस को धारण कर रमण करती है, उषे। क्योंकि "क्रोधोऽपि निर्मल धियाँ रमणी यतास्ति" अर्थात निर्मल बुद्धि व.लों का क्रोध भी रमणीय है। अन्तर इतना है कि वह क्रोध इस निर्मल बुद्धि पर विकार का कारण नहीं बन पाता।

उषा : यह तो माया का स्वरूप ही है। सभी द्वार को खट खटाती और टटोलती है। किसी पर इसका रंग चढ़ता है और किसी पर नही। सब उसी का अलकर है।

प्रदीप : हम दोनों के पास भक्ति, भावना, श्रद्धा, सत्य और ज्ञान जैसे कोष हैं ही । यदि इन्ही को लेकर हम मानव-धर्म का प्रचार करें तो उत्तम होगा, सखे ।

उषा : मैं भी इसी कल्पना में थी । समाज में फैली हुई साम्प्रदायिक विषमता, जातीय तथा राष्ट्रीय संघर्षों की हानि भी इन्हीं से दूर की जा सकती है । अहिंसा, अपरिग्रह, प्रेम, दया, सत्य, क्षमा और ज्ञान के द्वारा ही हम इन पर विजय पा सकते हैं ।

अन्तर्राष्ट्रीय-धर्म-संसद में विश्व के सभी धर्मों के प्रमुख आचार्यगण ऐक्यता की आधार-शिला पर सुसंगठित हुये । सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, इन्द्रिय-निग्रह धर्म के इन्हीं मूल सिद्धान्तों का व्यापक प्रचार करने के लिए प्रत्येक प्रधान विद्वान वक्ता विविध स्थलो पर भाषण देते और सदस्य बनाये जाते । धर्मतत्त्व का सर्वतोमुखी विकास करने के लिये विभिन्न धार्मिक एवं आध्यात्मिक ग्रन्थों का प्रकाशन होने लगा और तत्सम्बन्धित साहित्य का सङ्कलन किया जाने लगा । देश विदेश के समस्त केन्द्र स्थानों में एक ही समय पर प्रार्थनायें होने लगीं । नगर-सम्मेलन, जिला सम्मेलन, प्रान्तीय सम्मेलन, राष्ट्रीय-सम्मेलन तथा अन्तर्राष्ट्रीय-सम्मेलन क्रमानुसार आयोजित किये जाने लगे । अन्तर्राष्ट्रीय धर्म विश्व-विद्यालय विश्व के समस्त धर्मों की धार्मिक भावनाओं का तुलनात्मक एवं वैज्ञानिक अध्ययन करने तथा विभिन्न मत मतान्तरों में उलझी और साम्प्रदायिकता से उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाकर उनकी अनेकता में एकता लाने के लिये एक महा-निर्देशन केन्द्र स्थापित हुआ । इस विश्व विद्यालय द्वारा मानव समाज के कल्याणार्थ आध्यात्मिक शिक्षा के साथ योग, ज्ञान-विज्ञान एवं कला की भी उच्चस्तरीय शिक्षा दी जाती । जिससे समस्त छात्र सात्विक भावनाओं से युक्त होते ।

सन्ध्या की बेला थी उषा और प्रदीप कलकत्ते की घनी नगरी में चारों ओर विशाल अट्टालिकाओं से घिरे हुये एक मनोरम उद्यान में अन्तर्राष्ट्रीय-धर्म-संसद द्वारा आयोजित सभा स्थल पर भाषण देने गये । सभा का विशाल प्राङ्गण चारों ओर से खचा-खच भरा था । लाखों नर नारी भाषण सुनने के लिये इच्छुक थे । सभा के मञ्च पर बड़े २ शास्त्रार्थ महारथी बैठे थे । विषय था 'धर्म और समाज' ।

सभा मण्डल के स्थानीय संयोजक श्री नलिनी रञ्जन सेन ने उषा और प्रदीप का परिचय देने के पश्चात् उनसे अमृतमय उपदेशों का रसास्वादन कराने के लिये प्रार्थना की ।

उषा और प्रदीप के मञ्च पर पहुंचते ही चारो ओर से हर्ष ध्वनि हुई । दोनों ने अत्यन्त मधुर कण्ठ से प्रथम सस्वर वेद मन्त्र का पाठ किया तत्पश्चात धर्म के

दसो लक्षणो को प्रतिपादित करते हुये पद सुनाया जिसका रसास्वादन करते ही उपस्थिति समूह भावनाओ मे खो गया ।

प्रथम उषा ने समूह को अभिवादन करते अपना भाषण आरम्भ किया ।

भक्तिमयी पराम्वा महा माया तथा प्रेमानुरागमान समस्त प्राणी जन ।

आज का प्रस्तुत विषय "धर्म और समाज ' है । अर्थात धर्म का समाज से क्या नाता ? धर्म की उत्पत्ति और समाज का उसके साथ विकास कब और कैसे हुआ ?

सृष्टि की उत्पत्ति और सृजन काल के साथ मानव अपना समाज बनाता गया ।

समाज एक था पर विभाग गुण कर्मानुसार अलग थे । अर्थात समाज ने चार विभाग धारण किये । धारण करने वाला वह समाज धर्म के नाम से पुकारा जाने लगा । धर्म का सीधा अर्थ धारण करना है । यहा पर एक शंका यह उत्पन्न हो सकती है कि जो समाज इन चारों गुणो को धारण करे उसे क्या कहा जाय । तार्किक कहता है कि उस समाज को आत्मा के नाम से पुकारे । जिस प्रकार देह और आत्मा का सम्बन्ध है अर्थात पाँच तत्वों से बनी आत्मा पर पञ्चभूत, दस इन्द्रियो और ग्यारहवा मन रूपी देह बना है उसी प्रकार आत्मा मे विभिन्न धर्मों का आविर्भूत होना सिद्ध होता है । कार्य कारण को देखते हुये धर्म को विभिन्न कोटियों एवं श्रेणियो मे विभाजित कर समाज ने स्वय जन्म दिया जो आज टुकडो मे बटकर प्राचीन समाज के गौरव को साम्प्रदायिकता में ढाल कर उसे गर्त्त की ओर लिये जा रहा है । निजी स्वार्थो ने उस समाज को विकृत कर अपने संकुचित क्षेत्र में बन्दी बना रखा है जिससे आज यह विकार बनकर स्वयं उन स्वार्थी लोगो को खाने की चेष्ठा करने लगा । ऐसी स्थिति में हमें आध्यात्मिक और धार्मिक भावनाओ के साथ पुन: ऐसा समाज सुसगठित करना है जो समस्त विश्व की बाग-डोर हाँथ मे लेकर मानवमात्र के कल्याणार्थ हर सम्भव साधन बनकर एवं उनके भाव मूलक तथ्यों की खोजकर उन्हें सही मार्ग पर ला सके । इसके लिये हमें अग-णित सेवा शिविर और सदन खोलने हैं जिनमें शुद्ध सात्विक आहार विहार के साथ ऐसी शिक्षा दीक्षा दी जाय जिससे परस्पर प्रेम, ममता, दया, क्षमा, सत्य, अहिंसा और ज्ञान की भावना जाग्रत हो ।

इस भाव पूर्ण उपदेश को सुनकर समस्त जनता की बिखरी हुई भावना एक सूत्र में बंध गई । चारों ओर से जय २ के नारे लगने लगे ।

इसके पश्चात् प्रदीप का भाषण हुआ ।

परम आदरणीय मातृभक्ति तथा उपस्थित महानुभाव ।

भक्ति स्वरूपा परम विदुषी उषा ने आपके समक्ष गागर में ही सागर भर दिया। फिर भी मैं अपने कुछ विचारों को आपकी सेवा में रखता हूँ। आज का विषय "धर्म और समाज" को लेकर चला है।

धर्म और समाज दोनो अन्योन्याश्रय भावमूलक है। अर्थात धर्म ही समाज और समाज ही को धर्म कहते हैं। यद्यपि दोनों पृथक २ नामों की संज्ञा देकर पुकारे जाते हैं। पर उनका आन्तरिक एवं व्यावहारिक अर्थ एक ही है। इतिहास और सभी धार्मिक ग्रन्थों के मूल आधार हमें साक्षी देते हैं। कहीं २ धर्म समाज के नाम से भी पुकारा गया है। प्रकृति के गुण धर्म एवं कर्मों के अनुसार मानव ने अपने २ कार्य विभाजित कर परस्पर एक दूसरे का सहायक अंग बनकर सुनियन्त्रित रूप से समाज को जन्म दिया। सृष्टि की उत्पत्ति प्रारम्भ में गिने चुने प्राणियो के मध्य जात पात का कोई स्वरूप ही न था। पर ज्यों २ उनका परिवार बढा और वे अपने २ गुणों से युक्त जन्म लेकर कर्मों में प्रवृत्त हुये उसी क्रम से समाज की रचना हुई। भारतीय संस्कृति तथा उसके धर्म ग्रन्थों, जैसे उप-निषदो एवं दार्शनिक सिद्धान्तों के अध्ययन करने से पता चलता है कि आदि शक्ति जिसने अपनी सत्ता को विभिन्न रूप मे बांटा जिसके द्वारा आज दिन भी समस्त त्रैलोक्य काल क्रमानुसार चलता जा रहा है उस जगन्नियन्ता के आधार मूल तत्व दर्शियों एवं मुनियों ने समाज को धर्म की धुरी पर स्थापित किया है। "धारण करने वाला वस्तु, समुदाय, उसका विवेक, विचार, तथा उसका जीवन दर्शन "इस प्रकार शब्दो के भाव मूलक तथ्यों को देखने और समझने से" धर्म शब्द समाज का भावाभिव्यञ्जन करता है। इसी दृष्टिकोण से हमारे ऋषि मुनियों ने अपने दिव्य ज्ञान चक्षु से शब्दों की व्युतपत्ति एवं उनके ज्ञान पदार्थों को समझकर ही "धर्म" शब्द की व्यापकता देते हुये समाज के भीतर ढाला है। निष्कर्ष रूप में धर्म और समाज एक ही हैं।

ऐसे तार्किक एवं मर्म स्पर्शी प्रमाणों द्वारा प्रदीप ने सरल और सुबोधगम्य ढंग से धर्म और समाज का एकीकरण किया जिससे जनता में श्रद्धा और विश्वास की दृढ़ता हुई। अन्त मे उपस्थित समूह ने अपनी २ भावनाओं को अभिव्यक्त करते हुये उनके साथ एक नये समाज मे प्रविष्ट कर कार्य करने की इच्छा प्रकट की।

सभा स्थल से उठने के पश्चात उषा और प्रदीप विश्राम कक्ष में गये पर आगन्तुक लोगो का ताता लगा रहा। दूसरे दिन प्रात. पांच बजे से जनता जनार्दन

की भीड़ बढ़ने लगी। अपनी शंकाओ के समाधानार्थ कुछ ने संयुक्त रूप से लिखकर यह प्रश्न किया कि हिन्दू, इस्लाम, ईसाई, बौद्ध, जैन, सिक्ख ऐसे अनेक जातीयता के नाम से पुकारे जाने वाले धर्मों को आप किस प्रकार एक रूपता में लायेंगे ?

उषा· संसार मे अनेक जातियां और धर्म बन गये है पर उनके आधार मूल सिद्धान्त बहुत कुछ एक दूसरे के धर्मों से मिलते जुलते है। जैसे सत्य बोला, सत्य का आचरण करना आदि। अतः हम प्रथम सत्य ही का एक मञ्च बनाकर सबको एक सूत्र मे पिरोहेंगे। जैसा कि हमारे राष्ट्र पिता महात्मा गाधी ने आदि में हमारा पथ प्रदर्शन किया। इसी प्रकार पञ्चशील सिद्धान्तों के आधार पर, जात सम्प्रदाय एव वर्ग विहीन समाज बनायेगे जिससे सभी धर्मो के अनुयायी अपने अपने परिधान को त्याग कर एक विशुद्ध नैतिक धर्म को अपनायेंगे।

कुछ लोगों ने प्रश्न किये कि रोटी-बेटी खान-पान, आहार-विहार जो जातीयता की संकुचित भावनाओ मे अपना घर कर चुका है यहां तक कि एक ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मण जाति के साथ रोटी-बेटी का नाता नही रखता। इसका समाधान कैसा होगा ?

प्रदीप · जहां सत्य ने अपने स्वरूप को पहिचाना और धर्म अपने सह-अस्तित्व को लेकर आगे बढा उस समय एक ही मानव-धर्म और वही उसका समाज विश्व मे व्याप्त होकर इस प्रकार की सकीर्ण वृत्तियों को स्वय तिरोहित कर देगा। परन्तु हमें प्रथम पञ्चशील सिद्धान्तों के आधार पर ही सबको समेट कर दुनिया मे धर्म की स्थापना पुन करनी है।

इस प्रकार समाधान करते दोनों वहां से प्रस्थान कर घर वापिस आये।

कुछ दिन बाद साम्प्रदायिकता की आग भड़की जो समाचार पत्रों द्वारा विष-वपन करने लगी। निजी स्वार्थों के वशीभूत धर्म की दुहाई देते हुये कुछ लोग बोले। यह कौन धर्म सुधारक बनकर सारे संसार के धर्म को तोड़ कर एक नया धर्म विश्व मे चलाना चाहता है ? हमारे धर्मों का अपना अपना स्वरूप है और सबकी अपनी अपनी मान्यतायें और अपना अपना विश्वास है जिन्हें हमारे प्रवर्त्तकाचार्यों और पूर्वाचार्यो ने सींचा और हरा भरा किया है। अनेक गुण धर्मों से अलंकृत ईसाई, इस्लाम, बौद्ध, सिख, वैदिक ऐसे विश्व के अनेक धर्मो के धर्माचार्यो ने अपने अपने धर्मों की केवल रक्षा ही नहीं की अपितु विकसित एवं पल्लवित किया जिन्हें आज एक छोटा सा वर्ग खडा होकर ललकारने का दु साहस कर रहा है। संसार के समस्त धर्मों के धर्माचार्यों को शीघ्र ही सुसंगठित होकर ऐसे उभरने वाले विरोधी वर्ग

को त्वरित शक्तिहीन कर देना चाहिये । अन्यथा यह विकार समस्त धर्मों को निगल जायगा । सभी धर्मों का वैभव और उनकी परम्परागत कमाई क्षण के लिए विलीन हो जायगी । अतएव सब को संयुक्त मोर्चा बनाकर व्यापक आन्दोलन छेड़ देना चाहिये जिससे सभी विरोधी तत्व अपने मुंह की खाकर भविष्य में कभी न उभर सकें । जैसे ही यह भाव समाचार पत्रों में प्रकाशित हुए, संसार के कोने कोने में एक ही ध्वनि खन्डन के रूप में सभी समाचार पत्रों द्वारा प्रकाशित होने लगी धर्म के ठेकेदारो को हटा दो, साम्प्रदायिकता को मिटा दो, संसार की ओर से आने वाले धर्म की पुन स्थापना हो जिससे विश्व बंधुत्व की भावना आये और मानवीय समाज का रूप एक धर्म के सच्चे साचे में ढले । सच्चा न्याय, सत्य का व्यापार, सभी जगत व्यापार सत्य के आधार पर हों । इस प्रकार साम्प्रदायिकता की दौड उलटे मुँह एक ही थपेड़े से समाप्त हो गई ।

इस चहल-पहल से संसार में खलबली मची । कुछ लोगों के मन बदले, मस्तिष्क बदले और कुछ के मन, मस्तिष्क दोनों बिगड़े । जगह जगह कुछ विवाद चला और कहीं कहीं साम्प्रदायिक झगड़े हुये । सभी धर्म और जातियों के कुछ धार्मिक उषा और प्रदीर के भाषण पर तर्क करते मार्ग में आ रहे थे । एक का नाम था दिनेश दूसरे का शमसुद्दीन, तीसरे का यू० एन० फिलिप, चौथे का सोडो ओकानो पाचवें का चन्द्रमल जैन और छठे का नाम त्रिलोचन सिंह था ।

दिनेश ने कहा : न रहे बांस और न बजे बांसुरी । आज के जमाने में कौन धर्म-कर्म मानता और करता है । जो हैं भी वह भी लकीर के फकीर की तरह लीक पीटते है ।

शम्सुद्दीन : हम लोग जब तक नमाज़ नही पढ़ लेते तब तक खाना नहीं खाते । इस्लाम धर्म में बड़ी ताकीदें दीं हैं ।

यू० एन० फिलिप : हमारे यहां सप्ताह में एक दिन ईश्वर (गाड) का ध्यान कर गिरजा घरों मे यह प्रार्थना की जाती है कि जहाँ तक हो सके ईश्वर हमें असत्य से बचाये ।

सोडो ओकानो बौद्ध भिक्षु ने निवेदन किया : संसार को अपना कुटुम्ब समझ कर प्राणिमात्र पर दया करना हमारा कर्त्तव्य है ।

चन्द्र मल जैन : अहिंसा तथा अपरिग्रह का यथा सम्भव हम लोग पालन करते हैं ।

त्रिलोचन सिंह ने सहिष्णुता पूर्वक कहा · हमारे गुरू ग्रन्थ मे सत्य का दरबार है। सभी पर दया एवं सबको सहायता देना लिखा है।

दिनेश ने पुन. कहा चलें हम सब सामने उद्यान की हरी भरी दूर्वा पर बैठकर विचार करें।

दिनेश · आप सब अपनी २ सम्मति यह दें कि आप नव-संगठित अन्तर्राष्ट्रीय धर्म संसद का समर्थन करते हैं या पुरातन धार्मिक रूढ़वाद का।

सबने एक स्वर से दिनेश की ओर सबोधित कर कहा। सर्व प्रथम हम आपके विचार जानना चाहते है।

दिनेश · धर्म के नाम पर पक्ष और विपक्ष दोनो एक मत है, बन्धुवर्य। विचार केवल उनके नियमों तथा आचरण करने का है। विश्व व्यापी सभी धर्मों के कुछ ही धर्माचार्य धर्म के दसो लक्षणों से व्याप्त होंगे अन्यथा सभी कलि के प्रभाव से धर्म-च्युत हो चुके हैं और किन्ही धर्म स्थानो को विभिन्न प्रकार के व्यापार केन्द्र बना रखे है। ऐसी स्थिति मे धार्मिक क्षेत्रों, मन्दिरों, मठों, गिरजाघरो, मसजिदों आदि समस्त तीर्थ स्थलो की पुनीत भावना तथा उनकी पवित्रता की रक्षा किस प्रकार हो सकेगी। यह प्रश्न विश्व के समस्त प्राणियों के समक्ष है। विश्व का विवेक शील मानव या राष्ट्र किसी भी धर्म स्थान की मान-मर्यादा भंग करना उचित नही समझती। भारतीय राष्ट्र ऐसे पुनीत धर्म स्थानो की मान प्रतिष्ठा की रक्षा करती है जहां सभी जाति. वर्ग एवं धर्म के अनुयायी सुख की नीद सोते है। भारत की संस्कृति और उसके दार्शनिक सिद्धान्त इस बात के साक्षी हैं। भ्रष्टता निवारण करने तथा चारित्रिक एव नैतिक स्तर को ऊंचा उठाने के लिये ही नव संगठित धर्म समाज की रचना हुई है। भले ही वह रूढि गत साम्प्रदायिकता के लिये अभिशाप हो पर विश्व के लिये परम कल्याण प्रद है।

शमसुद्दीन ने कहा। आज की दुनिया मे तेजी से बढते हुये भ्रष्टाचार और पाप को मद्देनजर रखते हुये धरम करम की कोई अहमियत नहीं रह गई। मौलवी, मुल्ला, पंडित. पुजारी, इनके तो आज कल रोटियो के लाले पढे हैं। कुछ ही ऐसे खुशहाल हैं वरना ज्यादातर बेचारे बुलबुल बटेरें, कबूतर और मुर्गिया पाल कर अपना बसर करते हैं। पुराने जमाने मे इन सबों की इज्जत थी। यह लोग भी तहे दिल से धर्म, कर्म इस्त दुआ किया करते थे। खाने पीने, कपडे लत्ते की इन्हे कोई फिक्र न थी जब कि आज इन्हें दाने–दाने की मौताजगी है। मजबूरन इन लोगो ने अपना दूसरा रास्ता अख्तियार किया और बहुतेरे रोजगार और नौकरी

पेशे में लग गये। यह जमाने की बलिहारी। नई दुनिया, नया समाज और नया धर्म बनाने की बात जो चल रही है वह भविष्य में है। ... सबूल हमी और साफ साफ भी है, होना भी चाहिये बशर्ते दुनिया साथ दे।

यू० एन० फिलिप : हमारे ईसाई धर्म के मतानुयायी दुनिया में सभी धर्मों से विस्तृत और अधिक सख्या मे हैं। जिन दस लक्षणों की सच्ची आवाज विश्व-धर्म-समाज द्वारा उठाई गई है उसे दुनिया का कोई भी धर्म ना पसन्द नहीं कर सकता। कोई भी धर्म इन दस लक्षणो के बिना जीवित नहीं रह सकता। दुनिया के हर स्कूल और कालेजो मे इन दसो लक्षणों की शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय तो आने वाली पीढियों के लिये कल्याणप्रद होगा। संसार से द्वेष भाव का नाम मिटेगा। सभी प्रेम मय हो जायेंगे। सतोगुणी भावनायें वायु मण्डल में आन्दोलन कर शुद्ध जलवायु देंगी जिससे पृथ्वी धन धान्य से परिपूर्ण हो जायगी। इस दृष्टि से नव-सगठित धर्म समाज उपयोगी सिद्ध होगा।

सोडो ओकानो : हमारा बौद्ध धर्म इन सभी लक्षणों का सदा से पालना रहा। हमारे पञ्चशील सिद्धान्तो से यह सभी लक्षण मिलते जुलते हैं ऐसे पुनीत धर्म के पुनरुत्थानार्थ हमारे धर्म के समस्त अनुयायी अपना तथा और दान देंगे।

चन्द्रमल जैन : धर्म के दसों लक्षणों मे युवक एक नये धर्म की विश्व में कल्पना करना कोई आश्चर्य की बात नहीं। जैन धर्म आरम्भ से ही इन्हीं मूल सिद्धान्तों पर चल रहा है। हमारे धार्मिक सिद्धान्तों की जाग्रति स्वतः हो गई।

त्रिलोचन सिंह : इस प्रकार विश्व-व्यापी-रूप धर्म का पाकर हमें प्रसन्नता हुई। यह हर तरह से मानव मात्र के लिये कल्याण प्रद है। विश्व के प्रत्येक धर्म का सच्चा अनुयायी इसमें तन मन धन से पूर्ण सहयोग देगा। उषा और प्रदीप द्वारा समाचार पत्रो मे प्रसारित केवल सत्य का आन्दोलन छेड़ा गया है। अगर दुनिया सत्य मय हो जाय तो सभी खाइयां पट जायें। सत्य ही ब्रह्म और सत्य ही धर्म का सार है। गुरू नानक जी ने ओंकार एवं सत् नाम ही पुकारा। सत्य साधना द्वारा दुनिया मे कञ्चन बरसने लगे। वेदो ने सत्य को ईश्वर कहा है। उषा और प्रदीप ने सत्य के सहारे सारे आयोजन किये हैं। विरोधी पक्ष के सभी आरोप भ्रान्त युक्त हैं।

अन्त में दिनेश ने सबको हृदय तल से धन्यवाद दिया और सब अपने २ आवास की ओर चले।

यद्यपि इस आयोजन में विश्व के सभी धर्म एवं सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्यों ने सम्मिलित होकर अनेकता मे रहते हुये धर्म के मूलभूत सिद्धान्तो के आधार पर एक रूपता लाने के लिये एक स्वर से साथ देना स्वीकार किया परन्तु चार्वाक मत के सस्थापकाचार्य बृहस्पति मतानुयायियो ने विरोध आभासित किया।

चार्वाक का सिद्धान्त अनीश्वरवादी है। इस मत ने परलोक का कोई स्थान दिया। देह द्वारा शरीर का भोग, देह ही आत्मा और मरण देह ही का माना गया है। इसमे आत्म चिन्तन करने की कोई सुगन्ध नही आती। चार्वाक ने धर्म को कोई पुरुषार्थ रूप मे नही माना। मानव का 'काम' ही पुरुषार्थ चार्वाक सिद्ध करता है। शरीर सुख की प्राप्ति जिस प्रकार भी हो उसी के आधारभूत सिद्धान्तो पर यह मत स्थापित है। मनुष्य इसी जन्म मे ही अपने सुख दुख का भोक्ता है। खाना, पीना, और मौज उडाना यही चार्वाक का मूल मन्त्र है। चार्वाक का सिद्धान्त प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानता है। अनुमान प्रमाण या अप्रत्यक्ष प्रमाण की सत्ता का कोई महत्व चार्वाक मत नही देता। इन्द्रिय द्वारा विषय भोग की प्रत्यक्ष प्रामाणिकता को यह मत सिद्ध करता है। प्रत्यक्षीकृत जगत को सत्य और अप्रत्यक्ष को यह मत असत् मानता है। स्पर्शेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय चक्षुरिन्द्रिय और श्रोत्रेन्द्रिय इन्ही पाच प्रकार के प्रत्यक्ष अनुभूत प्रमाण द्वारा जो बात सिद्ध होती उसी को यह सिद्धान्त स्वीकार करता। परलोक मिथ्या और आकाश को जगत का आवरण मात्र होने से शून्य माना है। किसी अज्ञात शक्ति की सत्ता को यह मत स्वीकार नहीं करता। चार्वाक मत कब बना? इस सम्बन्ध में इतिहास इसे वैदिक धर्म के आस पास ही बताता है। जिससे इस मत की प्राचीनता झलकती है। जल, वायु, अग्नि और पृथ्वी इन्ही चार भूतों को लेकर चार्वाक मत की स्थापना हुई है। इन्ही चार तत्वो के आधार पर शरीर का जन्म, मरण और आवागमन चार्वाक का सिद्धान्त अभिव्यत करता है। यह देह नाश होकर इन्ही चार तत्वो में मिलती और फिर इन्हीं तत्वो से शरीर धारण करती है। इन्ही चार भूतों से बना हुआ "मन" को किन्ही आचार्यों ने आत्मा माना है और किन्ही आचार्यों ने "मन" को इन चार भूतो का मेरू दन्ड माना है। और देह को आत्मा माना है। इसलिये चार्वाक मत के अनेक प्रतिपादक आचार्यों ने अपने विभिन्न विचार अभिव्यक्त किये है। बौद्ध ग्रन्थों मे भी चार्वाक का निर्देशन कई स्थलों पर पाया जाता है और जैन ग्रन्थो में भी चार्वाक के सिद्धान्तो का निर्देशन इसी प्रकार कई प्रसंगों मे मिलता है। जल, वायु, अग्नि और पृथ्वी इन चार प्राकृतिक गुण कर्मों और स्वभाव के अनुसार मिश्रण प्रक्रिया के योग से देह को धारण करत

हुआ चैतन्य रूपी मन का आविर्भाव हुआ। [illegible] इसे हम चार्वाक मत का पोषक यह सिद्ध करता है कि जिस प्रकार कत्था, चूना और सुपारी के मिलन से पान का एक रस रूप हो जाता है जिसके सेवन करने से [illegible] मुख के अन्दर व्याप्त होकर प्रकट होती है, ठीक उसी प्रकार चार भूतों के संयोग से चैतन्य रूपी देह को ही चार्वाक मत आत्मा मानता है। चार्वाक का सिद्धान्त पूजा, पाठ, यज्ञ, श्राद्ध आदि का कट्टर विरोधी है। धर्म और अधर्म की झूठी कल्पना में इनका कोई विश्वास नहीं और न पाप पुण्य के फल को ही यह मत स्वीकार करता है। इस मत से अर्थ और काम दो ही जीवन के सार हैं। भौतिकवाद के स्वयं निर्मित साधनों द्वारा कर्म में रत रहना, इसी जन्म में सुखी रहना, स्वतन्त्र और सुखी भौतिक जगत को अपना स्वर्ग और नर्क समझना इस मत का मुख्य ध्येय है। चार्वाक का मत अन्ध श्रद्धा और विश्वास को लेकर नहीं चलता बल्कि किसी वस्तु या प्राणी को तर्क की कसौटी पर परखता है। इस देश में आज विज्ञान की प्रगति के कारण यह मत अपना स्थान पा गया है जिसके फलस्वरूप पाश्चात्य देशों में इसे अधिक स्थान पनपने का मिलने लगा। चार्वाक मत के प्रमुख प्रचारक आचार्य बृहस्पति ने आर्थिक व्यवस्था का प्रतिपादन करते हुये एक सुव्यवस्थित रूप सिद्धान्त के रूप में अर्थशास्त्र की रचना की और मानव जाति को एक सामाजिक प्राणी का परिणाम माना। वह राजा को ईश्वर मानते रहे जिसमें दण्ड और दया दोनों नियमों का पालन कराया जाता और मानव को सामाजिक होने से रोका जाता। चार्वाक अपने सामाजिक नियमों को ही अपने जीवन का आदर्श मान मानते। [illegible] जगत की सामाजिक व्यवस्था को सुचारुता से चलाने का श्रेय थोड़ा बहुत चार्वाक को दिया जाता। अतः चार्वाक के कुछ एक मतानुयायियों ने धर्म के विरुद्ध काले झण्डे प्रदर्शित किये।

उद्घाटन समारोह के पश्चात् लौटते समय मार्ग में चार्वाक और शाक्त दोनों मतों के अनुयायियों का मिलन हो गया। शाक्त धर्म के पोषक आचार्य कपिल मिश्र तथा महीधर मिश्र और चार्वाक मत के प्रमुख विद्वान आचार्य मधुकर भट्ट तथा चक्रधर शूल्यपाणि थे।

मधुकर भट्ट : आपने धर्म को देखा है?

कपिल मिश्र : धर्म कहीं देखने की चीज है। यह प्रत्यक्ष धारण करने की बात है।

चक्रधर मूर्ति पूजन. और यज्ञानुष्ठान किस आधार पर किये जाते है ? ब्रह्मा, विष्णु, महेश, दुर्गा और न जाने कितने देवी देवताओ को धर्म का परिधान धारण कराकर उन्हे साकार रूप मे पूजा जाता । इसे हम क्या कहे ?

महीधर ' देवी देवता आदि सब अपने २ सद् कृत्यो से पूजे जाते है। धर्म का सीधा अर्थ एक सुन्दर समाज है। मूर्तिपूजन एवं यज्ञादि कर्म मानव की अपनी स्वाभाविक प्रक्रियायें है जो इस धर्म रूपी समाज के साथ साथ बंधी चली आ रही हैं। जैसे आपका भी अपना एक समाज है। उसके अपने नियम है जिनके साथ आप बधे हैं। इसी प्रकार हर समाज का अपना नियम है। आप परलोक की सत्ता को नही मानते परन्तु इस भूलोक की सत्ता पर आप अपने ढग से प्रत्यक्ष को प्रमाण देकर चलते ही है।

मधुकर भट्ट . प्रत्यक्ष प्रमाण और कर्म को हम केवल मानते है।

कपिल मिश्र . जल, वायु, अग्नि और पृथ्वी इन चार तत्वो को आप मानते ही हैं।

चक्रधर . इसके अतिरिक्त देह द्वारा उत्तमोत्तम पदार्थों का सेवन, भक्षाभक्ष का बिना कोई विचार किये स्पर्श, रस, और गन्ध द्वारा हम लोग करते हैं।

महीधर मिश्र अर्थ और काम मे तो हम दोनो की साम्यता है। शाक्त मत भी भक्षाभक्ष पदार्थों का सेवन इसी प्रकार करता है। हिन्दू धर्म मे शैव एवं शाक्त मत जीव बल देकर उसका रसास्वादन करते है। माँस, मदिरा, भोग विलास का पूर्ण सुख शाक्त लेते है। हिन्दू धर्म मे वामपन्थी हलाहल विषपान करता है। जीवित प्राणी को कच्चा खाता है। यहाँ तक कि काल रूपी सर्प को निगलकर पचा लेता है और न जाने कितने जीव जन्तुओ का भक्षण करता है। अत. हिन्दू धर्म की व्यापकता संसार मे अपार और सागर के समान गम्भीर है।

मधुकर भट्ट जी विस्मित होकर बोले जीव का भक्षण क्या धर्म माना जाता है ? ऐसा धर्म की दुहाई देने वाला हिन्दू समाज जो मानव की भी बलि दे सकता है कब तक जीवित रहेगा। ऐसे धर्म को शीघ्र ही गर्त मे चले जाना होगा।

कपिल मिश्र ' चार्वाक से कई गुनी शक्ति शाक्त धर्म मे है जो अपने आध्यात्मिक बल से वास्तविक दिशा की ओर लेजाकर ऐहिक सुखो का भी पूर्ण उपभोग कराती है।

चक्रधर : ऐसे शाक्त धर्म को हम धर्म के नाम से नही पुकार सकते हैं। यह समाज के लिये अभिशाप है। आप लोग धर्म को धोखा देकर स्वार्थ सिद्धि

करते और धर्म को कलंकित कर उसी मर्यादा के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं। [illegible] जैसे लोगों के कारण ही धर्म का इतना [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] से विमुख होकर उसे अपने [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] हैं।

मधुकर भट्ट : मेरी समझ में यदि आप हमारे [illegible] [illegible] को [illegible] दें तो अधिक उत्तम होगा।

चक्रधर : ऐसे लोग हमारे समाज में विकार पैदा कर देंगे, मधुकर जी। इनका जीवन दानव से भी बढ़कर है। हमारे यहाँ [illegible] [illegible] [illegible] है और परिश्रम कर अपना पेट भरते हैं।

कपिल मिश्र : हम लोग धर्म [illegible] के रक्षक [illegible] हैं। जब कभी धर्म पर प्रहार हुये धर्म के रक्षक बनकर उनका सामना करने [illegible] [illegible] हैं। उस एक महाप्रभु को हर एक भक्तियों की आवश्यकता पड़ती है।

मधुकर भट्ट : जिस धर्म में [illegible] और [illegible] का [illegible] [illegible] नहीं उससे पार पाना कठिन है।

महीधर मिश्र : दुनिया में लाखों आये, गये और आते रहेंगे। [illegible] [illegible] [illegible] भी प्रहार होते रहेंगे परन्तु काल की गति की [illegible] [illegible] धर्म [illegible] [illegible] रहेगा। जो धर्म से गया वह संसार से गया।

इसके पश्चात सब एक दूसरे को [illegible] पूर्वक अभिवादन कर अपने [illegible] आवास गये।

चतुर्थ पराग

वसन्त का यौवन ढल चुका था और ग्रीष्म अपनी उष्णता का धीरे धीरे प्रसार कर रही थी। सूर्य की रश्मिया धरातल को तप्त करने लगी थी और प्रकृति को दग्ध करने का विचार कर रही थी। प्रभात मे गुलाब की कलिया छिटकने लगी थी और चमेली का श्वेत पुष्प विकसित होकर सौरभ के साथ प्रभात की वायु मे मादकता उत्पन्न कर रहा था। इसी ऋतु मे प्रदीप को किसी कार्यवश हैदराबाद जाना था। उषा ने उनसे अनुरोध किया कि यदि वह उन्हे भी साथ ले ले तो वह भी हैदराबाद का भ्रमण करेगी ही साथ ही अजन्ता के गुफाओ मे बौद्ध और गुप्त कालीन बने हुये चित्रो को भीं देख लेगी जिनकी कला पर आज विश्व मुग्ध है।

प्रदीप ने यह कहते हुये कि मेरा यह सौभाग्य होगा कि तुम मेरे साथ होगी दोनो एक दिन डेकेन क्वीन के एक वातानुकूलित डिब्बे मे यात्रा करने बैठ गये। डिब्बे के द्वार चारो ओर से वन्द थे और खिडकियो मे चारो ओर पर्दे पड़े थे इसलिये तिल मिलाने वाली धूप का उन्हे कुछ आभास भी न हुआ। इन दोनो की आकृति देखकर आस पास के कुछ भद्र नर नारी आकर्षित हो निकट आकर बैठ गये। एक गौर वर्ण युवक ने बड़े ही सम्मान और शिष्टाचार के साथ प्रदीप को अभिवादन करते हुये कहा। क्या मैं आपका परिचय जान सकता हूँ? आपका व्यक्तित्व आकर्षक है। मुझे ठीक स्मरण नही पडता परन्तु मैंने कई बार समाचार पत्रों मे आपका तथा आपके साथ बहिन जी का ऐसा चित्र देखा है।

प्रदीप ने मुस्कराते हुये उषा की ओर कुछ संकेत किया और उषा ने अपने स्वर्ण कला मण्डित मखमली पर्स से दो परिचय पत्र निकाल कर उस तरुण के सामने रख दिये।

एक में लिखा था "प्रदीप, उद्योग पति तथा विश्व अध्यात्म संघ का एक सेवक"।

दूसरे मे कुमारी उषा एम० ए०, पी० एच० डी०, विश्व अध्यात्म संघ की एक सेविका।

युवक ने दोनों परिचय पत्रों को पढ़ने के बाद [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की ओर कहा। इस खादिम को [illegible] कहते हैं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दोनों महिलाओं की ओर संकेत करते हुये कहा कि यह दोनों [illegible] [illegible] हबीबा बानू और मुमताज बेगम हैं।

सामने की कोच पर बैठे हुये पाश्चात्य वेष भूषा में [illegible] [illegible] एक अर्ध वयस्क व्यक्ति ने भी उन परिचय पत्रों को पढ़ कर [illegible] अभिवादन किया और कहा कि मैं डा० वी० एन० वाशिंग्टन हूँ। अपने साथ [illegible] महिला की ओर संकेत करते हुये कहा कि यह युवक और युवती [illegible] [illegible] [illegible] हैं जिनके [illegible] के भाषण हम लोगों ने अत्यन्त चाव से पढ़ा था। अतीव खुशी [illegible] [illegible] [illegible] श्री मान्। यह श्री मती एच० वी० [illegible] जी हैं और अमेरिका [illegible] [illegible] [illegible] जाति की एक सुप्रसिद्ध समाज सेविका हैं।

उषा और प्रदीप ने बड़ी विनम्र भाव से सभी का परिचय [illegible] [illegible] अभिवादन किया और इस शुभ वेला की सराहना की जिसमें यह सब मिलन हुआ।

कनाडियन एन्जिन बड़ी द्रुतगति से [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आ रहा था और कुछ जलपान के पश्चात सब लोग [illegible] [illegible] [illegible] हो गये।

हबीबा बानू ने उषा से कहा. आपका नाम अखबार में [illegible] [illegible] [illegible] थे पर आज आप से नियाज़ हासिल कर बहुत खुशी हुई।

उषा : आप तो साक्षात देवी मालूम पड़ती हैं खुशी होना आपका स्वाभाविक गुण ही है।

यह आपकी इनायत जो आपने मुझे इतना बड़ा दर्जा [illegible] [illegible] दे दिया। मैं एक नाचीज़ किस काबिल हूँ।

योग्यता तो मानव की आकृति से झलकती है।

मुमताज बेगम ने प्रदीप की ओर संबोधित करते हुये उषा से पूछा। आपकी तारीफ।

इनसे हमारा आत्मीय संबन्ध है। मानव-सेवा-पथ के हम दोनों पथिक हैं।

मैं इस गूढ रहस्य को कुछ समझ न सकी। भारतीय दर्शन ने सभी की आत्मा को एक ही माना है।

उषा उस दृष्टि से सारा जगत एक ही [illegible] है।

मुमताज : भारतीय दर्शन एवं उपनिषदों में आत्मा का विवेचन अनुसन्धानात्मक ढंग से किया गया है। कठोपनिषद् में इसकी मीमांसा अत्यन्त सुन्दरता से की गई है। नचिकेता ने इसी समस्या को सुलझाने के लिये यमराज से प्रार्थना की थी जिसका विवेचन करते हुये यमराज ने कहा कि 'आत्मा' अजर, अमर तथा अभेद्य है।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा नभूयः ।
अजो नित्य शाश्वतो यं पुराणो न हन्यते हन्य माने शरीरे ॥

गीता मे इस सिद्धान्त को स्पष्ट कर दिखलाया है और एक मनोरम रूपक देकर इसे विस्तार से समझाया है कि यह शरीर रथ है, बुद्धि सारथी है मन प्रग्रह (लगाम) है इन्द्रियाँ इसके अश्व (घोडे) है जो विषय वासना-पथ पर सदा चला करते है। आत्मा को इन सबका रथ स्वामी बताया है। इस प्रकार यमदेव ने आत्मा को सर्वोत्कृष्ट पद देकर यह सिद्ध कर दिया कि रथ से सम्बन्धित बुद्धि, मन, लगाम, इन्द्रियां आदि का जब स्वामी ही आत्मा है तो उसके शुभाशुभ फलों का नेतृत्व आत्मा ही करता है।

उषा · भद्रे। आप तो मानो भारतीय दर्शन की साक्षात मुर्ति ही है।

मुमताज आरम्भ से ही मुझे दर्शन मे अनुराग रहा और मैने दर्शन शास्त्र मे ही एम० ए०, पी० एच० डी० अर्थात् डाक्ट्रेट किया। भारतीय दर्शन को जहा तक सम्भव हो सका अपने जीवन मे उतारने का प्रयत्न करती रही ऐसे गम्भीर एव मार्मिक तत्वो का ज्ञान दुनिया के किसी भी साहित्य अथवा धर्म मे आज तक मुझे न मिला। मैं इन्हे अपने प्राण से भी अधिक सजोकर रखती हूँ। आपसे एक प्रार्थना है यदि स्वीकार करे तो बड़ी कृपा हो।

आप की और प्रार्थना। आप मेरी और मैं आप की। इतना सुनते ही मुमताज ने उषा को हृदय लगाया। उषा ने उसे दोनो करो से थामा। इतने मे दोनो के अरुणाभ कपोलों पर अश्रु के बिन्दु ढुलक पड़े।

मुमताज भावना में समाई गद् गद् कण्ठ से बोली : बस मेरी यही प्रार्थना थी। अब मैं सदा आप के साथ रहूँगी।

हबीबा बानू ने कहा : मुझे भी दर्शन शास्त्र से बडी रुचि है। मैंने भी दर्शन शास्त्र मे ही एम. ए. किया था और प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण हुई थी। यदि आप आज्ञा दे तो मैं भी सेवा म कुछ पेश करूं।

आप दोनो एक ही वृक्ष के दो प्रसून हे या एक ही आम्र मंजरी पर बैठी दो कोकिलायें है अथवा स्वर्ण पटल पर झूलती हुई दो सारिकाये है।

इतने में अशरफ़ अली ने हँसते हुए कहा : इन मेरी [illegible] आप को बहस करने की नहीं पड़ती। मेरा मन हमेशा ही [illegible] रहा। पर चाहता मैं भी हूँ कि आप की खिदमत हमेशा करता रहूँ। यह हमारी धर्म पत्नी बैठी हैं। इन्हें छोड़कर मैं तनहाई में कहीं भटकता फिरता था। इन्होंने भी दर्शन शास्त्र में ही एम० ए० किया है। हालांकि अर्थशास्त्र में [illegible] कामयाब हुआ।

प्रदीप : आप हमारे सिर माथे हैं।

डाक्टर बी० एन० वाडिया ने पूछा : आप और प्रदीप शर्मा हिन्दू अपने धर्म कर्म के मानने वाले और हुजूर, मुमताज, अशरफ़ अली मुसलमान अपने इस्लाम धर्म के पक्के। धार्मिक दृष्टि दोनों की अलग अलग और आहार भी भिन्न भिन्न। खाना पीना तो एक साथ सम्भव हो न सकेगा।

प्रदीप : हमारे जीवन में भक्ष्याभक्ष्य का कोई विचार नहीं रहता। आपके पूछने का तात्पर्य तो यही होगा।

मुमताज बेगम, डाक्टर वाडिया की ओर संकेत कर बोली : मुसलमानों में भी आध्यात्मिक विचार के लोग हैं जो राजसी और तामसी पदार्थों से दूर हैं। खान-पान की बात तो किसी धर्म या जाति से कोई विशेष सम्बन्धित नहीं होती।

अशरफ अली ने कहा : खान-पान का ताल्लुक भौगोलिक असर से भी है। ठंडे मुल्क के रहने वाले जहां हमेशा बर्फ पड़ती है और कोई साग सब्जी अनाज वगैरह नहीं मिल पाता वहां लोग जानवरों को कच्चा पक्का जैसा भी मिले खाना खा जाते हैं।

प्रदीप : हिन्दू धर्म में नाग, बिच्छू, छिपकली आदि अनेक पशु पक्षी तथा कीट पतंगों की पूजा की जाती है परन्तु उसी हिन्दू धर्म का कट्टर अनुयायी एक वर्ग जिसे हम शाक्त तथा वाम मार्गी कहते हैं इन्हीं पशु पक्षियों को बलि देकर भक्षण करता है। ब्रह्म को जानने वाला ब्राह्मण जो हिन्दू समाज में उच्च कोटि की पवित्र जाति मानी जाती है आज प्रचुर मात्रा में मांसाहारी है। इसलिये हिन्दू मुसलमान के खान-पान का भेद भाव तथा उसे धार्मिक बन्धनों में जकड़ कर निरंकुश करना मानव और धर्म दोनों के लिये अभिशाप है। जात पात के बैर में डालकर स्वार्थसाधियों ने जिस प्रकार धर्म के रूप को विकृत कर दिया उसे ही हमें समझना है। गीता में गुण स्वभाव के भेद से चार वर्णों का उल्लेख जिस आधार पर किया है उससे यह सिद्ध नहीं होता कि जातियों को उनके गुण कर्मानुसार बटवारा कर उनका अलग पृथक समाज बनाकर उनका वर्गीकरण कर दिया जाय। माण्डूक्य उपनिषद में जिस

प्रकार शुद्ध आत्मा की चार अवस्थाये बताई गई है उसी प्रकार एक शुद्ध आत्म स्वरूप परब्रह्म की चार वर्णरूपी अवस्थाये हैं अर्थात एक समाज के चार विभाग किये गये हैं।

मुमताज। आप ने कैसा सुन्दर आत्म स्वरूप का विवेचन किया।

अशरफ अली . हालाकि मैं इतना ज्ञानी नहीं। फिर भी आत्मा का मार्मिक विषय मेरे मन मे घर कर गया।

मुमताज ' प्रदीप जा मानवता की ज्योति जगा कर विश्वबंधुत्व की स्थापना करेंगे !

प्रदीप ने मन्द मुस्कान से कहा। आप तो ज्योत्सना है।

हबीबा : आप के अन्तर मानस को मैं समझ गई, प्रदीप।

इतना कहते हुये हबीबा के आम की फाँक के सदृश नयनो मे अश्रु की बूंदे उमड़ कर कोरों पर आकर रुक गई जिन्हे हबीबा अपने नीले अंचल से पोछते हुये बोली। मेरे मन की ज्योति।

प्रदीप ने हबीबा को सावधान किया और उषा ने सस्नेह उसे गले लगाया। तत्क्षण हबीबा की चेतना जागी और वह विस्मित हो बोली। मैं कहां चली गई थी।

मुमताज बेगम, हबीबा बानू और अशरफ अली सैयद वंश मे सर्वोत्कृष्ट कुलीन परिवार के थे। उनकी आत्मा पुनीत थी।

प्रदीप ने हबीबा को सान्त्वना देते हुये कहा : मैं आपको आत्मा की चारो अवस्थायें बताता हूँ।

शुद्ध आत्मा को 'तुरीय' शब्द के नाम से पुकारा जाता है। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति यह तीन अवस्थायें आत्मा की मानी गई हैं। जाग्रत अवस्था में प्राणी को बाह्य जगत का बोध होता है। स्वप्नावस्था में आन्तरिक जगत का विलोम प्रतिलोम होता है और सुषुप्ति में गम्भीर मुद्रावस्था का निरन्तर आनन्द प्राप्त होता रहता है। यह तीनों अवस्थायें पराअपरा के भेद से अपरा अवस्था का परिचायक है। इनमें आत्मा को विश्व, तेजस और प्राज्ञ के नाम से पुकारते हैं। इन अवस्थाओ मे केवल एक आत्मा की ही सत्ता का भान होता है। आत्मा की चौथी अवस्था जिसे कूटस्थ कहते है उसका सम्बन्ध सीधा निर्गुण ब्रह्म से है। इसे ओंकार के नाम से भी पुकारते है। आत्मा की कूटस्थ स्थिति सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है।

प्रदीप जिस समय भावाभिव्यञ्जन कर रहे थे कुमारी उषा और मुमताज अपने नेत्रों को बन्द किये तल्लीन हो सुनती रहीं। किन्तु [illegible] हुये गम्भीर विचारक की तरह उठकर मुस्कराते [illegible] बोले : [illegible] को शान्ति और पनाह देने वाला कैसा सुन्दर विषय है !

भारतीय दर्शन की प्रकाण्ड विदुषी कुमारी मुमताज ने कहा : मैंने जैन आगम तन्त्र का साहित्य और उसका इतिहास [illegible] इसलिये प्रतिपादित विषय मुझे अति प्रिय लगा। इतने समय में [illegible] स्टेशन पर रुकी। यात्रियों और कुलियों के सतत कोलाहल [illegible] थी। अशरफ अली ने ट्रेन से उतर कर [illegible] किये। उधर डाक्टर वाडिया ने बैरा को बुलाकर आदेश दिया कि कुछ [illegible] और काफी की प्यालियाँ ले आना। जलपान समाप्त हुआ और गाड़ी चलने का समय निकट ही था कि इतने में भारत प्रसिद्ध जैन धर्म के उद्भट विद्वान आचार्य श्री अनन्त पाद चक्रपाणि जी [illegible] के साथ आते हुए दिखाई पड़े। जिनके पीछे सहस्रों नर नारी जय-जय के नारे लगाते हुए चले आ रहे थे।

श्री चक्रपाणि जी, तेजोमय स्वरूप, [illegible], सुन्दर [illegible], सिर पर स्निग्ध केश राशि सुडौल एवं [illegible] बढ़ाते हुये उसी वातानुकूलित डिब्बे में जैसे प्रवेश [illegible] स्वागत किया। कुछ ही क्षणों में लोहे के पहिये गतिशील हुये, स्टेशन और उसका कोलाहल पीछे छूटा किनारे के वृक्ष पीछे की ओर भागते हुये प्रतीत हुये और [illegible] अपनी पूर्णगति पर पहुँच गई। तदनन्तर सब अपनी उत्कण्ठाओं को लिये श्री चक्रपाणि जी के निकट जा बैठे।

उषा : हमारे अहोभाग्य। जो आप के दर्शन अनायास हो गये।

चक्रपाणि जी ने कहा : आप सबका शुभ परिचय जान सकता हूँ ?

प्रदीप : हमारे ऐसे तुच्छ लोगों का परिचय ही क्या ?

मुमताज ने विनम्र भाव से कहा : उषा और प्रदीप का नाम समाचार पत्रों में आपने पढ़ा ही होगा।

चक्रपाणि जी पुलकित हो बोले। इन नामों की चर्चा तो देश विदेश के सभी स्थलों में सुनी है। आप सबसे मिलकर और भी प्रसन्नता हुई।

उषा ने कहा। देव ! कुछ निवेदन करना चाहती हूँ।

चक्रपाणि जी बोले । वत्से, कहो !

सुना है आप को तन्त्र पर अधिकार है ? यदि हमे कुछ बोध करा सके तो बडी कृपा हो ।

मुमताज : मुझे भी भारतीय तन्त्र विज्ञान से बड़ा अनुराग है ।

प्रदीप ने कर बद्ध निवेदन कर कहा । दयालु ! तन्त्र शास्त्र की गम्भीरता एवं उनके भाव मूलक तथ्यो पर जिस सुचारुता से आप प्रकाश डाल सकेंगे उतना हर तान्त्रिक के ज्ञान से परे है ।

विद्वान आचार्य श्री अनन्तपाद चक्रपाणि जी ने उन लोगों के आग्रह पर तन्त्र के सम्बन्ध मे प्रकाश डालते हुये कहा ।

तन्त्र की व्युत्पत्ति व्याकरण के नियम से 'तन्, धातु और औणादिक ष्टन् के योग से बताई जाती है । जिसका अर्थ (तन्यते विस्तार्यते ज्ञान मनेन इति तत्रम्) है । अर्थात जिसके द्वारा ज्ञान का विस्तार किया जाय उसे तन्त्र कहते है । तन्त्र साधको का रक्षक है । तन्त्र शास्त्र का दूसरा नाम "आगम" भी कहा गया है भोग और मोक्ष दोनों की उपलब्धि कराने वाले को "आगम" कहते है । वेद मे आगम और निगम दोनो प्रतिपाद्य विषयो का सविस्तृत उल्लेख है । कलियुग मे आगम पर अधिक महत्व दिया गया है । सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलयुग इन चारों युगों के अनुसार चार प्रकार का पूजन शास्त्रो मे उल्लिखत है । सतयुग मे वैदिक, त्रेता मे स्मार्त, द्वापर मे पुराण सम्मत पद्धति और कलयुग मे तन्त्र अर्थात तान्त्रिक पूजा उपासना का शास्त्रों मे विशेष महत्व है । समस्त विश्व के कल्याणार्थ श्री शंकर भगवान ने पार्वती जी को स्वयं तन्त्रो का ही उपदेश दिया है । कलियुग मे इन्ही के आधार पर पूजा विधान द्वारा प्राणियों को सिद्धियाँ मिलती है । तन्त्रो का स्वरूप परखने के लिए देवता के रूप, गुण, कर्म आदि का चिन्तन, और मनन तत्सत् विषयो के मन्त्रों का उद्धार, मन्त्रो को यन्त्रों में संयोज्य कर उस देवता का ध्यान तथा उपासना के पाचों अंग पटल, पद्धति, कवच, नाम सहस्त्र और स्तोत्र यह सुव्यवस्थित रूप से पाये जाते हैं । इन विषयों से आधारित ग्रन्थो को तन्त्र के नाम से पुकारा जाता है । वाराही तन्त्र में सृष्टि, प्रलय, देवतार्चन, सर्व साधन, पुरश्चरण षट्कर्म (वशीकरण, मारण, मोहन, उच्चाटन, स्तम्भन शान्ति, साधन) तथा ध्यान इन सात लक्षणों से संयुक्त ग्रन्थो को आगम के नाम से पुकारते है। शाक्तमत के अनुसार तीन भाव से पूजा अर्चना की जाती हैं । इस मत मे सात आचार माने गये है और तीन प्रकार की भावनाओ का उद्‌बोधन करते हुये साधना की जाती है । प्रथम

पशुभाव दूसरा वीर भाव और तीसरा दिव्य भाव। इन भावों में क्रमशः वेदाचार वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार और कौलाचार यह सात आचार है। मानसिक अवस्था का पूर्ण मर्यादा भाव और, उद्दंड अवस्था का व्यविधान आचार कहा गया है भगवान शिव की महिमा को सुनकर आशा है आप लोग प्रसन्न हुये होंगे।

उषा ने निवेदन पूर्वक कहा। आचार्य श्रेष्ठ! मुझे कुछ तत्व के साथ बीज मन्त्रों की जिज्ञासा है।

श्री चक्रपाणि जी बोले। कुमारिके! आपकी इच्छानुसार तन्त्र में वर्णित उसके कुछ तत्व बीज के विषय में बतलाता हूं। 'हं' को तन्त्र के मतानुसार आकाश बीज, 'यं' को वायुबीज, 'रं' को अग्नि बीज, 'वं' को वरुण बीज, 'लं' को भू बीज 'मं' को मनोबीज, 'क्षं' को बुद्धि बीज, 'ओं' को आत्म बीज, और 'हं' को जीव बीजादि माना है। पृथ्वी से मन पर्यन्त २१ तत्व माने गये हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, गन्ध, रस, रूप, स्पर्श शब्द, नासिका, जिह्वा, चक्षु, त्वक्, श्रोत्र, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ और मन। मन से पर १३ तत्व माने गये हैं। बुद्धि अहंकार प्रकृति, पुरुष, काल कला, अविद्या, विद्या, राग, नियति, माया, शिव और शक्ति। तन्त्र शास्त्र ने प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान यह पञ्च प्राण माने है। पंच प्राणों का शरीर में कहां २ स्थान है, इसके सम्बन्ध में शास्त्र का वचन है कि—

हृदिः प्राणो गुदे अपानः समाना नाभि संस्थितः
उदानामूर्धदेशेषु व्यान सर्व शरीरगः ॥

अर्थात्–प्राणवायु हृदय में, अपान वायु गुदा में, समान नाभि में, उदान ऊर्ध्व भाग में और व्यान समस्त शरीर में व्याप्त है।

शरीर में स्थित सप्त धातु हैं–त्वक्, असृज, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और सातवाँ शुक्र।

पंचतत्वात्मक केन्द्र बिन्दु ३६० कला का कहा गया है। जिनमें ५६ पृथ्वी की भ्वात्मक मयूखायें, ५२ जलात्मक उदधि की, ६२ अग्न्यात्मक वह्नि की, ५४ अनिलात्मक वायु की, ७२ आकाशात्मक व्योम की और ६४ मयूखायें मन की शास्त्र में वर्णित की गई हैं। पंच तत्वों से बने इस शरीर की २९६ कलायें है और ६४ कलायें मन की है। इन दोनो के योग से कुल ३६० कलायें (जिन्हें हम मयूखायें कहते है) होतीं हैं।

उत्पत्ति, स्थिति और लय यह तीन त्रिक्रियायें सृष्टि क्रम कही जाती है। इनके तीन गुण रज, तम और सत है और तीन देवता ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र माने जाते हैं।

भ्वात्मक कला ५६, जलात्मक कला ५२, अग्न्यात्मक कला ६२, अनिलात्मक कला ५४, व्योमात्मक कला ७२ और कलात्मक मन ६४ बताये गये हैं।

उषा ने पूंछा तन्त्र शास्त्र मे भक्ति की कितनी अवस्थायें कही गई है। आचार्य शिरोमणि। अष्ट सिद्धिया, दश मुद्रायें और तन्त्र के कितने रूप हैं आदि के विषय में कुछ बतलाने की कृपा करे।

श्री चक्रपाणि जी ने कहा। वत्से ! मुक्त भक्ति की शास्त्र ने चार अवस्थायें बताई है। प्रथम सालोक्य दूसरी सामीप्य तीसरी सारूप्य और चौथी सायुज्य।

अणिमा, महिमा, लघिमा गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व यह आठ सिद्धियां बताई गई हैं।

सर्वक्षोभिणी, सर्वद्राविणी, सर्वाकर्षिणी, सर्ववशंकरी, सर्वोन्मादिनी, सर्वमहाकुशा, सर्वखेचरी, सर्वबीजा, सर्वयोनि और सर्वत्रिखन्डा यह दश मुद्रायें शास्त्र मे वर्णित है।

उषा ने कहा। मुद्रा का अर्थ उसका स्वरूप तथा कुछ विशिष्ट देवी देवताओ के मुद्राओं का वर्णन करने की कृपा करें। योगेश्वर !

श्री चक्रपाणि जी बोले। चिरञ्जीविनी ! "विश्वस्य मोदनात् द्रावणात् च मुद्रा" अर्थात विश्व के मोदन और द्रावण करने को मुद्रा कहते है। इसकी व्याख्या योगिनी तन्त्र में इस प्रकार की गई है कि चैतन्य आत्म तत्व की आधार भित्ति पर जब विश्व के प्रकाश की परामर्श चेष्ठापूर्ण चिकीर्षा से युक्त होकर जिस क्रिया शक्ति द्वारा की जाये उसे 'मुद्रा' कहते हैं। मोदन का अर्थ कर्ता की या उसके इष्ट देव की प्रसन्नता और द्रावण का अर्थ एकत्री-भूत तत्वों का प्रथक रूप से प्रचार और प्रसार। 'मुदं आनन्दं राति ददाति' इति मुद्रा अर्थात जो आनन्द प्रदान करने वाली हो उसका नाम "मुद्रा" है।

मानव की पांचों अंगुलिया ही पंच महाभूतों का उपलक्षण हैं। इन्ही के सयोग से समस्त मुद्रायें बनती हैं जिनका विधिवत प्रयोग पूजन, जप, ध्यान तथा समस्त सकाम कर्मो के लिये शास्त्र में उल्लिखित है।

उषा ने विनय पूर्वक पूछा । [illegible] है।
इनका कुछ क्रम बद्ध वर्णन करने की कृपा [illegible]।

श्री वज्रमणि जी ने कहा । सुनिये [illegible]

कनिष्ठिका को पृथ्वी, अनामिका को जल, मध्यमा को तेज, तर्जनी को वायु और अंगुष्ठ को आकाश कहा गया है ।

प्रदीप ने भाव गाम्भीर्य शब्दों में कहा । [illegible] अंगुलियों का उपलक्षण पञ्च तत्त्वों की भित्ति पर आधारित कर [illegible] जीवन में [illegible] चेतना जाग्रत कर दी । दैहिक [illegible] मुद्राओं द्वारा हो सकता है ।

उषा ने पुन. प्रार्थना की कि प्रत्येक देवी-देवताओं को गन्ध, पुष्पादि अर्पित करने के लिये उनके उद्धार स्वरूप विभिन्न मुद्राओं का प्रदर्शन बताने की कृपा कीजिये । स्वामिन् !

श्री वज्रमणि जी बोले । जिज्ञासुओ !

कनिष्ठा और अंगुष्ठ के योग से गन्ध मुद्रा, अधोमुख तर्जनी और अंगुष्ठ के योग से पुष्प मुद्रा तर्जनी और अंगुष्ठ के योग से धूप-मुद्रा तथा मध्यमा और अंगुष्ठ के योग से दीप मुद्रा होती है ।

इसके अतिरिक्त गन्ध मुद्रा के उद्धार में निम्नलिखित मुद्राओं को दिखाना चाहिये । जैसे—

मध्यमा, अनामिका और अंगुष्ठ के अग्रभाग से गन्ध देना ।

तर्जनी और अंगुष्ठ के योग से पुष्प चढ़ाना ।

मध्यमा और अनामिका के मध्य पर्व और अंगुष्ठ के अग्र भाग से धूप को पात्र में रखकर दिखाना ।

तीन बार जल उछाल कर अंगुष्ठ और अनामिका से नैवेद्य-भोग लगाना है ।

इसी प्रकार प्राणायाम का साधन करने के लिये विभिन्न मुद्राओं का उपयोग होता है ।जैसे—

कनिष्ठा, अनामिका और अंगुष्ठ के योग से "प्राण मुद्रा"

अनामिका, अंगुष्ठ और मध्यमा के योग से "अपान मुद्रा"

मध्यमा, तर्जनी और अंगुष्ठ के योग से "व्यान मुद्रा"

तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और अंगुष्ठ के योग से "उदान मुद्रा"

तर्जन्यादि चारों अंगुलियों और अगुष्ठ के योग से "समान मुद्रा" होती है।

उषा ने कहा। प्रभु ! आपने देव लोक की साधना हेतु धर्म जगत मे मानव को उतार कर मुद्राओं का वर्णन जिस प्रकार से किया वह सराहनीय है। साधकों की साधनाओं मे यह मुद्रायें अपना विमल योग देंगी।

श्री चक्रमणि जी ने अनेक मुद्राओं का वर्णन करते हुये कहा कि—

लक्ष्मी मुद्रा, मत्स मुद्रा, कुम्भ मुद्रा, पद्म मुद्रा, धनुर्वाण मुद्रा, शक्ति प्रिया मुद्रा, गणेश्वरी मुद्रा, अविघ्न मुद्रा, मध्यमा विघ्न मुद्रा, विघ्न मुद्रा, दन्त मुद्रा, सनिधापिनी मुद्रा, सनिरोधन रूपिणी मुद्रा, सम्मुखी करण मुद्रा, अवगुण्ठली मुद्रा, सरोधिनी मुद्रा, धेनु मुद्रा, ज्ञान मुद्रा ग्रास मुद्रा, कमल मुद्रा, हय ग्रीव मुद्रा, नारसिंही मुद्रा, आन्त्र मुद्रा, आग्य मुद्रा, वक्त्र मुद्रा, दंष्ट्र मुद्रा, दारण मुद्रा, वाराह मुद्रा, श्री वत्स मुद्रा, कौस्तुभ मुद्रा, वन माला मुद्रा, वेणु मुद्रा, गरुड मुद्रा, वैष्णवी मुद्रा, श्री शैव मुद्रा, बिल्व मुद्रा, कपाल मुद्रा, खट्वाङ्ग मुद्रा, डमरू मुद्रा, मृग मुद्रा, चर्म मुद्रा, परशु मुद्रा, खड्ग मुद्रा, त्रिशूल मुद्रा, लिङ्ग मुद्रा, सरस्वती मुद्रा, अक्षय माला मुद्रा, पुस्तक मुद्रा, वीणा मुद्रा, व्याख्यान मुद्रा, दुर्गा मुद्रा, गदा मुद्रा, वज्र मुद्रा तर्जनी मुद्रा, मुसल मुद्रा, अंकुश मुद्रा, त्रैलोक्य मुद्रा, सर्व महाकुशा मुद्रा, नाराच मुद्रा, पाश मुद्रा, चक्र मुद्रा, चाप मुद्रा, धनुर मुद्रा, बाण मुद्रा, नेत्रास्त्र मुद्रा, शिखा मुद्रा, योनि मुद्रा, महायोनि मुद्रा, त्रैलोक्य क्षोभिणी मुद्रा, त्रैलोक्य द्राविणी मुद्रा, त्रैलोक्याकर्षिणी मुद्रा, त्रैलोक्य वशंकरी मुद्रा, त्रैलोक्योन्मादि करणी मुद्रा, व्यापक मुद्रा, अवगुण्ठिनी मुद्रा, संनिधापन रूपिणी मुद्रा, सनिरोधन रूपिणी मुद्रा, भव गुण्ठिनी मुद्रा, सर्व संक्षोभणी मुद्रा आदि अनन्य मुद्रायें अपने २ देवताओं एवं विविध कार्यो के अनुसार साधना निमित्त शास्त्र मे उल्लिखित हैं।

श्री शङ्कर भगवान पर श्रावण मास में विल्व पत्र अर्पित करने के लिये निम्नाङ्कित दो मन्त्रों का उद्धरण किया—

१. ॐ नामो विल्मिने च नमो वर्मिणे च वरुथिने च नमः।
श्रुताय च श्रुत सेनाय च नमो दुन्दुभाय च हन याय च नमः॥

२. त्रिदलं त्रिगुणाकरं त्रिनेत्रं त्रिकिया युधम।
त्रिजन्म पाप संहारं बिल्व पत्रं शिवार्पणाम्॥

तन्त्र के रूप [illegible] विद्या के अन्तर्गत [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] ज्योतिष्मती, कलानिधि, कुलार्णव, कुलेश्वरी, [illegible] [illegible] और [illegible] दुर्वासमत ।

इन तन्त्रों में [illegible] लिये हुए [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] का वर्णन अधिक मिलता है । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] 'कुलागम पंचक' और [illegible] [illegible] के नाम से भी [illegible] है । [illegible], [illegible], [illegible], सनातन और सनत्कुमार [illegible] पांच [illegible] इन [illegible] के [illegible] है ।

वामकेश्वर तन्त्र में ६४ तन्त्रों के नाम [illegible] है ।

१ महा माया शम्बर जो दूसरे की बुद्धि को [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] शम्बर जो [illegible] [illegible] [illegible] सिद्धि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और चार से ग्यारह तक सिद्ध भैरव [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भैरव योगिनी भैरव महा भैरव और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] खोज निकालता है । बारह से उन्नीस तक ब्राह्मी तन्त्र [illegible] [illegible] [illegible] तन्त्र शिव दूती तन्त्र, माहेश्वरी तन्त्र कौमारी तन्त्र [illegible] तन्त्र [illegible] तन्त्र । बीस से सत्ताइस तक ब्रह्म यामल तन्त्र विष्णुयामल तन्त्र, [illegible] [illegible], [illegible] यामल तन्त्र उमयामल, स्कन्द यामल, [illegible] यामल और [illegible] [illegible] यामल तन्त्र, जिसमें कामना सिद्धि के भेद [illegible] है । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] मालिनी विद्या तन्त्र ३० महा [illegible] तन्त्र ३१ [illegible] [illegible] [illegible] (जिसमें कपालिक क्रियायें होती है), ३२ महादेव तन्त्र (जिसमें [illegible] [illegible] होती है) ३३ वातुल तन्त्र, ३४ वातुलोत्तर तन्त्र ३५ कामिका तन्त्र, ३६ [illegible] तन्त्र, ३७ तन्त्र भेद (जिसे पर विद्या हरण भी कहते है), ३८ [illegible] तन्त्र (जो दूसरे का [illegible] हरता है) ३९ कलावाद तन्त्र, ४० कलासार तन्त्र (जिसे [illegible] [illegible] [illegible] कहते) है। यह प्रक्रिया वामाचार में प्रचलित है । ४१ [illegible] [illegible] तन्त्र, इसमें औषधिया और जड़ी बूटी आदि का [illegible] [illegible] करना, ४२ [illegible] तन्त्र जिसमे पारदादि का शोधन करना) ४३ [illegible] तन्त्र, ४४ [illegible] [illegible] वोटलोत्तर तन्त्र जिस तन्त्र में यक्षिणी के १४०० [illegible] [illegible] दर्शनों का उल्लेख है, ४६, पंचामृत तन्त्र, ४७ [illegible] भेद तन्त्र, ४८, [illegible] तन्त्र, ४९, कुलसार तन्त्र, ५०, कुलोड्डीस तन्त्र, ५१, कुल चूड़ामणि तन्त्र, ५२, सर्व ज्ञानोत्तर तन्त्र, ५३, महाकाली तन्त्र, ५४, [illegible] तन्त्र, ५५ [illegible] तन्त्र ५६ [illegible] तन्त्र ५७ पूर्वाम्नाय तन्त्र ५८, पश्चिमाम्नाय तन्त्र, ५९, दक्षिणाम्नाय तन्त्र, ६०,

उत्तराम्नाय तन्त्र ६१ निरुत्तराम्नाय तन्त्र ६२ विमल तन्त्र ६३ विमलोत्तरतन्त्र ६४ वां देवीमत तन्त्र।

उषा ने पूछा . मानस मयूखायें कितनी होती हैं, आचार्य श्रेष्ठ!

श्री चक्रपाणि जी ने कहा दुहिते! तन्त्र की विविध साधना एवं पद्धति के अनुसार मयूखायें होती हैं।

परन्तु महम्माया देवी की उपासना एव आराधना मे ६४ मानस मयूखाओं का वर्णन तन्त्र के ग्रन्थो मे उल्लिखित है।

१ पर २ परा ३ भर ४ भरा ५ चित् ६ चित्परा ७ महामाया ८ महामायापरा ९ सृष्टि १० सृष्टि परा ११ इच्छा १२ इच्छा परा १३ स्थिति १४ स्थिति परा १५ निरोध १६ निरोधपरा १७ मुक्ति १८ मुक्ति परा १९ ज्ञान २० ज्ञान परा २१ सत् २२ सत्परा २३ असत २४ असत्परा २५ सदसत २६ सदसत्परा २७ क्रिया २८ क्रिया परा २९ आत्मा ३० आत्मा परा ३१ इन्द्रियाश्रय ३२ इन्द्रियाश्रय परा ३३ गोचर ३४ गोचर परा ३५ लोक मुख्या ३६ लोक मुख्या परा ३७ वेदवत ३८ वेदवत्परा ३९ सम्विद ४० सम्विद्परा ४१ कुन्डलिनी ४२ कुन्डलिनी परा ४३ सौषुम्नी ४४ सौषुम्नी परा ४५ प्राणसूत्रा ४६ प्राणसूत्रा परा ४७ स्पन्द ४८ स्पन्द पर ४९ मातृका ५० मातृका परा ५१ स्वरोद्भवा ५२ स्वरोद्भवा परा ५३ वर्णजा ५४ वर्णजा परा ५५ शब्दजा ५६ शब्दजा परा ५७ वर्णजा ५८ वर्णज्ञानपरा ५९ वर्गजा ६० वर्गजापरा ६१ संयोगजा ६२ सयोगजा परा ६३ मन्त्र विग्रहा और ६४ वां मन्त्र विग्रहा परा।

इसके अतिरिक्त ७२ नाभस मयूखाये, ५४ वायव्य मयूखायें, ६२ तेजस मयूखायें, ५२ आप्य मयूखायें, ५६ पार्थिव मयूखायें होती है जिनका तन्त्र शास्त्र में सुन्दर वर्णन किया है।

उषा ने कहा। आचार्य जी। यदि सभी मयूखाओं को सुस्पष्ट बताने का कष्ट करें तो बड़ी अनुग्रह होगी।

श्री चक्रपाणि जी बोले। देवि! नाभस, वायव्य, तेजस, आप्य और पार्थिव सभी मयूखायें मुझे कन्ठस्थ हैं।

हृदया कौलिनी, धरा, कान्ता, भोगा, विश्वा, मया, योगिनी, महा, ब्रह्मसारा, शवा, शांबरी, द्रवा, कोजिका, रसा, जुष्टा चाण्डाली, मोहा, अघोरेशी, मनोभवा, हैला,

केका, महारक्ता, ज्ञान [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] लाकिनी [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], सिद्धी, संहारा, कुलान्तिका, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], व्योमा, व्योमचारा, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] कुलातीता, कुलिनी, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], परमा, परा, परपरा और [illegible] यह [illegible] [illegible] मयूखायें हैं।

[illegible], मद्रा, कूर्मी, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], महानन्दा, शर्वरी, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] [illegible], कामदा, राकिनी, लामरा, [illegible], [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] हाकिनी, आधारेशा, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible], [illegible], हृदीशा, कामकला, कुलदीपिका, [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] परहा, [illegible], पराधिष्ठाना, [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। यह वायव्य मयूखायें हैं।

वरापरा, [illegible], परमा, [illegible], [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] चिदानन्दा, नीलकुब्जा, अघोरा, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] स्पर्शा, भूतेश्वरा, शब्दा, आनन्दा, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] डाकिनी, योगानन्दा, पद्म डाकिनी, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible], योगेश्वरा, चन्डा, पीठेश्वरा, [illegible], कुल [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], श्री कन्ठा, कामा, अनन्ता, रेवती, शांकरा, ज्वाला, [illegible], [illegible], [illegible] [illegible], करालरात्रि गुरु, परा, सिद्धा गुरु, [illegible], [illegible], [illegible] [illegible], [illegible], मेल गुरु, प्रतिष्ठा, समया गुरु और ६२ वां [illegible] यह [illegible] मयूखायें हैं।

सद्योजाता, माया, वामदेवा, श्री, अघोरा, [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] निवृत्ति, अनाथा, प्रतिष्ठा, जनाश्रिता, विद्या, [illegible], [illegible], [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], गंगा, मणिवाहा सरस्वती, अम्बुवाहा, कमला, [illegible], [illegible], [illegible], चित्रा, चतुर्विधेश्वरा मुकमला, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], श्रीकान्ता, [illegible] अनन्ता, सती, शांकरा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], हंसानन्दा परदिव्यायुगा वामा मार [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], सर्वेश्वरा, सर्वमयी यह ५२ मयूखायें आप्य अर्थात् जल तत्व की कही गई हैं।

पार्थिव मयूखायों का वर्णन तन्त्र शास्त्र में अति सुन्दर रूप से किया है। उड्डीश्वर उड्डीश्वरी, जलेश्वर जलेश्वरी, पूर्णेश्वर, पूर्णेश्वरी, कामेश्वर, कामेश्वरी,

श्रीकन्ठ, गंगा, अनन्ता, स्वरम्भा, शकरा, मति, पिंगला, पाताल देवी, नारदाख्या, नादा, आनन्दा, डाकिनी, आनन्दा, शाकिनी, महानन्दा, लाकिनी, योग्या, काकिनी, अनीता, साकिनी, त्रिपदा, हाकिनी, आधारेशा, रक्ता, चक्रीशा, चन्डा, कुरंगीशा, कराला, मद्घूर्णा, महोच्छुष्मा, अनादि-विमला, मातंगी, सर्वज्ञा विमला, पुलिन्दा, योगविमला, शम्बरी, सिद्धविमला, वाचापरा, समय विमला, कुलालिका, मित्रेशा, कुब्जा, उड्डीशा, लब्धा, षष्ठीशा, कुलेश्वरी, चर्याधीशा और अन्त मे ६४ वी पार्थिव मयूखा 'अजा' है।

उषा ने विनम्र भाव से कहा। मुझे कुछ और जान लेने की जिज्ञासा है। यदि आचार्य प्रवर बताने की कृपा करे तो जीवन भर अनुग्रहीत रहूँगी!

श्री चक्रपाणि जी ने कहा। तुम्हारी सभी जिज्ञासाओ की यथा शक्ति पूर्ति की जा सकेगी। कुमारिके!

उषा—सुना जाता है ब्राह्म मुहूर्त मे धर्म, अर्थ, काम, मोक्षादि प्राप्त हेतु जो साधना की जाती है वह सफल होती है। वह ब्राह्म मुहूर्त कब माना जाता है। इस पर कुछ प्रकाश डालने की कृपा करें। आचार्य वर!

श्री चक्रपाणि जी ने कहा। भद्रे! तुम्हारी यह जिज्ञासा उत्तम है। अधिकाश लोग नही जानते कि ब्राह्म मुहूर्त कब और किस समय माना जाता है। वस्तुत ब्राह्म मुहूर्त के सम्बन्ध मे शास्त्र का वचन है।

रात्रेः पश्चिम यामस्य मुहूर्त्तो यस्तृतीयकः। स ब्राह्म इति विज्ञेयो विहितः स प्रबोधने 'च पंच उषा कालः सप्त पंचारुणो दयः। अष्ट पंच भवेत्प्रातस्ततः सूर्योदयः स्मृतः॥'

इस क्रम मे रात्रि के अन्तिम प्रहर का तृतीयांश ब्रह्म मुहूर्त होता है।

अर्थात पञ्चागोपरि स्वदेश कालानुसार सम्पूर्ण साठ घटिकाओं के मान की पचपन (५५) घटी पर उषा काल, सत्तावन (५७) घटी पर अरुणोदय काल और अट्ठावन (५८) घटी पर प्रात काल तत्पश्चात् सूर्योदय काल होता है।

इस ब्राह्म मुहूर्त में जो सोता है उसका पुण्य क्षय होता है। रत्नावली में लिखा है कि 'ब्राह्मे मुहूर्त्ते या निद्रा सा पुण्यक्षय कारिणी।'

इसके अतिरिक्त जो मानव ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर अपने दोनों करतलों का दर्शन करता है और—

'कराग्रे वसते लक्ष्मी कर मध्मे सरस्वती।
कर मूलेस्थितो ब्रह्मा प्रभाते कर दर्शनम्'

इस श्लोक को तीन बार ध्यान पूर्वक पढ़कर अपने दोनों करतलो को प्रणाम करता है वह सतत सुखी रहता है।

इसी प्रकार उक्त मुहूर्त [illegible] के [illegible] है [illegible] जो श्रुति का समर्थन—

"[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]"

इस प्रार्थना श्लोक [illegible] है [illegible] होता है।

तथा मैं जिज्ञासा वश [illegible] पूछता [illegible] किस [illegible] है, महात्मन् ?

आचार्य श्री चक्रपाणि जी बोले—

उरसा, शिरसा, दृष्ट्या, मनसा, वचसा तथा ।
पद्भ्यां, कराभ्यां, जानुभ्यां प्रणामोऽष्टाङ्ग उच्यते ॥

अर्थात हृदय से, सिर से, [illegible] से, [illegible] से, [illegible] से, [illegible] से तथा दोनों जानुओं से—[illegible] के [illegible] है। [illegible] साष्टाङ्ग प्रणाम करें पर [illegible] को [illegible] ।

प्रदीप ने कहा। प्रसङ्गवश [illegible] और यह [illegible] हूँ कि [illegible] की प्रवृत्ति किस प्रकार होती है। आचार्य वर्य !

श्री चक्रपाणि जी ने कहा। जिज्ञासु !

निशार्धं दिनमानम् च युक्तं [illegible] ।
वार प्रवृत्तिर्विज्ञेया सूर्य सिद्धान्त [illegible] ॥

अर्थात निशा की घटी पल का आधा और [illegible] दिनमान की [illegible] पन्द्रह घटी और युक्त करने से वार की प्रवृत्ति होती है। [illegible] सूर्य सिद्धान्त का वचन है।

प्रदीप ने अन्त में अनन्त पाद श्री चक्रपाणि जी के [illegible] करते हुये कहा कि तन्त्र को कुछ लोग हेय दृष्टि से देखते हैं क्योंकि [illegible] में [illegible] प्रकार मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन, इनका [illegible] कहा गया है।

श्री चक्रपाणि जी ने कहा। वेद में आगम और निगम दोनों का [illegible] है। कर्म, उपासना और ज्ञान का [illegible] निगम है और [illegible] व्यावहारिक पक्ष, साधन एवं उपाय मार्ग को आगम बतलाता है। आगम को ही तन्त्र कहते हैं। ज्योतिर्विज्ञान द्वारा किसी रोगी के रोग का निदान करने पर [illegible] उपचार पक्ष में तन्त्र राम बाण के समान है। मानसिक विकारों पर तन्त्र [illegible] की प्रक्रियाओं के बल से अमोघ शस्त्र का काम करता है। बाह्य एवं आन्तरिक दोनों

से आक्रान्त प्राणी को तन्त्र की शक्तियो से शीघ्र ही निवृत्त किया जाता है। किसी भावी संकट, मारकेश अथवा आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक समस्याओ को तन्त्र के आधार पर हल किया जा सकता है। दवी–आपदा, भूकम्प, झन्झावात, जल–प्लावन आदि आकस्मिक घटनाओ को तान्त्रिक यज्ञानुष्ठानो द्वारा दूर किया जा पकता है।

वस्तुत: तन्त्र शास्त्र में साधना के दो मार्ग हैं। प्रथम दक्षिण मार्ग और दूसरा वाम मार्ग। शाक्त तन्त्र दक्षिण पन्थ के आधार पर गूढ तथ्यों का पथ प्रशस्त करता है।

पञ्च मकार का गूढार्थ भाव तन्त्र के दक्षिण मार्ग की आधार भित्ति पर पञ्च तत्व, पञ्च कोष, पञ्च प्राण एवं पञ्च मुद्राओ के समान है। इसका सम्बन्ध आध्यात्मिक जगत से है।

मद्य—

मद्य का अर्थ बाह्य मदिरा से नहीं अपितु ब्रह्म–रन्ध्र स्थित सहस्त्र–दल–कमल से प्रस्फुटित सुधा रूपी मद्य से है जो कि योग की खेचरी मुद्रा द्वारा शोधित किया जाता है।

मांस—

जो मानव पापी भावनाओं को ज्ञान रूपी शस्त्र से काटकर अपने सारथी मन को ब्रह्म मे लीन कर विचरण करता है अर्थात उसका सेवन करता है उसे तन्त्र ने मांसाहार बताया है।

मत्स्य—

शरीर में स्थित ईडा और पिंगला नाम की दो नाडियों को तन्त्र मे गंगा और यमुना कहा है। इनमें विचरण करने वाले श्वास और प्रश्वास को मत्स्य बतलाया , जो योग की प्रक्रियायो मे प्राणायाम के अन्तर्गत श्वास और प्रश्वास को स्थिर कर सुषुम्ना के भीतर प्राणवायु का संचालन करता है उसे ही वस्तुत मत्स्य साधक कहा गया है।

मुद्रा—

सत् और असत् के भेदाभेद का ज्ञान हो जाने का नाम ही मुद्रा है।

मैथुन—

मैथुन का अर्थ यहां अन्तरक्षितिज के सहस्त्र–दल–कमल मे स्थित कुण्डलिनी शक्ति का मिलन से है जब कि सुषुम्ना में प्राणवायु जाकर रमण करती है।

दक्षिण पन्थ के बहु तन्त्र प्रकार [illegible]

प्रदीप ने कहा । वैद्य स्वरूप [illegible] भित्ति पर लाकर जिस सुचारुता से [illegible] का ज्ञान-पट को खोल देने वाला है । [illegible]

उषा ने कहा : आचार्य श्री ने [illegible] सार रूप मे बतलाया वह एक अद्भुत ज्ञान का [illegible] विषय लुप्त प्राय से हो गये थे जिन्हें [illegible] आचार्य श्री चक्रपाणि ऐसे तन्त्र शास्त्र के [illegible] ज्ञान के प्रोत्साहनार्थ मैं भारत सरकार से अनुरोध करूंगी कि [illegible] और ज्ञान विज्ञान जगत में उन्हें उच्च स्तरीय उपाधि से [illegible]

प्रदीप : आचार्य प्रवर श्री चक्रपाणि जी ने [illegible] मूल पदार्थों को सामने प्रस्तुत किया, [illegible]

डाक्टर बी० एन० आडिया तथा श्रीमती [illegible] मार्मिक तथ्यों से विशेष प्रभावित हुये । [illegible] इस पुनीत मर्मस्पर्शी सिद्धान्तों का आदर करते हुये [illegible]

पंचम पराग

उषा और प्रदीप अपने भक्तानुयायियो के साथ एक दिन कही से अपने निवास की ओर आ रहे थे। मार्ग मे आर्थिक आपदा के मारे हुए कुछ भद्र नर नारी मिले, जिनके तन पर जीर्ण वस्त्र, आकृति पर झुरियाँ पड़ी हुई, बाल बिखरे हुये और लाज के मारे भिक्षा माँग सकते न थे।

उषा ने पूछा . आप लोग इस दयनीय दशा मे कैसे यहां पड़े हैं। सबने एक स्वर से कहा। धनाभाव से त्रस्त, कारोबार से रहित बुभुक्षित से विचर रहे हैं।

हमारे साथ चलना चाहते हो।

सबने हाथ जोड़कर कहा . बड़े भाग्य।

इतना कहकर सब साथ चले और उषा के आवास पर पहुंचे। उषा ने प्रथम सबको भर पेट भोजन कराने की व्यवस्था की। शीघ्र ही चरखा कातकर सूत तैयार करने के काम मे लगा दिया और एक लघु उद्योग स्थापित कर दिया। अपने आश्रम मे उनके आवास की भी व्यवस्था कर दी। एक मास के अन्तर्गत सभी चर्खा चलाने में इतने दक्ष हो गये कि अपना पेट पालने में स्वावलम्बी बन बैठे। दो मास के पश्चात उनके कार्य की क्षमता इतनी बढ़ गई कि प्रत्येक प्राणी एक रुपया प्रतिदिन बचाने लगा। छः मास में आश्रम की आय दो रुपया प्रतिदिन प्रत्येक प्राणी के अनुपात से बढ़ गई। इस प्रकार सच्चे धार्मिक भावनाओ से सिंचित एक छोटा सा अपना समाजवाद का रूप सुसंगठित हुआ।

उषा और प्रदीप परस्पर विचार विमर्श करते इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि जब तक देश की भुख मरी और निर्धनता दूर नही होती तब तक मानव अपने धर्म कर्मको सही ढंग से नहीं कर पाता। निर्धनता ही पाप की जड है। शास्त्र भी कहता है कि

त्यजे-क्षुधार्ता महिला स्वपुत्रं खादेत क्षुधार्ता भुजगी स्वमण्डम्।
बुभुक्षित. किं न करोति पापं क्षीणा नरा: निष्करुणा भवन्ति॥

अर्थात भूख से आतुर महिला अपने पुत्र को त्याग देती है। क्षुधा से आतुर सर्पिणी

अपने अदृष्ट को भा जाती है। इस प्रकार [illegible] करता। धर्म कर्म प्राणी को सुखी [illegible] है।

उषा ने प्रवीण से कहा। निर्विवाद [illegible] राष्ट्र धर्म की ओर [illegible] ध्यान देना चाहिये।

राष्ट्र को सुख और समृद्धशाली बनाना ही मानव का [illegible] है। इसी से मानव मात्र का कल्याण होगा, [illegible]।

भारत ऐसे धर्म प्राण देश का आदर्श केवल अपने राष्ट्र हित की [illegible] में रखकर कभी नहीं चला, प्रवीण। उसका धर्म उदार बनकर अखिल विश्व का कल्याण चाहता रहा है। इसलिये हमें वह मार्ग ढूंढ निकालना है जिसमें विश्व के सभी राष्ट्रों का हित सन्निहित हो, अन्यथा कोई भी सबल राष्ट्र दूसरे [illegible] दुर्बल राष्ट्र को इस समस्या की पूर्ति करने में [illegible] कर सकता है। इसी प्रसंग में [illegible] श्री नेहरू जी सदा से लगे रहे।

हमारे धर्म का विश्व व्यापक दृष्टिकोण है। इसीलिये नेहरू जी का अन्तर्राष्ट्रीय आदर्शवादी दृष्टिकोण सदा रहा। परन्तु कहीं ऐसा न हो कि "दीपक के नीचे अंधेरा" की कहावत चरितार्थ हो। अतः जो मानव या राष्ट्र [illegible] समृद्धशाली नहीं बन पाता तब तक वह दूसरे की सहायता कैसे कर सकेगा, प्रवीण ?

प्राचीन काल में हमारे यहाँ ऐसे यज्ञ हुआ करते थे जिनसे समस्त विश्व धन धान्य से परिपूर्ण हो जाता था। आज भी यदि उसी कोटि के यज्ञ किये जायें तो निश्चय ही समस्त संसार उसी प्रकार सुखों का उपभोग करने लगे।

यागादि कर्मों द्वारा निश्चय ही पृथ्वी अन्नराशि से परिपूर्ण हो जाती है। परन्तु आज के युग में कितने ऐसे विद्वान वैदिक कर्मकाण्डी होंगे जिनकी वाणी में मन्त्रों की शक्ति भर चुकी है और एक सिद्ध पुरुष की भांति अपने मंत्रों की शक्ति का चमत्कार दिखाकर संसार को चकित कर सकें। युग के अनुसार सभी की मान्यतायें ढलती गईं और उसी क्रम से आन्तरिक शक्ति का भी ह्रास होता गया। इसलिये उस कोटि की आत्म शुद्धि एवं भाव निर्मलता के अभाव में ऐसे यज्ञों का सफल होना कठिन है। इसके अतिरिक्त यज्ञ समिधा इत्यादि का भी मिलना एक समस्या है। इसीलिए नेहरू जी भी इस प्रकार के यज्ञों का अस्तित्व नहीं समझते थे।

यह तान्त्रिक युग है। वैदिक नहीं। इसमें तान्त्रिक यज्ञों द्वारा ही कार्य सिद्धया होती हैं। ऐसी विशेष सामग्री की आवश्यकता भी इसमें नहीं पड़ती जिसकी उपलब्धि हो।

तुम्हारी यह सूझ उत्तम है, शुभे। परन्तु इसके लिये इन्द्र देव का आवाहन करना होगा। जिनके प्रसन्न होने पर सभी साधन सम्पन्न होगे।

यज्ञ की सारी व्यवस्था शुद्ध समिधा आदि के लिये प्रथम हमें लक्ष्मी का आवाहन करना है। आओ, अब दोनो विश्राम करें और कल इसकी रूप रेखा पर विचार किया जायगा।

उषा सुन्दरी पूरब में अपना अरुण अञ्चल लहराती हुई और तारक घटो के अम्बर पनघट पर डुबोती हुई आगे बढ रही थी। प्रकृति में नव चेतना का सचार प्रारम्भ हो गया था। कलिया खिलने लगीं थी। कमलदल मुस्कराने लगे थे। प्रभाती समीर के मादक झोंके उषा और प्रदीप के शयन-कक्ष में स्पर्श कर उन्हे जगा चुके थे। दोनो ने स्नान किया, पीत वस्त्र धारण किये, और देवद्वार की ओर पूजनार्थ चल दिये। जहा मनोरम उद्यान में कलरव का सप्त स्वर गूंज रहा था और पुजारी के स्तोत्र तथा घंटियो के मधुर स्वर समवेत होकर भक्ति रस को वसुन्धरा पर उडेल रहे थे।

प्रदीप के प्रासाद के निकट ही एक भव्य उद्यान के मध्य में श्वेत सङ्गमरमर से निर्मित विष्णु और लक्ष्मी का मन्दिर था जिसका पूजन-गृह यद्यपि अति विशाल न था फिर भी उसमें बहुमूल्य रङ्गीन पत्थरो द्वारा विविध प्रकार की चित्रकारी प्रस्तुत की गई थी। बीच मे भगवान विष्णु और लक्ष्मी जी की स्वर्ण प्रतिमा नव रत्न जटित स्वर्ण सिंहासन पर सुशोभित थी तथा गृह की दीवारो पर दशावतारो के चित्र अङ्कित थे। देव मन्दिर में घृत दीपक जल रहे थे। पुजारी पूजा अर्चना की समस्त सामग्री एक रजत पात्र मे सजो रहे थे। इसी बीच प्रदीप और उषा भी रेशमी पीत वस्त्र धारण किये देव द्वार पर पहुंचे। श्रद्धा भक्ति युक्त साष्टाङ्ग प्रणाम किया और विधिवत पूजा अर्चना के पश्चात जन वाञ्छित संकल्प हेतु प्रार्थी के रूप मे ध्यान निमग्न हो गये।

कुछ ही समय पश्चात अकिञ्चनता निवारणी देवी श्री महालक्ष्मी स्वयं प्रकट हुईं और उनकी निःस्वार्थ कामनाओं की पूर्ति करती हुई अन्तर्ध्यान हो गईं।

इस प्रकार उषा और प्रदीप को पर्याप्त धन राशि की प्राप्ति हुई। यज्ञ की बाह्य व्यवस्था समिधा एवं वेदी मण्डपादि का समस्त प्रबन्ध हो गया। देश के श्रेष्ठ याज्ञिक यज्ञ के आभ्यान्तरिक स्वरूप की पूर्ति के लिये आमंत्रित किये गये।

माघ मास की बसन्त पंचमी तिथि को [illegible] का शुभ मुहूर्त [illegible] निश्चित घोषित किया गया । यज्ञ मण्डप [illegible] के आधार पर [illegible] गया । [illegible] वेदियाँ अनेक रंग विरंगे तान्त्रिक यन्त्रों से अलंकृत थीं । [illegible] [illegible] आकृतियों पर निर्मित की गई थीं । वेदियों पर [illegible] के दीपक [illegible] [illegible] [illegible] स्थापित थे । जिनपर शुद्ध गोघृत के दीपक जल रहे थे । कई प्रकार के रंग बिरंगे पक्षियों के पंख विविध भावनाओं को संकेत करते [illegible] की चारों दिशाओं मे लगे थे । यज्ञ मण्डप नवरंगों के वस्त्रों से [illegible] था । पूजन के प्रधान सभी पात्र स्वर्ण और रजत ही के थे । यज्ञ मण्डप में अनेक द्वार थे । द्वारों का [illegible] रूप था जो विभिन्न नामों से सम्बोधित थे । [illegible] यज्ञ कुण्ड थे । यज्ञ मण्डप के मध्य गर्भ स्थल में एक विशाल पताका नव ग्रह के नव रंगों से [illegible] फहरा रहा था । सभी दिशाओं में विभिन्न रंगों के [illegible] थे । [illegible] ऋत्विक तथा याज्ञिक तान्त्रिक परम्परानुगत रंग बिरंगे, पीताम्बर, [illegible], [illegible], [illegible] आदि रेशमी वस्त्र धारण किये विभिन्न प्रकार के आसनों पर आसीन थे । विश्व के सभी आकाशवाणी केन्द्रों से ऐसे विलक्षण तान्त्रिक यज्ञ का [illegible] कार्यक्रम एवं विधि विधान प्रसारित करने का प्रबन्ध था । संसार के इतिहास में इस प्रकार का [illegible] यज्ञ इधर सहस्त्रों वर्षों से देखने या सुनने को न मिला था । सभी वेदियों तथा उन पर प्रतिष्ठापित कलशों का विधिवत पूजन हुआ । [illegible] मन्त्रों से अरणि मन्थन कर ज्यूं ही अग्नि प्रज्वलित हुई संसार के सारे [illegible] [illegible] आश्चर्य चकित हो उठे । अग्नि प्रज्वलित होने के पश्चात वेद पाठ आरम्भ हुआ जिसकी ध्वनि लय के रूप में वायु तत्वों द्वारा आकाशमण्डल में प्रविष्ट कर [illegible] [illegible] करती हुई धरा को अन्नराशि से उद्भूत करती । [illegible] [illegible] संसार अन्न धान्य से परिपूर्ण हो गया । यज्ञ अपने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] चलता रहा यज्ञ की रूप रेखा तथा उसके विवरण की तालिका का कुछ उल्लेख इस प्रकार है ।

लोक कल्याण महायज्ञ

आभ्यान्तरिक आहुति तथा शरीर की

अखण्ड जप और पाठ एवं सहस्त्राक्ष हवन

दिन संख्या ४१

भारत के प्रांगण में

यामल तन्त्र के आधार पर संचालित

यज्ञ योग [illegible]



यज्ञगर्भ

५०० × ५०० हाथ

बाहर आवरक द्वार क्षेत्र

२५० × २५० हाथ

परिक्रमा क्षेत्र

२५० × २५० हाथ

प्रातः ८ बजे से सायंकाल ६ बजे तक……वैदिक विधान

सायंकाल ७ बजे से प्रातः ७ बजे तक……तान्त्रिक विधान

महायज्ञ का क्रमांकन

ग्रहगण ९, दिशा स्वामी मूर्ति ८, तिथि स्वामी मूर्ति १६, राशि तन्त्र चक्र १२, राशि स्वामी मूर्ति १२, नव ग्रह स्वामी मूर्ति ९ ग्रहतन्त्र चक्र ९, योगद्वार चक्र २८, नक्षत्र स्वामी मूर्ति २७, नक्षत्र तन्त्र चक्र २७, नक्षत्र चरण तन्त्र चक्र ११८, सर्वतोभद्रचक्र १, मध्य गर्भ चक्र १, प्रधान तन्त्र चक्र १,

मूर्ति संख्या ७६ तन्त्र चक्र

७६ मूर्ति स्वरूप, १६० तन्त्र चक्र युक्त द्वार चक्र।

७६ मूर्तियां विभिन्न स्वरूप की, १६० तन्त्र चक्र विभिन्न स्वरूप के।

२७० रजत अंकित काष्ठ पट्टिका २ × ३ फुट तन्त्र चक्र की।

१ मध्यम गर्भ वेदी रजत अंकित काष्ठ की ३ × ३ फुट की।

१ प्रधान तन्त्र वेदी रजत अंकित काष्ठ की १२ × १० फुट, तन्त्र चक्र की।

२०० त्रिशूल स्थापन द्वार चक्र रजत से मण्डित काष्ठ के।

८० रजत के दीपक दान मय सवा बालिश्त ऊँचे।

२०० रजत के कलश १ हाथ ऊँचे दीपक युक्त।

१६ दीपक थाल रजत के बड़े।

१ मध्य गर्भ रजत कलश डेढ़ हाथ का अखण्डदीप युक्त, दीपक सहित रजत का।

१ प्रधान वेदी पर कलश रजत का सवा हाथ ऊँचा।

१ प्रधान वेदी पर कलश स्वर्ण का सवा बालिश्त ऊँचा।

२ स्वर्ण त्रिशूल प्रधान वेदी पर सवा हाथ ऊंचा।
१ स्वर्ण शलाका सवा बालिश्त की।
१ स्वर्ण पताका सवा हाथ ऊंचा।
प्रत्येक वेदी पर वस्त्रादि नव रंग के।
इसलिये २६६ तन्त्र वेदी के लिये ३००० गज कपड़ा नव रंग के।
मयूर पंख विभिन्न नाप के १३००
कबूतर के पंख विभिन्न रंग के १२००
स्याही के कांटे विभिन्न नाप के १२००
नारियल के गोले विभिन्न नाप के १३००
आसन विभिन्न रंग के १५००
माला नवरत्न की १
घुग्घू के पंख १५००
नीलकंठ के पंख १५००

ॐ मालायें ॐ

रुद्राक्ष, स्फटिक, मूंगा, मोती, पन्ना, हरिद्रा, माणिक्य, नीलम, गोमेदक।

ॐ वस्त्र ॐ

नीलाम्बर, श्वेताम्बर, पीताम्बर इत्यादि ६ रंग के अम्बर संख्या १५००
दुपट्टा ६ रंग के गले के। कुल संख्या १५०० शुद्ध रेशमी।

चरण पादुका	१५००
यज्ञो पवीत	१५००
मालायें नवग्रहों की	१५००

प्रधान तन्त्र वेदी पर सिंहासन गंगा जमुनी का १

रजत पात्र षोड्षोपचार पूजनार्थ

५० कटोरा प्रधान वेदी पर भोग पात्र के।

६० तन्त्र द्वार भोग पात्र तथा शंखद्वार के।

३०० शंख विभिन्न आकार के।

३०० शंखद्वार।

दक्षिणावर्त्त शंख तथा उसका द्वार चक्र।

व्याघ्र आसन २४

मृग आसन २४

आरती १०८ दीपकों की

धूपदान बड़ा १

थार बड़ा १

पंच पात्र आचमनी ३ रजत की।

इत्रदान रजत के ३००

इत्र सब प्रकार के ६ तोला

६ प्रकार के वाद्य घंटा, मृदग, डमरू, घडियाल, इत्यादि रजत के तथा शंख, ढपोर शंख, महाशंख एवम् उनके रखने के रजतपात्र।

रोली, कलावा, अक्षत ६ रंग के, धूप, कपूर, अगर बत्ती, पान, सुपारी,

कन्जाफल १०००, लंवग ५ सेर, इलायची २ सेर, रुई ५ सेर, मोम १० सेर

दियासलाई १००, डुरसा २० बड़े, चन्दन २० मूठा।

रजत की जलाधरी ६ हाथ ऊंची।

❀ वैदिक मंडल ❀

प्रत्येक तन्त्र वेदी पर ४ पंडित।

इस लिये २६८ वेदी पर १०७२ पंडित।

निरीक्षक २४

प्रधान वेदी पर १६ वैदिक, मध्य गर्भ पर ८ वैदिक = ११२० योग

हवन के कुण्ड ६०

२८ नक्षत्र हवन कुण्ड २५२ पण्डित

१२ राशि कुण्ड १०८

९ ग्रह कुण्ड १०० ,,

१ प्रधान कुण्ड वेदी पर १६ ,,

१ भू गर्भ कुण्ड १६ ,,

८ दिक्पाल कुण्ड ३२ ,,

१ सर्वतो-मुखी ग्रह पिण्ड हवन कुंड पर ६४ पंडित

६० हवन कुंडों पर पण्डित ६४४ तथा २६ निरीक्षक

कुल योग याज्ञिकों का ६७०

कुल संख्या वैदिकों एवं याज्ञिकों की १५००

बाह्य जापकों की संख्या ५४२४ जो अपनी सामग्री [illegible] सकते थे। इन बाह्य जापकों की व्यवस्था स्वेच्छानुसार थी। इसमें [illegible] में स्त्री, पुरुष दोनों भाग ले सकते थे। इन्हें यज्ञ की ओर से कोई भोजन, वस्त्र, दक्षिणा की व्यवस्था न थी।

ॐ यज्ञ मंडप का स्वरूप ॐ

नवरंगों से अलंकृत।

ज्योतिषशास्त्र के १८ प्रवर्तक ऋषि मुनि।

अतः १८ ऋषियों के चित्र एवं उनके १८ द्वार ३६ स्तम्भ ध्वज युक्त।

प्रधान तन्त्र द्वार पर विशाल ध्वज १

८ दिशाओं पर १६ स्तम्भ।

१६ तिथि द्वार पर ३२ स्तम्भ।

१२ राशि द्वार पर २४ स्तम्भ।

९ ग्रह द्वार पर १८ स्तम्भ।

२८ नक्षत्र द्वार पर ५६ स्तम्भ।

११२ नक्षत्र द्वार पर २२४ स्तम्भ ।

१ गर्भ द्वार स्तम्भ मध्य में १२५ हाथ ऊंचा ६ रंग का ।

१ प्रधान संचार द्वार ध्वज स्तम्भ ४

१ प्रधान सीमा यन्त्र त्रिशूल द्वार स्तम्भ २

यज्ञ समिधा ४१ दिन की

दीपक सम्बन्धी घृत ४१ दिन का ४१ मन ।

हवन सम्बन्धी शुद्ध घृत ४१ दिन का १७० मन ।

हवन सामग्री ४१ दिन ३५० मन ।

नित्य की सामग्री

समस्त उपलब्ध फल, समस्त प्रकार के मिष्ठान्न, समस्त भांति के मुरब्बे, अचार, मेवा तथा सर्वधान्य ।

गोदुग्ध सवा मन, दही २० सेर, शहद शुद्ध सवा सेर, मिश्रीकन्द ५ सेर, गुड़ ५ सेर, बूरा १० सेर, पञ्च गव्य सवा सेर, अष्टगंध सवा तोला, समस्त इत्र सवा तोला, अष्ट धातु सवा छटांक, नवरत्नी सवा तोला, केसर सवा तोला, कस्तूरी सवा माशा, पंच पल्लव सवा सेर, सप्ततीर्थ जल सवा सेर, भोज पत्र ५ सेर, फूलहार १००० नित्य ।

यज्ञ का विधान ज्योतिष तन्त्र के आधार भूत 'यामल तन्त्र' पर रचा गया था । विषय अत्यन्त गोपनीय होने के कारण यज्ञ का आयोजन नितान्त एकान्त स्थल पर हुआ था । तान्त्रिक विधि विधान एवम उनकी गोपनीय क्रियायों के रक्षार्थ दर्शकों की उमड़ती हुई भीड़ को देख कर प्रबन्धकों ने यज्ञ के समस्त प्रवेश द्वार बन्द कर दिये थे ।

यज्ञ की पूर्णाहुति के दिन अपार भीड़ थी । देश विदेश के सन्त, महात्मा, विद्वान दार्शनिक तथा वैज्ञानिक भारी संख्या मे इस विलक्षण यज्ञ को देखने आये थे । इस अद्वितीय तान्त्रिक यज्ञ की चर्चा घर २ व्याप्त हो गई । भारत का किसान यज्ञ की भावना पर आशा लगाये देख ही रहा था । उसकी भावनाओं को पुनरज्जीवित कर वसुन्धरा शस्य श्यामला हो गई । पशु पक्षी चहक उठे । मानव के अन्तर्जगत

में एक विशेष आनन्द की लहर दौड़ गई। कुछ किसान धर्म [illegible] इसी मार्ग में चले जा रहे थे।

मुलई : भइया ! उन बाबन मा का [illegible] महिमा बा कि जब चाहें मेघवा बुलाइलेय, औ जब चाहें पनिया बरसाय दें।

मुल्लू : हम पंचन के पुरिखा कहिगे हैं कि जब ही [illegible] [illegible] हो तबहीं यज्ञ का कीन्हिन। जाहि से अन्नधन का पनिया बरसा।

पैमू। ई सब भगवान केहिया माया बा। केहू दूसर केर [illegible] नाहीं। यज्ञ मा इन्द देवता तो प्रकटेन हैं।

मुन्मन : हमरे छुटपन मा ऐसेन यगवा भवा रहा। खूब पनिया बा।

रूपई : अबकेर भइया हम पंचन केर चांदी भई।

इस प्रकार किसान वर्ग उल्लास में झूमता फिरता। व्यापारियों का भी बाजार गर्म हुआ। समस्त फल एवं पदार्थों पर बहुत प्रभाव पड़ा। फसल कटने के पूर्व ही प्रत्येक वस्तु का मूल्य गिरने लगा। अन्न पर भाव [illegible] घट गया। गरीबों के भाग्य जागे जिन्हें जीवन में कभी पेटभर अन्न खाने को न मिलता था वे भी परितृप्त हो गये।

पाश्चात्य देशों में यज्ञ की चर्चा धूम ही उठी थी। अनेक राष्ट्रों से बड़े २ वैज्ञानिक यज्ञ के रहस्य को समझने की चेष्टा से आये थे। इस यागादि में मन्त्रों का उच्चारण तथा उनके यम नियम इतने दुस्तर थे कि वे इस गूढ़ रहस्य को कुछ भी न समझ सके। इस यज्ञ से याज्ञिक शक्तियों पर मानव का विश्वास जगा। धर्म की भावना पुन. जागी। ईश्वर की सत्ता को लोगों ने समझा और वैज्ञानिकों को अनुसन्धान का अवसर मिला।

ग्रीस की महान तत्व दार्शनिक, सुकरात दर्शन की प्रकाण्ड विदुषी मैडम जी जूलया तथा डा० आर्क मीडिमन, रोम के डा० मुरेलियो तथा डा० [illegible] फिलिप, पाश्चात्य प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० काउन्ट डी० बेला तथा डा० थामस जर्मन अणु विज्ञान विशेषज्ञ डा० माइकेल तथा डा० एफ० एस० रावर्टसन आदि विश्वविख्यात दार्शनिक एवं वैज्ञानिक यज्ञ में सम्मिलित हुये।

वैदिकों द्वारा सस्वर मन्त्रोच्चारण तथा एक साथ पाठ करने का क्रम सुनकर

किस प्रकार अरणि मंथन से अग्नि प्रकट हुई। अग्नि के प्रकट होने पर उसमे अग्निष्टोम यज्ञ किस प्रकार किया गया और यज्ञ समिधामे किन २ सामग्री की आवश्यकता हुई अर्थात किन अणु पदार्थों से अग्नि वायु तत्वो मे प्रविष्ट कर जल की उत्पत्ति करती हुई अन्नराशि का उद्भव करती, यज्ञ द्वारा उत्पन्न अन्न पदार्थ किन २ गुणों से युक्त होता आदि विषय गाम्भीर्य की पैठ तथा उनकी वैज्ञानिक खोज करने यह लोग विशेष रूप से आये थे।

मुमताज, हबीबा बानू, अशरफ अली, डाक्टर बी० एन० वाडिया श्रीमती सोहराब जां, तथा विदेश के अनेक सम्भ्रान्त नागरिक जो उषा और प्रदीप से प्रभावित होकर सत्य, अहिंसा एवं तत्व दर्शन पर जगह जगह प्रचार करते थे सभी यज्ञ पर्व पर उपस्थित थे। यज्ञ की पूर्णाहुति पर सभी ने यज्ञ भस्म और प्रसाद ग्रहण किया।

कुछ देर पश्चात प्रमुख वैज्ञानिक तथा दार्शनिक एक गोष्ठी के रूप में संगठित होकर बैठे और विचार विनिमय होने लगा।

मुमताज ने कहा : भारत का दर्शन कितना ऊंचा है जो मानव मात्र के कल्याणार्थ ऐसे मार्ग का निर्देशन करता जिसके दर्शन मात्र से प्राणी अपने को उसमें खो बैठता है। आज मानव जात पात तथा साम्प्रदायिकता के संघर्ष में व्यथित एक दूसरे को खाने की चेष्टा कर रहा है। उन्हें इन दार्शनिक सिद्धान्तों से सबक सीखना चाहिये और बाह्य धार्मिक विवाद तथा सामाजिक संघर्ष को समेट कर एक धर्म एवं एक ही समाज का सिद्धान्त अपनाना चाहिये। जब हम अन्दर से एक है फिर बाह्य लिवाज पहिनने से कोई अन्तर नही पड़ता। यह अपने २ रूचि की बात है। कोई धोती पहिनता है कोई पायजामा, कोई पतलून कोई लुंगी कोई साफा बांधता है, कोई सीधी टोपी लगाता है तो कोई तिरछी। इन सब बातों में कोइ तथ्य नही। अग्नि जल वायु पृथ्वी और आकाश इन पांच तत्वो द्वारा देह की रचना विश्व का अधिकांश दार्शनिक स्वीकार करता है। फिर हम विश्व बंधुत्व की भावना परस्पर क्यो नहीं लाते। हमें संसार मे ऐसे सिद्धान्तो का प्रसार करना चाहिये जिससे मानवता के नाते हम सब स्नेह सूत्र में बधें और मानव को मानव पहिचानें। आज का वैज्ञानिक हमें आतंकित किये हमारी धार्मिक और आध्यात्मिक प्राणवाही धारा को अपनी ओर केन्द्रित किये ले रहा है। इसमे तमोगुण की छाप लगी है और विध्वंसात्मक प्रवृत्तियां कामकर रही हैं। आज का वैज्ञानिक जड़वादी हो गया है। वैदिक काल में यही विज्ञान अपने उत्कर्ष की चरम सीमा पर था जो आज के जड़वादी विज्ञान से कहीं ऊंचा था। इतिहास इसकी बार २ दुहाई देता है। उसमें

सात्विक भावना प्रकाश की और रचनात्मक प्रवृत्तियों के [illegible] सदा सजग रहा। इसलिये यदि सभी धर्म मूल [illegible] को स्वीकार [illegible] धर्म और विज्ञान का परस्पर सौहार्द सम्बन्ध स्थापित करता है जिसमें विज्ञान [illegible] ज्ञान [illegible] कोष से मूल [illegible] द्वारा विश्वशांति [illegible] के लिये [illegible] हो।

उषा : तुम्हारे [illegible] मेरा [illegible] स्नेह से भर गया। अच्छा अब मेरी [illegible] भी [illegible]।

हबीबा : मैं भौतिक जगत से [illegible]। [illegible] का ही बोलबाला है। आज की [illegible] भारी [illegible] भौतिक [illegible] है। भौतिकवाद और विज्ञान [illegible] ही नोच खसोट, [illegible] और [illegible] है। [illegible] का भव्द नाद [illegible] और [illegible] देता है। [illegible] एक दिन 'मुद्रा स्फीति' में [illegible] है। झूठ का व्यापार चरम सीमा पर पहुँच रहा है। [illegible] आदि सभी अपने २ वर्ग, जाति, [illegible] सम्प्रदाय [illegible] में पोषण करता हुआ संकीर्ण विचारों में [illegible] हुआ है। [illegible] इन सब जाल से ऊपर [illegible] के [illegible] को स्वीकार कर 'सत्य' पर चलाये गये आन्दोलन को स्वीकार करते हैं।

प्रदीप : विदुषी हबीबा का अनुभव [illegible] है। [illegible] में [illegible] कुछ व्यक्ति के मन को बदला [illegible] नहीं। अब हमारे डाक्टर डी० एन० वाडिया और श्रीमती [illegible] भी अपने [illegible] का कुछ अनुभव बतायें।

डाक्टर वाडिया ने कहा : जहाँ तक मैंने अनुभव किया [illegible] का वैज्ञानिक साधारण झूठ-सच के प्रपंच में नहीं पड़ता। वह विज्ञान की कसौटी पर झूठ को सच और सच को झूठ बना देता है। [illegible] भय रखता है कम झूठ बोलना चाहता है। निम्न स्तर के लोगों में झूठ एक आम बात हो गई है। सर्वाधिक झूठ का जाल न्यायालय के चार दीवारों में बिछा है। जो न्याय और सत्य का गला दबोच रहा है और न्यायाधीश के [illegible] भी [illegible] जा रहा है। इन सबके होते हुये भी सभी राष्ट्रों के शासक [illegible] सत्य के मार्ग को अपना लें तो बहुत कुछ समस्यायें सुलझ सकती हैं।

श्रीमती मोहराब जी बोली मैं अपने प्रचार क्षेत्र में जहा भी गई सत्य बोलने का संकल्प बहुतों ने लिया। परन्तु परिस्थितियो का अध्ययन करने से मैं इस निष्कर्ष पर पहुंची कि साधारण जनता मे लोभ अधिक बढ़ रहा है। मानव का सतोष खो सा गया है। बडे से बडा धनी अपनी आकाक्षाओ की पूर्ति नही कर पाता। जबकि एक ओर असख्य गरीबों को पेट भर रोटी भी खाने को नहीं मिलती। इस लिये अनेकता मे एक रूपता लाने के लिये विश्व मे समाजवाद की स्थापना भी उतनी आवश्यक है जितनी कि धर्म की। धर्म की आधार भित्ति पर यदि समाजवाद स्थापित होकर दोनो का सामजस्य हो जाय तो धर्म का आर्थिक सतुलन होकर उसका सच्चा स्वरूप आ जाय। धर्म और समाज दोनो एक जीवात्मा के समान हैं। इसलिये सत्य के साथ हमे लोभ की जननी अर्थ का भी मूल्याकन उतना ही करना होगा। आज लोभ के ही वश पापाचार, दुराचार और अत्याचार हो रहा है। सत्य की स्थापना लोभ को समूल नष्ट किये बिना होना दुस्तर है।

प्रदीप ने श्रीमती सोहराब जी की ओर सबोधित करते हुये कहा। वस्तुत समाजबाद सर्वोत्तम है इसमे प्रत्येक राष्ट्र का सामाजिक ढांचा सतुलित होगा और गरीबी, भुखमरी भी दूर हो जायेगी। यह भी सही है कि आज ससार में लोभ बढ गया है। पाठशालाये, विद्यालय, उपदेशक, धर्माचार्य प्राय: सभी ज्ञान–केन्द्र लोभ के अंकुश मे चलते हैं। पर बिना सत्य को अपनाये समाजवाद की स्थापना मृग तृष्णा के समान है। सत्य ही एक ऐसा मार्ग है जो धर्म की नींव को धीरे २ दृढ़ करता हुआ इस भौतिक शरीर के सभी कल पुर्जो को ठीक कर लोभ रूपी चोर को अन्दर से निकाल कर खोद फेंकेगा तब कही मानव अपने निर्मल स्वरूप को लेकर अपना शुद्ध सुसांस्कृतिक समाज बना सकेगा।

सत्य ही जीवन का प्राण है। इसी सत्य पर यह शरीर सुस्थिर है। जिस क्षण सत्य का अंश इस शरीर से निकल गया तब यह मॉस और हड्डियो का पिण्ड सदृश निष्प्राण सा हो जाता है। इसलिये प्रथम सत्य ही पर बल देना है। जात पात का भेद भाव, साम्प्रदायिकता की विभीषिका, दैवी आपदायें, विश्व व्यापी संघर्षात्मक समस्यायें आदि को सत्य ही सुलझाकर शान्ति के पथ को प्रशस्त कर सकेगा। अत सत्य ही को लेकर हमें दृढता के साथ बढ़ते जाना है।

उषा: प्रदीप ने सत्य की ज्योति जलाकर संसार को जो कल्याण का मार्ग बताया उससे उत्तम और कोई नही। सत्य ही अन्त:करण को शुद्ध और पवित्र करता है। मन की शुद्धता ही जीवन का मूल है। इसी के द्वारा आभ्यान्तरिक कल

पुर्जे ठीक काम करते हैं। एक घड़ी के सम्पूर्ण कल पुर्जों से सज्जित हुआ उसका यदि एक सूक्ष्माति सूक्ष्म यन्त्र ठीक काम नहीं करता तो उसका सारा कार्य अव्यवस्थित एवं विकृत हो जाता है। ठीक यही दशा इस शरीर की है। कुछ दार्शनिकों ने आत्मा को ही मन बताया और कुछ ने मन को ज्ञान के केन्द्रबिन्दु रूप का प्रत्यगाभिव्यंजन करते हुये ज्ञान की कसौटी बताई है। सभी दृष्टि से मन की व्याख्या की गई है।

एक पाश्चात्य वैज्ञानिक डा० राबर्टसन ने उषा से पूछा सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में आपका भारतीय दर्शन क्या कहता है?

उषा ने कहा। भारतीय दर्शन का विशुद्ध वैज्ञानिक आधार है। आरम्भ में समस्त त्रैलोक्य अन्धकारतम शून्य था। इनमें परस्पर आकर्षण, और विकर्षण से उनके युक्तायुक्त एवं भेदाभेद रूपी सम्बन्ध से सूक्ष्माति सूक्ष्म अणु परमाणु प्रथम आकाश पिण्ड बना। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है। इन्हीं सूक्ष्म पञ्चभूतों से सूक्ष्म और स्थूल दोनों तत्वों का आविर्भाव है। स्थूल सूक्ष्म भूतों के योग सम्बन्ध से शरीर बना। इन्हीं तत्वों के आकर्षण एवं विकर्षण आदि से जीव, जन्तु, कीट, पतंग, पशु पक्षी आदि भिन्न-भिन्न प्राणियों की उत्पत्ति हुई जो कोटि २ योनियों के रूप में जन्म मरण के आवागमन बन्धन में बंध गये। इस प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति और उसका सृजन हुआ।

अन्त में पाश्चात्य दार्शनिक ने कृतज्ञता प्रकट करते हुये कहा भारत सदा आध्यात्मवाद का नेतृत्व करता आ रहा है। पाश्चात्य दार्शनिकों ने अपनी अपने आधार पर धर्म और विज्ञान को भौतिकता के साथ तराजू पर तोल कर उसे सींचा और सांसारिक पद पदार्थों के ऐहिक सुखों की प्राप्ति, उपलब्धि तथा मूल्यांकन कर अपने ज्ञान को अधिक प्रश्रय दिया।

षष्ठ पराग

निशा सुन्दरी अपने घूंघट पट को धीरे धीरे उभार रही थी और उषा अपने अञ्चल को पसारे अंशमाली के स्मित-मुख आभा की बाट जोह रही थी प्रदीप और उषा अपने पूर्ण मनोयोग से ध्यान मे विरत एकान्त में योग की साधना कर रहे थे। पाश्चात्य वैज्ञानिक रेवरेण्ड डा० रिचार्ड फिलिप जो दर्शन शास्त्र के भी प्रखर विद्वान थे अनायास आ पहुंचे।

कुछ देर प्रतीक्षा के पश्चात् जब दिनकर की रश्मियाँ बिखर गईं प्रदीप और उषा अपनी योग-साधना से निवृत्त होकर बाहर आये और डा० फिलिप को अभिवादन करने के पश्चात् प्रदीप ने पूंछा। श्रीमान् जी ने किस जिज्ञासा से इस समय आने का कष्ट किया?

डा० फिलिप ने अपनी मनोकामना प्रकट करते हुये कहा। मुझे धर्म और योग का पारस्परिक सम्बन्ध जानने की जिज्ञासा है।

प्रदीप ने कहा, मान्यवर! वैदिक धर्म के आधार-मूल-सिद्धान्तो से धर्म और योग का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। बिना योग की साधना के धर्म का मूल तत्व–रहस्य अधूरा रहता है। योग के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है। हमारे ऋषि मुनियो ने योग द्वारा ही कैवल्य की प्राप्ति की थी। बौद्ध और जैन दर्शन ने भी योग को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। भारतीय धर्म के शैव तथा शाक्त मत के प्रवर्त्तकों ने योग के आधार पर अनेक ऋद्धि सिद्धियो की चर्चा की। इसी प्रसङ्ग के अन्तर्गत योग दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान तथा योग के ८४ आसनो के विशेषज्ञ स्वामी श्री अच्युतानन्द नाथ जी माता शक्तिदा को साथ मे लिये उपस्थित हो गये। सबने उनका अभिवादन किया। प्रदीप ने विनम्र भाव से कहा कि आपके इस अनायास आगमन से बड़ी प्रसन्नता हुई। आज हमारे भवन के मुख्य कक्ष में सायंकाल से योग दर्शन सम्बन्धी विशिष्ट वार्त्ता में अध्यक्षता करने की अनुग्रह करें। सौभाग्य से देश-विदेश के प्रमुख वैज्ञानिक एवं दार्शनिक यहां एकत्रित है। उन्हे भी लाभ होगा।

प्रदीप के भव्य-भवन के मध्य में एक मुख्य कक्ष था जिसे कमेटी हाल कहते थे। योग सम्बन्धी व्याख्यान-माला का आयोजन उसी में किया गया। शुभ

वस्त्रों से मण्डित एक मञ्च पर श्री स्वामी जी आसीन हुए और उनके दूसरे छोटे मञ्च पर परम तपस्विनी माता शक्तिदा जी को आसीन किया गया। श्रोतागण सामने कुर्सियों पर बैठे। सारा कक्ष सुवासित धूप से परिपूर्ण था। प्रारम्भ में प्रदीप ने स्वामी जी का माल्यार्पण परिचय देते हुए उनका पूजन किया और आरती उतारी। उषा ने अरुण एवं श्वेत आठ दल कमल के पुष्पों को श्री स्वामी जी एवं माता शक्तिदा जी को समर्पित किया तथा उनसे निवेदन किया कि योग सम्बन्धी आपकी ज्ञान गरिमा पाश्चात्य वैज्ञानिकों को नई प्रेरणा देगी जिससे विश्व दर्शन में हमारे राष्ट्र का पुण्य गौरव बढ़ेगा।

आगन्तुकों ने भी पुष्पों को समर्पित कर अपना स्वागत प्रदर्शित किया। तदनन्तर प्रदीप के अनुरोध पर श्री स्वामी जी इस प्रकार बोले।

समस्त विश्व के मेधावी सज्जनो एवं देवियो!

भारतीय षट् दर्शनों में योग दर्शन की विशेष प्रधानता है। आदि काल से योग-दर्शन हमारे यहाँ प्राचीन काल से व्यवहृत है। योग वशिष्ठ एवं महर्षि पतञ्जलि का योग दर्शन लिखित रूप में सबसे प्राचीन प्रामाणिक माना गया है। इन्हीं के आधार पर मैं कुछ निवेदन करूंगा।

हठ योग, मन्त्र योग, लय योग और राज योग जैसे अनेक प्रकार के योग साधना के प्रयोगार्थ आचार्यों ने बताये हैं।

हठ योग का अर्थ स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर का योग निर्बाध सक्रिय होना है। स्थूल शरीर के साधनों द्वारा सूक्ष्म शरीर पर अधिकार प्राप्त करने के पश्चात् मन को वशीभूत करके अज्ञात शक्ति के नेत्रपट को खोलना है। हठ योग में कल्पना द्वारा ज्योतिर्ध्यान करने का विधान है।

मन्त्र-योग—

जो साधन नाम और जप के आधार पर किया जाता उसे मन्त्र-योग कहते हैं। मन्त्र योग में स्थूल ध्यान करने का विधान है। जैसे—विष्णु, शिव, देवी, गणेश और सूर्य रूपी पञ्चोपासना के अनेकानेक विधि-विधान, सगुण-ध्यान, अवतारों का ध्यान, गुरु का ध्यान आदि।

लय-योग—

समष्टि रूपी ब्रह्माण्ड और व्यष्टि रूपी स्वशरीर में कोई भेद न समझने को लय-योग कहा है। ब्रह्माण्ड में जिस प्रकार प्रकृति शक्ति और पुरुष शक्ति दोनों

विद्यमान है। उसी प्रकार कुल कुण्डलिनी रूपी प्रकृति शक्ति शुद्ध चिन्मया रूपी पुरुष शक्ति इन दोनो का स्थान अपने शरीर मे कहा कहा है इसका ज्ञान हो जाने पर योग साधन द्वारा कुल कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत कर पुरुष शक्ति मे लय कर दे। लय योग मे विन्दु ध्यान करने का विधान है। यह कल्पना द्वारा नही होता अपितु विशेष योग साधना कुण्डलिनी के जाग्रत होने के पश्चात् ज्योतिर्मय विन्दु का प्रकाश साधन करते करते भ्रू युगल पर स्वतः हो जाता है। इनके साधनो मे समाधि प्राप्त करने की पृथक पृथक व्यवस्था की गई है।

इन तीनों योगो के साधकों को अन्त मे राज योग का साधन करने मे सुगमता होती है। राजयोग मे अन्तकरण की सहायता सर्वोपरि होती है। राज योगी निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करने और निर्विकल्प समाधि का अधिकार प्राप्त करने मे सक्षम होता है।

महर्षि पतञ्जलि के योग दर्शन को राजयोग के नाम से भी पुकारते है। इसका पहला सूत्र 'योगाश्चित्त वृत्ति निरोध' अर्थात् चित्त की वृत्तियो का निरोध ही योग है। इसमें प्राण ही की उपासना और साधना की जाती है। प्राण ही को मूलाधार वृत्ति माना है। योग वशिष्ठ ने प्राण ही में ब्रह्म, भूतात्मा तथा समस्त देव गण को माना है। प्राण ही पापमोचन है। इस प्राण मे पान और अपान वायु के बल से सारी प्रक्रियायें होती है। इसी के द्वारा प्राणी समाधिस्थ होता है। योग सिद्धि होने पर प्रत्याहार, प्राणायाम और समाधि की उपलब्धि होती है जिसके द्वारा प्राणी आरोग्य रहता हुआ सदा युवक बना रहता है। चित्त की वृत्तियो को रोकने का अर्थ मन, बुद्धि और अहंकार को रोकना है। चित्त ही सर्वोपरि सत्व का उद्गम स्थान है। चित्त को प्रकृति का स्वरूप होने से इसमे सत, रज, तम तीनो गुणो का उपक्रमण बना रहता है। सत् के उदय से ज्ञान, रज से ऐश्वर्य और तम के उदय से अधर्म की भावना जन्म लेती है। मानव चित्त की अवस्था प्रथम काल मे ऐश्वर्य और विषयों की उपलब्धि में रहती है। इसलिये उसे योगिक क्रियाओ द्वारा खीच कर सत् के द्वार पर लाना पड़ता है। जब सात्विक तत्वो पर उसका चित्त केन्द्रित हो जाता है तब उसे धैर्य की लक्षणा बुद्धि प्राप्त होती है। योग का घनिष्ठ सम्बन्ध स्वर और तत्त्व से है। स्वर साधन द्वारा तत्व की परीक्षा कर यदि योग की साधना की जाती है तो मानव निर्विघ्न एवं अबाध्य गति से साधन करता हुआ कैवल्य प्राप्त कर लेता है।

योग शब्द की व्युत्पत्ति व्याकरण के नियम से युज धातु से होती है। युज समाधौ' इसका अर्थ सिद्ध होता है। चित्त वृत्तियों के निरोध अर्थात् एकाग्र चित्त को ही 'समाधि' कहते हैं। समाधि का ही नाम योग है। जिस प्रकार आतशी शीशा है जो कि सूर्य की समस्त किरणों के केन्द्रीय करण की शक्ति प्राप्त करती है। इस योग के द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध होने के साथ ही, आध्यात्मिक, शारीरिक व्याधि, बुढ़ापा, मृत्यु आदि समस्त रोगों की निवृत्ति, परम सिद्धियों की उपलब्धि तथा मोक्ष की भी प्राप्ति होती है। ऐहिक सुखों का अनुभव इस योग से ही प्राप्त हो सकता है। योग के दो भेद माने गये हैं। सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात। सम्प्रज्ञात को सबीज समाधि और असम्प्रज्ञात को निर्बीज समाधि कहते हैं। सम्प्रज्ञात समाधि में क्लेश सहित कर्म, आशय, जाति, आयु और भोग का बोध होता है परन्तु असम्प्रज्ञात समाधि में नहीं। क्लेश पांच प्रकार का होता है। १, अविद्या, २, अस्मिता, ३, राग, ४, द्वेष और पांचवा अभिनिवेश। अनित्य में नित्य बुद्धि की भावना ही अविद्या है, जैसे-सूर्य, चन्द्र, तारे, पृथ्वी आदि। अपवित्र को पवित्र मानना भी अविद्या है। इसी प्रकार अन्यत्र। अस्मिता अर्थात् जीवात्मा और बुद्धि इन दोनों को एक ही मानना अस्मिता क्लेश है। सुखीजनों में सुख का साधन ही राग क्लेश है। दुःख देने वाले का दुःख और उसके साधन में जो क्रोध है उसी को द्वेष नाम का क्लेश कहते हैं। प्रत्येक मानव को मृत्यु का भय सदा रहता ही है इसी स्थिति का नाम अभिनिवेश क्लेश है।

सम्प्रज्ञात समाधि को चार रूपों में बांटा गया है। वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत, और अस्मितानुगत। इसमें भी ग्राह्यग्राहक पर विचार किया गया है जो कि दो प्रकार का माना जाता है। एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म।

असम्प्रज्ञात समाधि को दो भागों में किया है। प्रथम भव-प्रत्यय और दूसरा उपाय प्रत्यय। चित्त की वृत्तियों का सर्वांश निरोध ही असम्प्रज्ञात समाधि की कोटि में आता है। चित्त और आत्मा का सूक्ष्मातिसूक्ष्म सम्बन्ध है। अतः इन्हीं दोनों समाधिष्ठानों में प्राणी तादात्म्य भाव का लीन हो जाता है। परन्तु इन समाधियों की उपलब्धि तभी सम्भव है जब कि हम स्थितप्रज्ञ हो जाय। स्थित-प्रज्ञ का अर्थ शरीर, मन और इन्द्रियों की शुद्धि हेतु आठ प्रकार के साधन। जैसे-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। यह आठ साधन करना।

यम का अर्थ संयम से है। संयम को भी पांच प्रकार से बांटा गया है।

"अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्या परिग्रहा यम:"

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। समस्त प्राणियों की भावनाओ तक को न मारना अहिंसा है। मन, वचन और कर्म से शुद्ध होना ही सत्य है। पर द्रव्य हरण न करना अस्तेय कहलाता है। कामादि के उभय विकारो पर नियन्त्रण करना ब्रह्मचर्य कहाता है और विषय वासनाओ के गुण दोषो को अस्वीकार करना अप्रतिग्रह कहा जाता है। यही पाच विभाग संयम के किये गये है।

नियम भी पांच प्रकार के होते है।

"शौच संतोष तपस्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमा:"

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान। इन दोनो यम, नियमो का पालन करने से प्राणी परम गति को प्राप्त करता है। यह योग साधना, ऐहिक और पारलौकिक दोनो प्राणियो के विचारो मे तथा उनमे उलझे हुये धार्मिक, सामाजिक ऐसे समस्त विकारों से परे होकर प्राणिमात्र के कल्याण का सूचक है।

योग को चार भागो मे विभाजित किया है। प्रथम कल्पिक, दूसरा मधुभूमिक, तीसरा प्रज्ञाज्योति और चौथा अतिक्रान्त भावनीय।

अष्टांग योग से युक्त होने के पश्चात् योग मार्ग पर प्रविष्ट को 'प्रथम कल्पिक योगी' कहते है। मधुभूमिक योग में प्राणी की परीक्षा अवस्था होती है। इसमे दैवी शक्तियो तथा अपराधो से पराभव होने की सम्भावना बनी रहती है। प्रज्ञा ज्योति अवस्था पञ्च भूतो और इन्द्रियो के केन्द्रीभूत होने को कहते हैं। प्रज्ञा ज्योति योगी इन पर विजय पा लेता है। प्रज्ञा ज्योति मे प्राणी का शरीर वज्र के समान हो जाता है उसे सारी सिद्धिया प्राप्त होती है। इसके पश्चात् 'अतिक्रान्त भावनीय' योगी की अवस्था के सम्बन्ध मे योग दर्शन ने बताया है कि समस्त भूतेन्द्रिय का अतिक्रमण कर वह योगी त्रिगुण मयी सत्ता पर विजय पाकर सर्वोत्कृष्ट परम 'निर्वाण' की अवस्था मे चला जाता है।

डाक्टर राबर्टसन ने पूछा—प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधिष्ठान इन पाँचो के सम्बन्ध मे कुछ प्रकाश डालने की कृपा करें, महात्मन्।

स्वामी जी बोले। मुझे हर्ष है कि आज का पाश्चात्य वैज्ञानिक भारतीय योग दर्शन को जानने की जिज्ञासा रखता है। इतना कहकर स्वामी जी ने व्याख्या आरम्भ की।

प्राणायाम—

महर्षि पतञ्जलि ने लिखा है कि—

"तस्मिन्सति श्वास प्रश्वासयोर्गति विच्छेदः प्राणायामः" [illegible] आसन में स्थिर चित्त होकर श्वास और प्रश्वासों की गति [illegible] प्राणायाम है। जो वायु बाहर से भीतर की ओर [illegible] श्वास [illegible] बाहर [illegible] जाती है उसे प्रश्वास कहते हैं। दोनों की गति का [illegible] ही प्राणायाम है।

बाहर की वायु को अन्दर लाने को पूरक और अन्दर [illegible] वायु को बाहर छोड़ने को रेचक कहते हैं। वायु को अन्दर [illegible] कुम्भक कहते हैं। यह क्रियायें नासिका के दोनों छिद्रों से की जाती हैं। वायु [illegible] स्थान पिण्ड में करना यह चौथा प्राणायाम [illegible] है। [illegible] वायु [illegible] बाहर निकाले और बीच २ रोकता जाय, अर्थात् बाहर और भीतर की वायु गति को क्रम और यत्न से रोक कर स्तम्भन करे। इस प्रकार प्राणायाम से [illegible] अज्ञान का जाल तिरोहित हो जाता है और प्राणी का मन [illegible] हो जाता है।

प्रत्याहार—

"स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः" अर्थात् विषयों से अपने चित्त के निवृत्त होने पर चित्त के स्वरूपानुकार [illegible] प्रत्याहार है। राग, द्वेष, मोह होने योग्य शब्द आदि विषयों में [illegible] चित्त की वृत्ति रहती है, साधन विशेष से इन शब्द आदि विषयों से [illegible] निवृत्त होने व एक लक्षित पदार्थ में स्थिर होने से, उसी चित्त स्वरूप के [illegible] इन्द्रियों का भी विषयों से निवृत्त होकर एकाग्ररूप में केन्द्रित होना, प्रत्याहार कहलाता है।

प्रत्याहार साधना की सफलता के विषय में योग सूत्र है कि—

"ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्" अर्थात् प्राणी की समस्त इन्द्रियां उसके वशीभूत हो जाती है। वह जितेन्द्रिय होकर जहाँ अपने चित्त को लगाना चाहे वहाँ लगा लेता है और जिससे चित्त को निवृत्त किया चाहे उससे निवृत्त कर सकता है।

धारणा—

"देश बंधश्चित्तस्य धारणा" चित्त को किसी देश में बांधना धारणा है। नाभि चक्र, हृदय-कमल, मस्तक नासिका या जिह्वा के अग्रभाग में चित्त की चंचलता रोक कर स्थिर करना ही धारणा है। देश का अर्थ यहाँ अन्तर्देश से है, शरीर के किसी अवयव या बाह्य जगत के विषय में चित्त की वृत्ति से बांधना जिससे वह एकाग्र हो अपने अन्तर्देश में रहे अन्यत्र न भटके, इसी को धारणा कहते हैं।

ध्यान–

"तत्र प्रत्ययैक तानता ध्यानम्" अर्थात् धारणा में प्रत्यय का अर्थ (बुद्धि वा चित्त) की एकाग्रता अथवा ध्येय पदार्थ मात्र में ही चित्त का मग्न रहना और अन्य विषय में न जाना ही ध्यान कहलाता है।

समाधिष्ठान–

"तदेवार्थ मात्र निर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधि" अर्थात् स्वरूप शून्य होने के तुल्य ध्यान ही का अर्थ मात्र (ध्येयाकार) भासित होना समाधिष्ठान कहलाता है। ध्यान और समाधिष्ठान में केवल इतना ही भेद होता है कि ध्यान में ध्यान करने वाले को अपना अथवा जिसका वह ध्यान करता है और ध्यान करने का इन तीनों का ज्ञान रहता है पर समाधिष्ठान में चित्त की वृत्ति उन तीनों भेदों से रहित होती है। उसमें चित्त का स्वरूप एकमात्र अपने ध्येय की ओर केन्द्रित होना है।

प्रख्यात वैज्ञानिक सर विलियम सैम्पसन ने पूछा। सुना जाता है कि भारतीय योग दर्शन में ऐसे आसनों का वर्णन है। जिनके द्वारा मानव चिकित्सा विज्ञान को पराजित करने में सक्षम है। अर्थात् भयङ्कर एवं असाध्य रोगों से आक्रान्त प्राणी रोग मुक्त होते देखे गये हैं।

स्वामी जी ने कहा। प्राचीन काल में योग का अभ्यास करने वाले अपने योग बल से आयु पर विजय पा लेते थे और आज दिन भी कुछ ऐसे योगिक क्रियायें करने वाले हैं जिनके चमत्कार से पाश्चात्य वैज्ञानिक आश्चर्य चकित हो जाते हैं।

सैम्पसन ने आग्रह पूर्वक कहा। मुझे कुछ ऐसे ही आसनों को बताने की कृपा करें। यह भी बतायें कि अमुक आसन द्वारा अमुक रोग की निवृत्ति होती है।

स्वामी जी ने कुछ विशेष आसनों का उल्लेख करते हुये कहा।

शास्त्र में वस्तुतः चौरासी आसनों का वर्णन किया है पर मानव मात्र के कल्याणार्थ मुख्य प्रचलित आसन तीस हैं जो आपकी जिज्ञासा पूर्ति करेंगे।

पश्चिमतान आसन–इनके तीन रूप हैं।

(क) दोनों पैरों को भूमि पर सीधा फैलाकर मिलाते हुये बैठें। फिर दोनों पैरों के अंगूठों को अपने दोनों हाथों की उंगली और अंगूठे से इस प्रकार पकड़ें कि घुटने का नीचा भाग भूमि से ऊपर न उठे, उसी क्षण सिर घुटने पर धरें।

(ख) दूसरे रूप में सीधे खड़े होने के पश्चात् दोनों हाथों की अंगुलियों से पैरो के अंगूठों को पकड़ कर सिर को घुटनों पर रखें।

(ग) तीसरे रूप में उल्टे लेटे हुये पैरों को फैलाकर सीधे मिलावें और दोनों हाथों की उंगुलियों से पैरो के दोनों अंगूठों को पकड़ें।

इसके अभ्यास से जठराग्नि की वृद्धि, उदर का पश्चालन और रक्तवाही धमनियां सुनियमित काम करती है।

कूर्मासन—इनके दो रूप है।

(क) पद्मासन से बैठकर अर्थात् बायां पर दाहिनी जांघ पर और दाहिना पैर बायीं जांघ पर चढ़ाकर धरें और भूमि पर उकडूं बैठ जावें, फिर नाभी से ऊपर वक्षस्थल के भाग को ऊपर ऐसे उठावें कि नीचे का भाग भूमि पर ही रहे। तत्पश्चात् दोनो पैरो से दोनों हाथो को पीठ की ओर से लाकर दोनों जांघो के आगे के भाग को पकड कर कछुए के समान तना रहें।

(ख) दूसरा रूप यह है कि पद्मासन लगाकर दोनों हाथों को दोनों जंघाओं और उरु के बीच मे प्रविष्ट कर उत्तान मुख करते हुये भूमि पर पड़ जावें। फिर दोनों हाथों से सिर को गर्दन के निकट पकड़ लेने से उत्तान कूर्मासन होगा।

इस आसन के सतत तीन घण्टे अभ्यास से श्वास की गति मन्द हो जाती है। वक्षस्थल चौड़ा हो जाता है। उदर के समस्त विकारों का शमन होता है और मानव की आयु कछुये की भांति पांच सौ वर्ष तक हो सकती है।

डाक्टर राबर्टसन ने कहा। आज का पाश्चात्य जगत जब इसे अपने अनुभव की कसौटी पर उतारेगा तभी आदर करेगा। उदर रोग आज कल मिथ्या आहार विहार से अधिकांश फैले हैं। जन गणना के अनुपात से मानव की आयु ५० वर्ष से भी कम रह गई है। यदि ऐसे विलक्षण आसनों द्वारा मानव मृत्यु पर विजय पाले तो विश्व की सभी सरकारें एवं उनके प्राणी इन आसनों की साधना करेंगे।

श्रीमती रोजी अलवा ने कहा। अभी तो केवल दो ही आसनों का उल्लेख हुआ है।

स्वामी जी ने कहा। अब मयूरासन का उल्लेख करता हूं।

दोनों हाथो की हथेलियो को भूमि पर सटाकर कलाई (मणिबन्ध) का भाग और अंगुलियो को पीछे रखे। फिर दोनों कुहुनियों को मिलाकर उसके ऊपर पेट को रखें तथा तराजू की डंडी के समान पैर को लम्बा करके शरीर को सीधा तोल

दें जिससे सिर और पैर भूमि से ऊपर उठे हों अर्थात मोर के सदृश जब शरीर का आकार हो जाय।

उदर सम्बन्धी तिल्ली, जलोदर, गुल्मादि रोग इससे नष्ट होते है। यह आसन विष को भी पचाने में क्षमता रखता है।

कुक्कुटासन—

पद्मासन लगाकर दोनो हाथों को दोनों टांगों की जंघा और ऊरु के मध्य छिद्र में प्रवेश कर हथेलियो और उंगलियो को भूमि पर टिकाये। फिर शरीर को भूमि से ऊपर उठाकर हाथों के ऊपर ही तोल दें। अर्थात् कुक्कुट के समान कर दे।

इस आसन से भुजाओं में शक्ति और शरीर स्फूर्त होता है। काम शक्ति को घटों तक बढ़ाया जा सकता है।

धनुरासन—इसके चार रूप होते हैं—

(क) दाहिनी टांग को दण्ड के समान सीधा फैलाकर दूसरे पैर को बाये हाथ से बीच में अथवा एडी के स्थान पर पकड़कर बाये कान तक खीचे और दाहिने पैर के अंगूठे को दाहिने हाथ से पकड़ कर खींचे।

(ख) बाईं टाग को फैलाकर शेष प्रथम क्रम के अनुसार करे।

(ग) सिर के ऊपर से दाहिने कन्धों पर टांगो को रखे शेष प्रथम रूप से करे।

(घ) सिर के ऊपर से बायें कन्धे पर टांगो को रखे शेष प्रथम रूप से करें।

इस आसन से कमर के नीचे के समस्त रोग शान्त होते हैं।

धनुरासन का विशिष्ट रूप—

पेट के बल सीधे भूमि पर लेटें और सीने को धीरे २ ऊपर उठायें पीठ की ओर हाथ फैलाकर पीछे से पैरों को उठायें तत्पश्चात् पैर और टांगो के मिलन स्थान पर पकड़कर खींचे और धनुष के समान तन जाये।

मत्स्येन्द्रासन—इसके भी दो रूप हैं।

(क) बायें जांघ के मूल में दाहिने पैर को इस प्रकार रखें जिससे एडी का लगाव पेट से रहे फिर बायें पैर को दाहिने घुटने पर रखें और मुड़कर दाहिने हांथ की उंगलियों से बायें पैर के अंगुष्ठ के अग्रभाग को पकडे और बायें हांथ को भूमि से उठाकर कमर या पीठ पर रखे, फिर गर्दन को बांई ओर पीठ की ओर कर दें।

(ख) उपरोक्त क्रम से बायें पैर को दाहिनी जांघ पर रखने से इस आसन का दूसरा रूप हो जाता है।

असाध्य रोगियों के लिये यह आसन जीवन दान देता है। इसके अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति जाग उठती है।

स्वस्तिकासन--

बायें पैर को दाहिनी जांघ के बीच में और दाहिने को बाईं जांघ में मिलाकर रीढ़ की हड्डी को सीधे तानें। ठोड़ी को चार अंगुल ऊपर छाती से लगाकर नासिका के अग्रभाग को देखें। तत्पश्चात् दोनों हाथ मिलाकर गोद में रखें।

यह आसन शरीर पीड़ा और आलस्य दूर कर स्फूर्ति लाता है।

पद्मासन—इसके तीन रूप हैं—

(क) बायें पैर को दाहिने जांघ पर और दाहिने को बाँये जांघ पर रखकर ठोड़ी को दृढ़ता से वक्षस्थल (सीने) में लगायें। हाथों को एक दूसरे पर रखकर गोद में रख ले फिर नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमायें। ओम् शब्द का मानसिक ध्यान करते हुये पूरक, कुंभक और रेचक का अभ्यास करें।

(ख) पद्मासन पर बैठकर भुजाओं को पीठ की ओर ले जाकर दाहिने हाथ से दाहिने पैर के अंगुष्ठ को और बायें हाथ से बायें पैर के अंगुष्ठ को पकड़ें। ठोड़ी को सीने से लगाकर नासिका के अग्रभाग को देखें। इसे बद्ध पद्मासन भी कहते हैं।

(ग) साधारण पद्मासन लगाकर दोनों हाथों की हथेलियों और मणिबन्ध के भाग को आगे और उंगलियों को पीछे की ओर करने के पश्चात् पैरों के जानुओं से ठीक सटाकर रखें और ठोडी को सीने में लगाकर नासिका के आगे दृष्टि रखें। परन्तु जिह्वा को तालु के मूल में लगा दें। तत्पश्चात् पूरक, कुंभक और रेचक द्वारा प्राणायाम का अभ्यास करे। इसे ऊर्ध्व पद्मासन कहते हैं।

पद्मासन के यह तीनों रूप परम मोक्षप्रद है।

इस प्रसङ्ग के अन्तर्गत प्रसिद्ध पाश्चात्य दार्शनिक डा० ई० डब्लू [illegible] आ गये! योगदर्शन की मुद्राओं और आसनों का विषय सुनकर बड़े प्रभावित हुये। आपने कहा। भारतीय योगदर्शन में "सिद्धासन" पर योगियों ने विशेष महत्व दिया है। इस वैज्ञानिक युग में जब कि मानव तामसी वृत्तियों का शिकार अधिक हो रहा है 'सिद्धासन' अपना विमल योग दान देगा। क्योंकि इसके द्वारा समस्त गुप्तेन्द्रिय जन्य रोग नष्ट होते सुने जाते हैं। यहाँ तक सुना गया है कि इस आसन के द्वारा बहुतर

हजार नाड़ियों का मल धुल कर शुद्ध हो जाता है। बहु मूत्र, मधुमेह, प्रमेह, वीर्य सम्बन्धी ऐसे समस्त रोग आमूल नष्ट हो जाते हैं और मानव जितेन्द्रिय हो जाता है।

स्वामी जी ने कहा ! श्रीमान जी के शुभागमन से बड़ी प्रसन्नता हुई। वस्तुत: यह यथार्थ है कि सिद्धासन आज के युग में आवश्यक है। स्त्री-पुरुष दोनों को लाभ-प्रद है। कुछ योगीजन इसे वज्रासन, मुक्तासन और गुप्तासन के नाम से भी पुकारते हैं। वज्रौली क्रिया इससे सिद्ध होती है।

सिद्धासन—इसके दो रूप हैं—

(क) बायें पैर की एड़ी को दृढ़ता से पायु और उपस्थ के मध्य योनि स्थल में लगाकर दाहिने पैर को उपस्थ या योनि के ऊपर रखे और सीधे स्थित होकर ठोडी को सीने पर जमावे। तत्पश्चात भ्रूमध्य की ओर देखें। दोनों हाथों से ज्ञान मुद्रा कर घुटने पर धरे।

(ख) उपस्थ या योनि के ऊपर बायें पैर के गांठ को रखे। उसके ऊपर दाहिने पैर के गांठ को रखे और सीधे देखें।

आसनों के अभ्यासार्थ स्त्री-पुरुष का कोई भेद नहीं माना गया है। केवल रजस्वला और गर्भावस्था में ही स्त्रियों के लिये आसनों का वर्जन किया गया है।

पश्चिमतान आसन से स्त्री के प्रदर रोग, सोमरोग, गर्भस्राव ऐसे भयङ्कर रोग आमूल नष्ट हो जाते है। अत: आसनों की साधना स्त्री-पुरुष के भेद-भाव को जन्म नहीं देती।

सिंहासन—

दोनों पैरो के गाठो को अण्डकोषो के नीचे सीवनी नाडी के दोनों किनारो पर ऐसे रखे कि दाहिने किनारे में बायां गुल्फ और बाये में दाहिना गुल्फ रहे। तत्पश्चात् घुटनों के ऊपर दोनो हाथों की हथेलियाँ को देखे और उंगुलियो को फैलाकर मुख को फाड़ते हुये जीभ को चलाते जाये तथा क्रूर दृष्टि से नासिका के अग्रभाग को देखें।

भद्रासन—

सिंहासन के समान अण्डकोष के नीचे दायें-बाये गुल्फों को लगाकर दोनों हाथो से दोनों पैरो को दृढ़ता से पकड़ लें। उंगलियां परस्पर मिली हो और हृदय पर हथेली धरी हो।

इस आसन से सभी प्रकार की व्याधियाँ दूर होती हैं। कुछ योगी इस को गोरक्षासन के नाम से संबोधित करते हैं।

शीर्षासन—इसके तीन रूप हैं—

(क) सिर को भूमि पर धरे और दोनों हाथों से सिर को संभालकर रखें। फिर दोनों पैरों को सीधे आकाश की ओर उठा कर स्थिर कर दें। दाहिने पैर को ऊपर खड़ा करें और बायें को सिकोड़ लें।

(ख) बायें को उठाकर दाहिने पैर को सिकोड़ लें।

(ग) दोनों पैरों को सीधा आकाश की ओर उठाकर स्थिर कर दें और फिर पद्मासन के सदृश पैरों को कर दें। इसे कुछ योगीजन "ऊर्ध्व पद्मासन" कहते हैं।

शीर्षासन करने वालों को शुद्ध ताजा दूध, बादाम, मुनक्का, घी कुछ अधिक सेवन करना चाहिये।

अभ्यास के लिये भूमि पर स्वच्छ मोटा गद्दा सिर के नीचे रख लें।

इस आसन का सतत चार घण्टे अभ्यास करने पर मानव आयु को दीर्घ कर लेता है। बुढ़ापा नहीं आता और शरीर के समस्त रोग नष्ट होते हैं।

भुजङ्गासन—

भूमि पर उलटे लेट जायें। दोनों हाथों की हथेलियों को भूमि पर रखें, फिर सिर और सीने को ऊपर उठायें पर नाभी से नीचे का भाग भूमि पर सटा रहे और ऊपर का भाग भूमि से स्पर्श भी न करने पावे।

इस आसन के सतत तीन घण्टे अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति जाग उठती है और मानव की जठराग्नि उत्तरोत्तर बढ़ने लगती है।

शलभासन—

भूमि पर उलटे लेट जायें। दोनों हथेलियों को सीने के पास भूमि से मिला दें; फिर सिर और सीने को ऊपर उठायें और दोनों पैरों को पीछे से दस अंगुल ऊपर उठा दें।

इस आसन से उदर सम्बन्धी समस्त रोग नष्ट होते हैं।

चक्रासन—

साधारण पद्मासन लगाकर पीठ के बल भूमि पर पड़ जायें और दोनों हाथों से घुटनों के निकट का भाग लपेट दें और सिर को भूमि से ऊंचा उठा दें।

इस आसन से अर्श (बवासीर) रोग नष्ट हो जाता है। जल पर तैरने की क्षमता यह आसन बढ़ाता है।

गरुड़ासन—

दाहिने पैर को बायें जांघ के मूल में लगाकर खड़े हो और दाहिनी टांग को झुकाकर घुटने को बाईं जंघा में लगा दे। बाईं टांग भी कुछ झुक जाये। फिर हाथों को लपेट कर सिर के ऊपर उठा दे। किन्ही योगियों ने दाईं टांग को बाईं पर लपेट कर शेष पूर्व वत आसन की साधना बताई है।

यह आसन वात रोग के लिये राम बाण है। सभी प्रकार की वात व्याधियां इस आसन से नष्ट हो जाती है।

पर्यङ्कासन —इसके तीन रूप हैं—

(क) गर्दन पर हाथ से दोनों पैरों को रखकर पीठ की ओर भूमि पर लुढ़क जाय फिर दोनों हाथों को नितम्बों के ऊपर ले जाय और कस कर बांध दे।

(ख) गर्दन पर दाहिने पैर को रखें और बायें पैर को फैला दे तत्पश्यात दोनो हाथों से अलग अलग दोनों पैरों को पकड़ ले।

(ग) गर्दन पर बायें पर को रखे और दाहिने पैर को फैला दें फिर दोनो हाथो से अलग २ दोनो पैरों को पकड़ लें।

इस आसन से भगन्दर, जलोदर ऐसे भयङ्कर रोग नष्ट हो जाते है।

उष्ट्रासन—

दोनों घुटने और पंजों को परस्पर मिलाकर भूमि पर रखें और पंजों को पीठ की ओर झुकायें तत्पश्चात दोनों हाथों से दोनो मिली हुई एडियो को पकड़े और सिर को झुकायें।

सीने (वक्ष) के समस्त विकार इस आसन से दूर होते हैं। जागरण शक्ति बढ़ती है। कोसों पैदल यात्रा करने पर भी थकान का अनुभव नही होता।

बकासन—

दोनों हाथों की हथेलियों को मयूर आसन के समान भूमि पर रख दें और पद्मासन लगाकर बैठ जायें; फिर पेट में दोनों मिली हुई कुहनियों पर रख दें और पैरों के भाग को तुला के समान ऊपर को उठादें

कर्णपीड़ासन—

पीठ और सिर को भूमि पर रखे। और पैरों को उठाते हुए सिर के ऊपर से भूमि पर इस प्रकार ले जावे कि कन्धे, गर्दन, सिर, और पांव भूमि पर लगे रहें। साथ में दोनों घुटने भी कानों से लगे रहें।

इस आसन से खांस, खांसी, श्वास, गुल्म, ज्वर रोग दूर हो जाते हैं।

आमासन—इसके दो भाग हैं।

(क) दोनों पैरों और नितम्बों से भूमि पर स्थिर होकर दाहिने पैर के तलुओं को दाहिनी कोख में लगावे। फिर दाहिने ओर और कुहनी को भूमि के बराबर रखे। दाहिनी हथेली को कनपटी पर, बाईं हथेली को बायें घुटने पर रखे।

(ख) बायें पैर के तलुए को बाईं कोख में लगावे फिर शेष क्रिया बायें पैर से करे तो भी यह आमासन होता है।

योगी लोगों के शमनार्थ यह आसन अत्यन्त सुखकर है।

गर्भासन—

साधारण पद्मासन लगा कर दोनों जांघों के छिद्र में दोनों हाथों को डालें। पश्चात् गर्दन को दोनों से बांधकर पीछे उलट जावें और सिर को कन्धे पर टिका जाय।

तीन घंटे प्रतिदिन प्रातः ४० दिन तक इस आसन का अभ्यास करने से साधक की सुषुम्ना नाड़ी जाग्रत हो जाती है और केवल दुग्धाहार से यह पुरुषार्थ को प्राप्त करता है।

पादागुष्ठासन—

दोनों पैरों से सीधे खड़े हो जाये। दाहिने पैर को ऊरू-मूल की सीध में सामने ऊंचा फैलाले। तत्पश्चात दाहिने हाथ की उंगलियों से दाहिने पैर के अंगूठे को पकड़े और बांये हाथ को बायीं कमर पर धरे, पर दाहिने पैर के अंगूठे की ओर एकटक देखे तो यह आसन सिद्ध होता है।

दो घंटे प्रतिदिन दो वर्ष तक सतत इस आसन का अभ्यास करने से वीर्य शक्ति प्रबल हो जाती है। और वीर्य का स्तम्भन भी हो जाता है।

भगासन—

दोनों पैरों के तलुओं को परस्पर मिलावें, घुटनों, ऊरुओं और जांघों को भूमि पर जमा कर रखें। फिर पैरों की एड़ियों को पकड़कर उपस्थ या योनि पर रखें

और पंजे को भूमि में रख कर पैर, जांघ और ऊरुओं को उलट कर भूमि में सटा दें तत्पश्चात उपस्थ या योनि के भाग को पैरों के बीच मे रखें और पीछे से दोनो हाथो को लाकर पैरो के पंजों को पकड़ ले।

इस आसन के सतत अभ्यास से मानव उपस्थेन्द्रिय पर विजय पा लेता है कुण्डलिनी की सुषुप्ति समाप्त हो जाती है, शरीर पुष्ट हो जाता है और वीर्य पूर्ण रूप से स्थिर अवस्था मे पहुच जाता है।

गोमुखासन--

एक टांग को दूसरी टांग पर इस प्रकार धरे कि एक का घुटना दूसरे घुटने पर रहे। दाहिना पैर बायें नितम्ब के नीचे तथा बायां पैर दाहिने नितम्ब के नीचे रहे; फिर बायें हाथ को कांख के नीचे ले जायें और दाहिने कन्धे के ऊपर से लेता हुआ दोनो तर्जनी उंगलियो को मिलाकर अलग-अलग मुट्ठियां बाध ले तत्पश्चात ठोडी को वक्ष (छाती) से दृढ़ता पूर्वक लगाले।

इस आसन के निरन्तर अभ्यास से शरीर मे बुढापे की झुरियां नही पडती। सीना चौड़ा हो जाता है। विशेष कर कण्ठ के समस्त रोग नष्ट हो जाते है।

मण्डूकासन--

साधक पद्मासन लगा कर भूमि पर बैठें। सीने को आगे की ओर झुकाते हुये भूमि पर लगाये और सिर को ऊंचा उठाये रहें। पुन. दोनों हाथों और घुटनो को समेट कर पीछे ले जायें।

इस आसन से शीत सहन करने की क्षमता बढ़ती है। सीने के समस्त रोग क्षय आदि नष्ट हो जाते हैं और वाणी शक्ति प्रबल हो जाती है।

हनुमदासन--

दोनों हथेलियो को आगे रखे और बायें पैर को पीछे ले जाकर ऐसा फैलाये कि पंजा भूमि से सटा रहे। नितम्ब से लगे हुये दाहिने पैर का पंजा भूमि पर और घुटना दाहिनी कोंख के बीच मे रहे तथा आकाश की ओर एक टक देखता रहे।

यह आसन जठराग्नि बढाता है। क्षय रोग पर यह राम बाण है और कुण्डलिनी शक्ति की भी जाग्रति होती है।

मृतासन---

दोनों हाथों को टांगों से मिलाते हुये भूमि पर सीधा उतान लेट जायें और

शरीर को तीर के समान तान दें जिससे कोई अङ्ग भूमि से न लगे और सारा अङ्ग ऊपर उठ जाय।

इस आसन से शरीर की सारी थकान दूर हो जाती है। योगाभ्यासी थकान दूर करने को अन्त में इसी आसन को करते हैं।

गुप्तासन—

दोनों पैरों को जांघो के बीच में छिपा लें और फिर उन्हीं पैरों पर पायु (गुदा) को रख लें। यही गुप्तासन है।

मल-मूत्र विकार को यह आसन दूर करता है। शरीर में स्फूर्ति देता है और उदर कष्ट निवारक है।

तीसवा उत्कटासन—

दोनों पैरों के अंगूठों के सहारे भूमि पर बैठें। नितम्बों को एड़ियों पर और हथेलियों को घुटनों पर रखें।

इस आसन से नाड़ियों के कोषों में अपार शक्ति प्रकट हो जाती है।

रूस के प्रख्यात वैज्ञानिक डा० आर० एम० इवानोव ने पूछा। इन लोक कल्याण मूलक आसनों से धर्म का क्या सम्बन्ध है, स्वामी जी?

स्वामी जी ने कहा। धर्म किसी जाति या सम्प्रदाय विशेष की धरोहर नहीं है। धर्म प्राणि मात्र का है। भारतीय धर्म ने "वसुधैव कुटुम्बकम्" का सिद्धान्त अपनाया है। हमारे ऋषि-मुनियों ने विश्व कल्याण के लिये धर्म की व्याख्या किया है। अतः सम्पूर्ण योग दर्शन भारत के धर्म स्वरूप को अलंकृत करता है।

दूसरे वैज्ञानिक डा० यू० एन० गागरिन ने कहा। धर्म की ऐसी व्यापकता से निःसन्देह भारत अपने धर्म का यथार्थ दिग्दर्शन करा कर विश्व धर्म प्रतिस्थापित करने मे सक्षम होगा।

प्रदीप ने कृतज्ञता प्रकट करते हुये कहा कि आज मुझे इस बात का हर्ष है कि पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने भारतीय धर्म के स्वरूप को परखा और विज्ञान के अन्तर्गत मे धर्म को आश्रय मिला। इसी भावना से यदि उपस्थित वैज्ञानिक आज के वैज्ञानिक-युग मे अपने २ क्षेत्रों मे भारतीय धर्म के स्वरूप को बनायें तो निश्चय ही समस्त विश्व में चेतना जाग्रत हो और एक दिन संसार धर्म-मय हो जाय।

मुख्य वैज्ञानिक डा० जेड० ए० हारवर्ट ने कहा। वस्तुत. आज ही हमें भारत के धर्म की व्यापक झाँकी देखने और समझने को मिली। ऐसे धर्म को अपनाने में भला किस मानव को संकोच होगा। हम सभी अपने अपने क्षेत्रों में जाकर जात, मत, पन्थ, सम्प्रदाय, रङ्ग भेद ऐसे दल गत रहित धर्म की निर्मलता का व्यापक प्रचार करेंगे।

प्रदीप ने कहा। भारत और उसकी आत्मा सदा आप लोगो की इस कृतज्ञता के लिये ऋणी रहेगी।

ग्रीक के महान दार्शनिक डा० एच० एम० थामसन ने कहा। भारतीय योग-दर्शन मे कुछ महत्वपूर्ण मुद्रासनो का भी उल्लेख है। यदि स्वामी जी उन पर कुछ प्रकाश डाल सकें तो बडी कृपा हो।

स्वामी जी ने कहा। दार्शनिक की जिज्ञासा का मै आदर करता हूँ। वस्तुतः योग मुद्राओं के बारह भेद मुख्य रूप से शास्त्र में वर्णित है।

मूलबन्ध मुद्रा—

पायु और उपस्थ या योनि के मध्य स्थल में पैर की एडी को जमाकर दबाये तत्पश्चात् अपान वायु को शक्ति से ऊपर कई बार खींचे जिससे वायु सुषुम्ना के ऊर्ध्व भाग में प्रविष्ट कर जाय।

इस योग मुद्रा से उदर स्थित दूषित मल निकल जाता है। जठराग्नि बढ़ जाती है और प्राणी सदा तरुण बना रहता है।

जालन्धर बन्ध मुद्रा—

ठोडी को हृदय से ऊपर चार अंगुल कण्ठ के मध्य गुह्य स्थान में दृढ़तापूर्वक जमा दें।

इससे कण्ठ के समस्त रोग दूर होते हैं। वायु विकार, श्वास, खांसी यक्ष्मा के लिये यह राम बाण के समान है।

उड्यान बन्ध मुद्रा—

पद्मासन या सिद्धासन लगाकर बैठें। मेरु दण्ड को सीधा रखें। पेट को मेरु दण्ड से सटायें अर्थात् पेट को पीछे की ओर ताने।

इस मुद्रासन से समस्त इन्द्रिय जन्य विकार नष्ट होते हैं।

खेचरी मुद्रा—

मुख के बीच ऊर्ध्व भाग में एक मांस का स्तन सा (छोटी जीभ कहते हैं) लटकता है। जिसके पीछे कपाल की ओर जाता हुआ एक छिद्र होता है। इसी छिद्र के बीच में जिह्वा को उलट कर प्रविष्ट करे और दृष्टि भृकुटि के मध्य स्थिर करे।

साधन विधि—

किसी शोधित परम तीक्ष्ण पैने शस्त्र से जिह्वा के निचले भाग के बंधन डोरे को सूक्ष्माति सूक्ष्म छेदन कर दें। तत्पश्चात सेंधा नमक और हल्दी मिलाकर अत्यन्त बारीक चूर्ण बना लें और उसका लेपन कटी जगह पर करते रहें। जब घाव भर जाय तो पुनः यही क्रिया करें। इस प्रकार छै मास निरन्तर क्रिया करने से बिना विशेष कष्ट के डोरा कट जाता है तब सम्पूर्ण जिह्वा स्वतन्त्र रूप से अपने ऊर्ध्व छिद्र में चली जाती है। प्रथम बार जिह्वा के डोरे का छेदन करने के पश्चात् अंगुष्ठ और तर्जनी से जीभ को पकड़ कर कई बार हिलावें। इस क्रिया को चालन कहते है। इसके पश्चात जितनी बार डोरे की नाड़ी का छेदन करे अंगुष्ठ और तर्जनी से जीभ को पकड़ कर जिस प्रकार गाय को दुहते हैं वैसे ही जीभ को दुहता भी रहे, इसे दोहन कहते हैं। इस प्रकार छेदन, चालन, दोहन का निरन्तर अभ्यास करते रहने से जिह्वा साधन-युक्त हो जाती है। गरम पदार्थ तेल-नोन, मिर्च, खटाई, लवण ऐसे तीक्ष्ण पदार्थों का सेवन इस मुद्रा में सर्वथा वर्जित किया गया है।

जो मानव निरन्तर एक घण्टे तक तालु के ऊर्ध्व कपाल छिद्र में जिह्वा को स्थिर कर दे तो उस पर सर्प विष का प्रभाव नहीं होगा। वात पित्त, कफ इन त्रिदोषो से रहित हो जाता है। क्षुधा, तृष्णा, निद्रा और आलस्य नहीं व्याधित करते। पुंसत्व शक्ति स्थिर रहती है और मृत्यु पर विजय पा लेता है।

वज्रोली मुद्रा—

चौदह अंगुल छिद्र युक्त लम्बी शीशे के धातु की बनी हुई शलाका को अपने उपस्थ [योनि] में डालें। शलाका इतनी पतली हो जो उपस्थ [योनि] में सरलता से प्रवेश कर जाये। प्रथम दिवस एक अंगुल, दूसरे दिन दो अंगुल, और तीन अंगुल तीसरे दिन प्रवेश करें। बारह अंगुल उपस्थ [योनि] छिद्र में शलाका के प्रवेश करने पर मार्ग शुद्ध हो जाता है। फिर चौदह अंगुल की शलाका बनाये जो ऊर्ध्व मुखी और दो अंगुल ऊपर टेढ़ी हो। उसे भी बारह अंगुल तक उपस्थ [योनि]

के छिद्र में उसी प्रकार प्रवेश करने का अभ्यास करे । शलाका के ऊर्ध्वमुखी और टेढ़े भाग को उपस्थ [योनि] में प्रवेश करे । जैसे—स्वर्णकार धौंकनी से धौंकता है उसी प्रकार नाल के अग्रभाग को उपस्थ [योनि] मे प्रवेश करें । फिर बारह अंगुल की शलाका का टेढ़ा और दो अंगुल ऊर्ध्व मुख वाले के मध्य मे डाल कर फूंके । इस क्रिया के द्वारा उपस्थ [योनि] मार्ग पूर्ण स्वच्छ हो जाता है । उपस्थ [योनि] द्वारा प्रथम जल को खींचने का अभ्यास करें, फिर गोदुग्ध को खींचे । जब दोनो अभ्यास सिद्ध हो जायें तब वीर्य का ऊर्ध्व आकर्षण हो जाता है ।

प्राण वायु पर विजय पाने के पश्चात ही वज्रोली मुद्रा सिद्ध होती है । स्त्री और पुरुष दोनों ही इस मुद्रा के करने के अधिकारी है ।

इस मुद्रासन की सिद्धि होने के पश्चात् प्राणी अणिमा ऐसी सिद्धियाँ कर लेता है । इस मुद्रासन में ब्रह्मचर्य पालन आवश्यक नही । इस मुद्रा की सफल साधना के लिये शुद्ध गो दुग्ध और वशवर्त्तिनी स्त्री इच्छानुसार होना आवश्यक है । जिससे स्त्री या पुरुष रसमय होकर वीर्य या रज को आकुञ्चन कर ऊपर खीचने मे सफल हो । इस मुद्रासन से मानव वीर्य की रक्षा करता हुआ मृत्यु और जरा पर विजयी होता है ।

सहजौली मुद्रा—

वज्रोली मुद्रा का रूपान्तर ही सहजौली मुद्रा है । इसी को अमरौली मुद्रा भी कहते हैं । वज्रोली साधन क्रिया करने के पश्चात स्त्री पुरुष रति व्यापार से मुक्त होकर रति तत्त्व को जल तत्त्व में मिश्रित कर अपार उल्लास और उत्साह से दोनो अपने अङ्गों पर लेपन करे । इसी को सहजौली कहा है ।

तत्त्वदर्शियो के लिये ही इन मुद्राओ की साधना उचित है ।

विपरीत करणी मुद्रा—

सिर, भुजा, दोनों स्कन्ध और पीठ से भूमि को स्पर्श करे और ऊपर को पैर कर नीचे की ओर स्थिर रहे ।

एक घंटा प्रति दिन अभ्यास करते रहने से बाल का झरना और शरीर मे झुर्रियों का पड़ना दूर हो जाता है । श्वेत बाल काले हो जाते हैं । तीन घंटे तक निरन्तर प्रतिदिन अभ्यास हो जाने पर काल पर भी विजय पा सकता है ।

शक्ति चालन मुद्रा—

वज्रासन लगाकर गुल्फों के ऊपर दोनों पैरों को पृथक पृथक हाथों से पकड़ ले । कन्द के स्थान को पैरों से दृढ़तापूर्वक दबावें और भस्त्रा प्राणायाम करें । इसी बीच उड्यान बन्ध से नाभी को भीतर खींचते जायें ।

इस मुद्रासन के निरन्तर अभ्यास से कुण्डलिनी चलायमान हो जाती है और मानव जितेन्द्रिय हो जाता है ।

महाबन्ध मुद्रा—

उपस्थ (योनि) में बायें पैर की एड़ी को दृढ़ता से लगावें, फिर दाहिने पैर को बाईं जाँघ पर धर कर बैठें । वायु को खींचकर हृदय पर ठोढ़ी को जमावें और मन को सुषुम्ना में लगाये । तत्पश्चात खींची हुई वायु को यथाशक्ति स्थिर कर रेचक प्राणायाम करे ।

इस मुद्रा की भावना से सुषुम्ना नाड़ी को छोड़कर मानव शरीर की बहत्तर हजार नाड़ियों की ऊर्ध्व गति अवरुद्ध हो जाती है । प्राणी समाधिस्थ हो जाता है ।

महावेध मुद्रा—

महाबन्ध मुद्रा लगाने के पश्चात दोनों नासा-पुटों से वायु को खींचें और जालन्धर मुद्रा को साधकर कुम्भक प्राणायाम करें फिर दोनों हाथों की हथेलियों को भूमि पर जमाकर उपस्थ (योनि) स्थान में लगी हुई बायें पैर की एड़ी सहित अपने नितम्ब को थोड़ा ऊपर उठाले फिर भूमि से धीरे २ ताड़ना करें और साथ ही प्राणायाम का रेचक भी करें ।

इसकी सफल साधना से मानव मृत्यु पर विजय पा लेता है ।

महामुद्रा—

उपस्थ (योनि) स्थान को बायें पैर की एड़ी से दबाये । दाहिने पैर को फैला कर एडी को भूमि पर सटायें और सिकुड़ी हुई दोनों हाथों की उंगलियों से फैले हुये पैर के अंगूठे को पकड़ें फिर सिर को उस घुटने पर धरें । जालन्धर मुद्रा लगा कर पूरक और कुम्भक प्राणायाम करें फिर उड्यान बन्ध करने के पश्चात रेचक प्राणायाम करे । इसी प्रकार बायें पैर को फैलाकर दाहिने पैर की एड़ी को योनि में लगाकर महामुद्रा का साधन करें ।

इसके अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति सरल हो जाती है जिससे मानव सम्पूर्ण रोगों पर विजयी हो जाता है । कुष्ट, गुल्म, गुदावर्त, अजीर्णता इस आसन से समूल नष्ट हो जाते हैं और अनेक सिद्धियां भी मिलती हैं ।

डा० थामसन ने कहा। आज के वैज्ञानिक युग मे योग की इन मुद्राओ ने विज्ञान जगत को अनुपम योगदान दिया है मेडिकल साइन्स सदा ऋणी रहेगा। भारतीय धर्म की आधार भित्ति पर ऐसी लोकोपकारी मुद्राये विश्व की महान निधि है।

जर्मनी के एक दार्शनिक डा० आर लियोविलीस ने जिज्ञासा प्रकट करते हुये कहा। आसनो का उल्लेख मानव के कल्याणार्थ आपने उत्तम बताया परन्तु किस बेला मे कौन सी योग साधना अथवा आसन किया जाय इस विषय पर मुख्य रूप से विशेष प्रकाश डालने की कृपा करे। स्वामी जी।

स्वामी जी——यथार्थ है। बिना काल नियन्त्रित योग के आसनो का साधन मानव को विकार युक्त कर देता है। काल-निर्णायक ज्योतिष योग रत्नावली की पाण्डु लिपि मे इस गूढ रहस्य का भण्डार है। वस्तुत योग साधना का सूक्ष्म विचार ऋतु धर्मानुसार काल ही मे नियन्त्रित है। अत. योग के कुछ आसनो का काल--विवेचन प्रस्तुत किया जाता है।

वर्ष के बारह महीनों में सौर मण्डल मासानुमासिक क्रम से अपनी बारह राशियों (मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ, मीन) का परिभ्रमण कर सक्रान्ति-तालिका बनाकर चलता है। यह राशिया छै ऋतुओ को बनाती है। मीन-मेष की सक्रान्तियो में बसन्त, वृष-मिथुन में ग्रीष्म, कर्क-सिंह में वर्षा, कन्या-तुला में शरद, वृश्चिक--धनु मे हेमन्त और मकर--कुम्भ की संक्रान्तियों में शिशिर ऋतु होती है। सभी राशियाँ ग्रह रश्मियों से प्रभावित हैं और विज्ञान की भित्ति पर आधारित है।

सामान्य दृष्टि से अधिकांश योग की साधनाये सूर्योदय से पूर्व करनी चाहिये पर कुछ आसन ऐसे भी है जो सूर्योदय के उपरान्त भी किये जा सकते है। हठयोग मे आसनों का काल निरूपण सुव्यवस्थित रूप से पाया जाता है। यम, नियम, आहार, विहार का पालन करते हुये आसनो का साधन करना चाहिये।

अङ्गरेजी तारीखो की तालिका के अनुसार १५ मार्च से १४ मई तक बसन्त ऋतु, १५ मई से १४ जुलाई तक ग्रीष्म ऋतु, १५ जुलाई से १४ सितम्बर तक वर्षा ऋतु, १५ सितम्बर से १४ नवम्बर तक शरद ऋतु, १५ नवम्बर से १४ जनवरी तक हेमन्त ऋतु और १५ जनवरी से १४ मार्च तक शिशिर-ऋतु प्राय होता है।

वर्षा ऋतु मे योग की साधना का प्रारम्भ अधिक उपयोगी नही होता शेष सभी ऋतुओं मे योग साधना आरम्भ सम्भव है। स्वरोदय साधना द्वारा श्वास की परख करने के पश्चात दिशा और उसके स्वामित्व तत्व का परिज्ञान कर तत्पश्चात साधक मुद्रासनों का विधि पूर्वक अभ्यास कर के निश्चय ही अपनी साधना मे पूर्ण सफल हो सकता है। परन्तु अधिकतर साधकों की साधना ब्राह्म मुहूर्त मे सफल होती है शेष विषय ग्रन्थ के विस्तार हो जाने से नही लिखा जा सका।

योग का सम्बन्ध काल स्वरूप विशेष होने से ज्योतिष शास्त्र के एक अंग पर बहुत कुछ आधारित है। आयुर्वेद का भी बहुत कुछ सम्बन्ध योग से है। आज का पाश्चात्य वैज्ञानिक योग की वैज्ञानिक सत्ता पर अनुसन्धान कर रहा है। इस योग की विस्तृत रूप रेखा का वर्णन करना प्रसंग इतर होने से केवल सांकेतिक परिचय ही आपके सामने प्रस्तुत किया गया।

योग के गूढ तत्व को सुनकर सभी पाश्चात्य दार्शनिक दर्शन से प्रभावित हुये और भूरि २ प्रशंसा कर अपने २ आवास चले गये।

सप्तम पराग

चैत्र शुक्ल की ज्योत्स्ना अपनी शीतलता वसुधा पर बिखेर रही थी। रसाल वृक्षो की मञ्जरियां फूल कर छोटे रस कलश बन रही थी। पिकी का पञ्चम स्वर प्रकृति को मदिरा की मादकता प्रदान कर रहा था। वन प्रदेश के तरु नवल वधुओ के सदृश नव किशलयों को धारण किये थे। उषा सुन्दरी खिडकियो के झरोखो से जब अरुणिमा बिखेर रही थी, जिसमें मानव सौन्दर्य निरखता है, उसे उल्लास और प्रेरणा मिलती है, मृगशावक किलक उठता है, वन-कमल अरुण अधरो को मुस्काकर खोल देते हैं, बसन्त पवन के साथ लालिमा की तरङ्गें मारने लगता है, पक्षीगण अपने नवजात शिशुओं का मुख चुम्बन कर आकाश की ओर उडजाते है ऐसी सुहावनी बेला में उठकर प्रदीप अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना एव सदाचार के प्रसारार्थ अमेरिका की एक विशिष्ट संस्था के निमन्त्रण पर जाने के लिये उद्यत हुये।

प्रात आठ बजे विमान का प्रस्थान समय था। उषा भी साथ मे विमान के स्टेशन तक पहुंचाने गई। विमान स्टेशन पर ज्यू ही दोनो पहुंचे तो देखा कि बडी भीड थी। पूछने पर मालूम हुआ कि कोई पहुंचे हुये योगिराज महात्मा के स्वागतार्थ लोग एकत्र हुये हैं। प्रदीप का विमान ज्यूं ही चला कि उषा और प्रदीप भावनाओं में समा गये। दोनो के नेत्रों ने कुछ अश्रु बहाये। विमान ज्यूं २ ऊपर उठता उषा की भावना विभिन्न कल्पनाओं के उडान मे भटकती जाती और अपने ससार को लुटा हुआ पाती। पास के एक श्वेत पाषाढ शिला पर व्यथित सी बैठ गई।

वर्षों से उषा और प्रदीप अधिकांश एक साथ रहते थे। दोनों के लिये यह प्रथम अवसर कुछ दिन अलग होने का आया था। इसी काल के बीच आठ बजकर पचास मिनट पर योगिराज के विमान का समय आ गया इसलिये उषा का मन इस भीड भाड को देख कर कुछ बट गया और वह भी अन्य नर नारियो की तरह स्वागत करने एक और हाथ मे हार लेकर खडी हो गई। योगीराज के विमान ने ज्यूँ ही भूमि स्पर्श किया गगन भेदी जय जय कार के नारो से सारा वायु मण्डल गूंज उठा। हजारो नर नारियों के मध्य एकान्त मे ध्यान लगाये खडी उषा ने योगिराज को अपनी ओर

आकर्षित कर लिया । योगिराज [illegible] के [illegible] ।

उषा ने प्रणाम कर कहा [illegible] ।

[illegible] योगिराज [illegible] ने [illegible] शान्ति प्रदान [illegible] की प्रेरणा से प्रेरित होकर मुझे [illegible] ।

उषा विस्मित हो बोली : मैं कुछ [illegible] न [illegible], योगिराज ।

अन्तस्तल में झांक कर देखो, [illegible] । [illegible] ज्योति [illegible] रहा है ।

हृदय में ध्यान करते ही उषा ने प्रदीप को पाया और [illegible] हो उठी । एक हाथ हृदय पर धर कर भाव भरे मन्द स्वर से बोली : [illegible] ज्योति ! इस प्रकार प्रदीप की सौम्य मूर्ति उसके मानस पटल पर अंकित हो गई ।

उषा को सावधान कर योगिराज ने कहा : कुमारिके ! तुम अपनी ही माया में इतनी उलझ गई । इसी से कहते हैं "[illegible]" [illegible] काल ही के आधीन सारा जगत है । इसी काल ने [illegible] का [illegible] किया और इसी ने बड़े २ ऋषि मुनियों के [illegible] । इस काल की गति के साथ बड़े २ [illegible] महापुरुष आये और चले गये । इसलिये काल को परख कर चलना चाहिए ।

उषा अधीर हो बोली : आप ही मुझे इस काल से बचावें ।

इतने में योगिराज अपने साथ उषा को [illegible] एक मनोरम वाटिका में ले गये जहां उनके ठहरने का सारा प्रबन्ध था । सहस्रों नर नारी साथ में योगिराज के पीछे चल रहे थे ।

उषा का संसार दैवी सम्पत्तियों का था ही । प्रदीप के [illegible] से उसका मन रह रह कर उसे अधीर करता । उसकी आकृति पर उदासी की झलक छाई रहती । योगिराज के पुनीत वातावरण में उसकी भावना कभी २ [illegible] जाती । मध्यान्ह में योगिराज के विश्राम का समय हुआ । [illegible] योगिराज के दर्शन कर जाने लगे । अन्त में उस वाटिका में केवल उषा के और कोई योगिराज के साथ न रह गया ।

योगिराज ने पूछा : प्रदीप के प्रवास से तू मुरझा सी गई ।

उषा : विशेष चिन्ता मुझे आपके वरदान की है, योगिराज ।

काल तुझे स्वयं बतायेगा। तेरे पास भक्ति, ज्ञान, सत्य, दया सभी है परन्तु जब तक धैर्य, दम, असंतोष, इन्द्रिय-निग्रह उन्हे अपने अधिकार मे नही कर लेती तब तक तेरी जीवन नइया यू ही डावा डोल रहेगी।

उषा करबद्ध होकर बोली : महाराज। आप ही कुछ मार्ग निर्देशन करने की कृपा करें।

कठिन श्रम और तप के साथ काल का निर्णय कर साधन करना पडता है, बाले।

उषा—धर्माचार्य काल के वशीभूत होकर चलते नही सुने जाते। वे अपने आत्म बल के सहारे चलते हुये कहे जाते है।

योगिराज ने कहा। जो धर्माचार्य यह आत्माभिमान करता है उसे काल ही खा जाता है। सत्य अनुरागी राजा हरिश्चन्द्र को काल ही ने ग्रसित किया। इसी प्रकार दानवीर "बलि को काल ने बाधकर पाताल लोक मे डाल दिया।

वस्तुत. आप से मुझे धर्म क्षेत्र मे काल को परख कर चलने का एक सुन्दर कर्यविधान मिला। यह सही है कि बिना काल की गति को जाने जो कार्य किये जाते उनका परिणाम एक अन्धे के हाथ मे दी हुई लकडी के समान है। बुद्धिजन ऐसा नहीं करते। अन्यथा वेदाग ज्योतिष में काल को इतनी प्रधानता क्यो दी जाती। धार्मिक कृत्यो मे विशेष काल को परख कर कार्य किया जाता है। इसलिये मुझे विशेष रूप से एक शंका यहा व्यथित करने लगी, महाराज।

क्या शका है, बाले?

एक अन्तर्राष्ट्रीय धर्म संसद तथा दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय धर्म विश्व विद्यालय इन दो संस्थाओं की स्थापनायें बिना काल (मुहूर्त) का निर्णय किये की गई है पता नही इनका क्या परिणाम हो।

"गतं न शोचामि कृतं न मन्ये"

अर्थात् गत बात की चिन्ता और किये हुये का मनन व्यर्थ है, कुमारिके। ऐसा प्रतीत होता है कि धर्म पुत्र ज्ञान के पास तू शुभ मुहूर्त में नही पहुंची अन्यथा ज्ञान की प्राप्ति कर इस प्रकार की शंकाओं का जन्म लेना सम्भव नही। सम्भवत: तेरी सभी साधनायें काल से बहिर्मुख होकर एक मात्र भावो के आवेश मे हुई। जो शीघ्र ही क्षीण होने वाली हैं।

यथार्थ है प्रभु । अब आप का आदेश ?

प्रदीप को वर लेने के बाद ही मेरी भावनायें पूर्ण होंगी ।

उषा कुछ विस्मित हो बोली : इस देवी का जीवन तो सामारिक भावनाओं से पृथक है, महाराज ।

शुद्ध सात्विक भावनाओं में रमे हुये प्राणियों का वैवाहिक सम्बन्ध आदर्श होता है ।

उषा : यदि मैं अपने प्रदीप को भगवान कृष्ण भाव में मानती रहूं तो मुझे अधिक सुख मिलेगा । राधा कृष्ण का भक्ति प्रेम ही प्रकृति का संदेश देता हुआ आज दिन भी जीवित है । प्रदीप उसी भक्ति भावना से मेरे मन में रोम रोम रमे हैं ।

यह तो काल निर्णय करेगा, देवि !

इतना कहकर योगिराज ने उषा को विदा किया ।

प्रदोष काल था, सन्ध्या सुन्दरी अपने यौवनकाल का स्वरूप सम्हारे थी । उषा की सङ्ग सहेलियां मृदुला और कुसुम गेह में उषा की बाट जोह रही थीं । देवद्वार आराधिका के बिना सूना था, आशादि भी कुसुम लाई अपने श्रृङ्गार के लिये अधीर थी कि इतने में उषा नीरस सी आई और गेह में प्रवेश करती हुई सीधे देव कक्ष में पहुची । पट को खोलकर देव चरणों पर आ गिरी । उसकी अन्तरंग सखियां इस भाव को देखकर चकित हो गईं और मृदुला उसे बार बार सान्त्वना देने लगी ।

उधर प्रदीप प्रवास में पहुंचते ही उषा के बिना मन को खोया सा पाते । विमान यात्रा में उनकी उमड़ती हुई विविध भावनायें रह रह कर व्यथित करती रहीं । न्यूयार्क के ऐरोड्रोम पर विमान पहुंचते ही सहस्रों नर नारी स्वागतार्थ उपस्थित थे । विमान से प्रदीप ज्यों ही उतरे बन्धुओं ने पुष्पों से स्वागत किया परन्तु प्रदीप विक्षिप्त से इधर उधर देखते रहे । स्वागत समिति के कुछ महानुभावों ने प्रदीप से साहस पूर्वक विनम्र भाव से पूंछा । महानुभाव ! क्या कुछ खो गया है ?

प्रदीप ने कम्पित कंठ से कहा : मैं अपना सर्वस्व अपने आवास पर ही छोड़ आया । समझ में नहीं आता क्या करूं ?

एक सदस्य : आप जो भी आज्ञा दें उसका पालन होगा ।

प्रदीप : कोई विशेष बात नहीं । इतना कहकर प्रदीप नर नारियों के समूह के साथ २ चलकर एक विशाल होटल में ठहराये गये । विश्राम कक्ष में पहुंचकर नित्य

कर्म से निवृत्त होते ही कुछ भद्र महिलायें अपने क्लब मे भाषण के लिये प्रदीप को आमन्त्रित करने आई।

प्रदीप ने उन महिलाओं से उषा को विशेष रूप मे आमन्त्रित करने के लिये कहा। महिला संगठन की संचालिका ने उषा के बुलाने का सारा प्रबन्ध तत्क्षण कर दिया। तीसरे दिन न्यूयार्क के एरोड्रोम पर उषा का विमान ज्यों ही उतरा प्रदीप सहस्रों नर नारियों के साथ स्वागतार्थ जा पहुंचे। विमान से उतरते ही उषा भारतीय संस्कृति की प्रतीक बनकर प्रदीप के चरणों पर जा गिरी। प्रदीप ने दोनो बाहुओं से उठाकर अपने हृदय से लगाया। तत्पश्चात् उपस्थित जन वृन्द उषा का स्वागत करने गये। उषा और प्रदीप के उस भाव भरे प्रेम को देखकर समस्त उपस्थित नर नारी प्रेम मे विभोर हो गये। बहुतों की ममता उमडकर आंसू छलकाने लगी। कुछ क्षण बाद दोनों एक साथ जैसे ही आगे बढ़े जन समूह ने करतल ध्वनि की। उषा और प्रदीप सबको ओर करबद्ध अभिवादन करते रहे और अमेरिका के एक भव्य भवन में ठहराये गये। जहां दोनों ने सदस्यों के साथ भोजन किया। भोजन शुद्ध सात्विक आहार, फल, मेवा, मक्खन आदि युक्त था। भोजन के पश्चात सब अपने २ अतिथि कक्ष मे चले गये।

उषा और प्रदीप एकान्त आवास कक्ष में पहुंच कर परस्पर वार्तालाप में रत हो गये।

उषा . बिना काल की गति पहिचाने भावावेश मे सारे कार्य किये गये। इसी लिये अनेक बाधायें आ जाती हैं।

प्रदीप जो कार्य दैवी प्रेरणा से किये जाते हैं उसमें भी काल की गति सन्निहित है। परन्तु कुछ कार्य जो मानव कृत्य माने जाते उन्हे ज्योतिर्विज्ञान की कसौटी पर चलने से शास्त्र की मर्यादा का पालन करना अपना धर्म अवश्य हो जाता है। इसलिये यह भूल अवश्य हम दोनो से हुई।

उषा . मुझे एक योगिराज से काल वशात् साक्षात्कार हुआ उन्होने एक ऐसा वरदान दिया जिसकी कि मैं कल्पना भी नहीं करती।

प्रदीप वह क्या है, उषे ?

जिससे आप के कुल-कलंक दोष का भय है।

ऐसा कौन सा महापातक है, उषे ?

यही कि मैं अन्यत्र और आप [illegible] कुलीन [illegible]। परिणीता होने पर कुल ही नहीं अपितु समाज आपको समझेगा। [illegible] यदि हम दोनो इसी प्रकार राधा कृष्ण के समान आदर्शमय [illegible] कल्याण के कार्यों मे रत रहें।

प्रदीप। स्पर्श, रस, गन्ध यह सब वासना के [illegible] इनके अनुरक्त रहते यह सब सम्भव नहीं। [illegible] प्रवेश करें [illegible] उपांगों का भी पूर्ण ध्यान रखना चाहिए। अन्यथा [illegible] धर्म के शेष लक्षणों के न प्राप्त होने से होगी नहीं। वैवाहिक जीवन धर्म का एक विशुद्ध अंग है। भगवान रामचन्द्र का भी विवाह हुआ था। इसी प्रकार अनेक [illegible] पुरुषों का जीवन वैवाहिक रहा। इसलिये मुझे वैवाहिक जीवन अधिक प्रिय है। भक्ति युक्त प्रेम एक [illegible]। राधा कृष्ण [illegible] भक्ति का मैं आदर करता हूं। भक्ति भावना में राधा कृष्ण [illegible] परन्तु राधा का जीवन सांसारिक दृष्टि से गृहस्थ धर्म के अन्तर्गत सीता के समान आदर नहीं पाता। मैं तुम्हें एक शक्ति के रूप में मानता हूं। इसी शक्ति से भगवान रामचन्द्र कौशल्या के गर्भ से उत्पन्न हुये। इसके अतिरिक्त [illegible] इसी शक्ति मयी महामाया से उत्पन्न हुये। तब मैं उस शक्ति का आदर इस रूप में क्यों न करूं। बडे २ ऋषि मुनियों ने भी इसी शक्ति का ही आदर किया। संसार में रहकर भी आश्रम धर्मों का पालन करते रहने में अधिक शोभा है, सुभगे !

पर आपका परिवार इस संबन्ध को कैसे उचित समझेगा, सौम्य ?

इसके विषय मे शास्त्र प्रमाणों से [illegible]। [illegible] हमें दुनिया में आदर्शवादी बनकर भक्ति मार्ग से [illegible] है। यदि हम दोनो बिना वैवाहिक जीवन के यूं ही विचरते रहें तो [illegible] मन में शुद्ध क्यों न हों पर संसार की दृष्टि में सदा संशय युक्त बने ही रहेंगे और लोग अनेक प्रकार के लांछन एवं अंगुल्यानिर्देशन करते रहेंगे। विवाह के पश्चात इस प्रकार का सारा विकार धुल कर लोगों के मन को स्वच्छ कर देना और गृहस्थ आश्रम धर्म का विधिपूर्वक पालन होगा।

गृहस्थ आश्रम तो उत्तम होता ही है परन्तु भावी कार्यक्रम को किसी विद्वान ज्योतिषी से निर्णय लेकर ही करना, मेरे देव।

मुझे अपनी जन्म तिथि, सन्, संवत, वार, पक्ष, मास तथा जन्म काल स्मरण है।

मेरी कुण्डली तो सविस्तृत बनी है।

विस्तृत कुण्डली मे हम दोनों का मिलन एवं विवाह योग मिल ही जायगा।

मुझे इसका कुछ स्मरण नही पर वह तो पिता जी के अधिकार मे है।

वस्तुत ज्योतिष एक महत्व पूर्ण विषय है जो प्राणिमात्र के जीवन मे अत्यन्त उपयोगी होता है। नक्षत्र मण्डल, सौर मण्डल अपना २ प्रभाव रखते है। ज्योतिष का यथार्थ ज्ञान विश्व की सभी समस्याओं को सुलझा सकता है।

प्रदीप ज्योतिष मे काल के संवत्सर, अयन, ऋतु विभाग आदि का प्रतिपादन किया गया है पर उनके शुभाशुभ फलो का वर्णन करते हुये उन २ ग्रहों के शान्त्यर्थ उपाय भी उत्तमोत्तम कोटि के दिये गये है। इसके अतिरिक्त राकेट, स्पुतनिक आदि समस्त विज्ञान इसी विषय के अन्तर्गत आ जाते है।

इस प्रकार परस्पर एकान्त मे बाते करते जलपान पर पहुचे। अन्तर्राष्ट्रीय धर्म संसद की स्थानीय शाखा द्वारा आयोजित एक महती सभा मे दोनों का साढ़े छै बजे भाषण था। उषा और प्रदीप शुद्ध भारतीय सांस्कृतिक परिधान से युक्त थे। प्रदीप शुद्ध खादी की धोती तथा रेशमी खादी का कुर्ता पहने थे और उनके कन्धों पर केसरिया वर्ण का रेशमी उत्तरीय पड़ा था। साथ ही कण्ठ मे शुभ्र स्फटिक की माला थी और प्रखर मस्तक पर भृकुटी के बीच मे केसर युक्त रक्त चन्दन का तिलक था। उषा ने भी समयानुकूल श्वेत वर्ण की वाराणसीय रेशमी साडी पहन रखी थी जिसमे स्वर्ण के तारो का हलका कलात्मक कार्य था और कौशेय वर्ण का रेशमी महीन उत्तरीय पड़ा था। हाथ में वाराणसीय कला की हाथी दात की चूड़ियाँ और सुकोमल ललाट पर सिंदूर की हल्की सी बिन्दी थी। उसके हाथ मे एक बडा कलात्मक पर्स था जिसके मध्य में खिले हुये कमल के आकृन के अन्तर्गत 'ओ' चिन्ह को बडी कलात्मक ढंग से रेखाओं द्वारा स्वर्णिम तारो से चित्रित किया गया था। हाथ मे हल्की हीरे की स्वर्णिम अंगुठी तथा कान और नासिका में हीरे जटित जो कलात्मक आभूषणों को उसने धारण किया था उन पर जब विद्युत की प्रकाश रेखायें पडती तो उठे हुये प्रकाश प्रतिबिम्ब से नर-नारी विस्मित हो उठते थे। इस प्रकार शुद्ध भारतीय संस्कृति परिधान में जब यह दोनों भारतीय ज्ञान और धर्म के प्रतिनिधि सभा स्थल में पहुंचे अमेरिकन नर-नारी इस युगुल के स्वास्थ्य, रूप सौन्दर्य, शील तथा परिधान को देखकर बड़े ही विस्मित हुये। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो कोई देव लोक से आये हुये युगुल विशेष हों। सम्पूर्ण पिण्डाल श्रोतागणो से भरा

था। सभी स्थान पर पहुँचने ही लोगों ने तुमुल ध्वनियों से स्वागत की। प्रथम प्रदीप ने भाषण प्रारम्भ किया।

मेरे ही भाग्य स्वरूप देवियो एवं महानुभावो! सृष्टि की उत्पत्ति काल में धर्म और विज्ञान दोनों का एक साथ जन्म हुआ। परन्तु धर्म ही की ओर [illegible] विज्ञान का विकास हुआ। ज्ञान ही से छनकर विज्ञान का उत्कर्ष हुआ। 'ज्ञान' हमारे ऋषि मुनियों के दिव्य चक्षु से निकला हुआ है। इसलिये हमें इस दिशा में धर्म की रक्षा करनी है। धर्म न किसी जाति का और न किसी सम्प्रदाय विशेष का है। धर्म प्राणिमात्र का एक है। हमें धर्म रूपी सत्य को प्रथम अपनाना है। तत्पश्चात ज्ञान और तत्पश्चात विज्ञान को धारण करना है। [illegible] हम लोगों ने अपने को [illegible] और संसार में भ्रातृत्व एवं सौहार्द की भावना जाग्रत करनी है। [illegible] सत्य और ज्ञान ही अपनाना है। विज्ञान को विध्वंसात्मक कार्यों से हटाकर रचनात्मक कार्यों में लगाना है जिससे संसार में सुख और शान्ति स्थापित हो सके।

प्रदीप का भाषण समाप्त होते ही उषा ज्यों ही भाषण देने खड़ी हुई उसकी सौन्दर्य की गरिमा उपस्थित जन समूह का आकर्षण केन्द्र बन गई। उषा के मुख से सस्वर एवं लय के साथ संस्कृत में मंगलाचरण के गान से सारा वातावरण मन्त्र मुग्ध हो गया। उषा ने अपना ओजस्वी भाषण आरम्भ करते हुये कहा। एक ही आत्म सूत्र मे बंधे हुये अमेरिकन बहिनो एवं बन्धुओं! धर्म आत्मा है। विज्ञान उसकी धारायें हैं जो इसी प्राणवाही धमनियो से निकली हुई है। शरीर का अस्तित्व [illegible] धर्म ही पर है अतः शरीर रक्षा के लिये धर्म की रक्षा करना है। धर्म ही विज्ञान का रक्षक है क्योंकि धर्म पुत्र ज्ञान से ही विज्ञान की उत्पत्ति हुई है। संस्कृत व्याकरण के नियमानुसार विज्ञान शब्द 'ज्ञा' धातु से बना है। 'वि' उपसर्ग और ल्युट् प्रत्यय है। इसके अतिरिक्त विज्ञान शब्द अपने ज्ञानमय शब्द कोष से छनकर अनेक भावनाओं का उद्बोधन करता है। जैसे विशिष्टं ज्ञानं विज्ञानम्, विशिष्टं ज्ञानं विज्ञानम्, विविधं ज्ञान विज्ञानम् इत्यादि। अतः ज्ञान शब्द ही सिद्धान्तः विज्ञान का उत्पत्ति कारक है। किसी स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात ही उसके भाव मूलक तथ्यों का परिणामान्तर के भेद से प्रकट होना अर्थात उसकी सत्ता को भूमि पर दिखा देना यही विज्ञान कहा जाता है। किसी विषय का ज्ञान प्राप्त किये बिना

विज्ञान का जानना सम्भव नहीं। अतएव प्रथम ज्ञान तत्पश्चात विज्ञान। ज्ञान को हमे सदा ऊंचा मानना होगा। गणित समस्त विज्ञानो की जननी है हमारे वेदागो मे ज्योतिष को ही गणित का मूलोत्पत्ति कारक बतलाया है। पाश्चात्य देशो मे ज्योतिष को विभिन्न अङ्गो एव उपाँगो मे विभाजित कर उनके नाम करण किये हैं। नक्षत्र विज्ञान, ग्रह विज्ञान, मनोविज्ञान, अंकविज्ञान, अन्तरिक्ष विज्ञान, जीव विज्ञान, ऋतु-विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, वास्तु विज्ञान, आदि सब ज्योतिष के ही अङ्ग एव उपाङ्ग माने जाते है। इस प्रकार भारतीय ज्योतिष इतिहास का जब हम साँगो पाँग अध्ययन करते है तो उसके गणित और फलित पक्ष को मिलाकर लगभग चार लक्ष ग्रन्थ भण्डार का उल्लेख हमे मिलता है। इतना विशाल ज्ञान भंडार का अनुमान ही लगाने मे बुद्धि चक्कर खाती है और गोस्वामी तुलसीदास की उस उक्ति का स्मरण हो जाता है कि—

'हरित भूमि तृण संकुल समुझि परै नहिं पंथ।
जिमि पाखण्ड विवाद ते लुप्त होय सद् ग्रन्थ'

सारांश रूप मे हमे स्वीकार करना पडेगा कि धर्म के बल पर शुद्ध सात्विक भावनाओं को उभारते हुये हम सबको चलते रहना है जिससे सद् बुद्धि और सद्विवेक पल्लवित होकर मानव समाज का वस्तुत कल्याण हो सके।

उषा के ऐसे सार गर्भित भाषण को सुनकर उपस्थित जन समुदाय ने करतल ध्वनि की। पत्र प्रतिनिधियो के कैमरे की सैकड़ों फ्लेश लाइट उषा और प्रदीप पर पड़ने लगी तथा उनके भाषणों को समाचार पत्रो मे सचित्र प्रमुख स्थान दिया गया। वहां की सुप्त भूमि जागी, आकाश विलसा और सभी की आकृति मे विचित्र उल्लास प्रतीत हुआ। डा० ग्रीन वे नाम के एक प्रकाण्ड वैज्ञानिक ने उषा द्वारा प्रतिपादित ज्ञान विज्ञान की तार्किक व्यवस्था पर धन्यवाद देते हुये कहा: आज का अधिकाश वैज्ञानिक धर्म को विज्ञान से अलग मानता रहा। क्योकि धर्म का वास्तविक स्वरूप वह जानता न था। धर्म को लोगो ने एक संकीर्ण क्षेत्र मे डाल दिया था। धर्म के प्रधान आचार्यों ने धर्म को बाह्य आडम्बरो से ऐसा ढक लिया था जो वही धर्म शत्रु बनकर उन्हे और समाज दोनो को खाने लगा। फलस्वरूप समाज ने ऐसे धर्म के पाखण्डियों को ललकारा। धर्म से मानव समाज अपना नाता धीरे धीरे तोड़ता गया और अन्त मे विश्व का एक बहुत बड़ा वर्ग गर्त्त में ले जाने वाली ऐसी ईश्वर सत्ता पर अविश्वास करने लगा परन्तु आज हमे परम विदुषी

कुमारी उषा से धर्म का सही अर्थ मिला। विश्व का कोई भी सुशिक्षित प्राणी अथवा वैज्ञानिक इसे नकारात्मक नहीं कह सकता। ऐसे गुणधर्मों से युक्त धर्म को प्रत्येक मानव अपनायेगा। जहां तक विभिन्न धर्मावलम्बी एवं धर्म प्रवर्तकाचार्यों की बात है वह अपने विश्वास और श्रद्धा का विषय है। कोई भी समझदार व्यक्ति या समाज जो सभ्यता और शिष्टता का प्रतीक है, प्रतिमा का आदर सदा करता आ रहा है। यथार्थ मे यदि धर्म अपने वास्तविक स्वरूप का फिर पुनर्स्थापित हो गया तो समस्त संसार का कल्याण हो जायगा।

दूसरे वैज्ञानिक डा० मैकडानल्ड ने उठकर कहा मूर्ति पूजा वैज्ञानिक दृष्टि से अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह विषय मनोविज्ञान की परिधि में आता है। मूर्ति पूजा प्राणी की सद्भावनाओं का परिचायक है। विश्व के सभी प्राणी साकार अथवा निराकार रूप में मूर्ति की पूजा उपासना करते आये हैं। संसार मे जितनी भी लोक पूज्य विभूतियां धरती में अवतरित हुईं उन सभी की पुण्य स्मृति में उनकी विचार धाराओं एवं लोक सेवाओं के अनुसार उन्हें आज दिन भी श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित की जा रही है। विभिन्न सुशिक्षित समाज अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं के अनुसार उन्हें आदर देते आये हैं। भारतीय दर्शन शास्त्र में आदर्श विभूतियों का पूजन, अर्चन, उनके जीवन काल मे और मरण पश्चात दोनों अवस्थाओं में माना गया है। इसी प्रकार अपने अपने विषय और क्षेत्र के अधिकारी विद्वान सदा आदर के पात्र रहे हैं। भारतीय दर्शन प्राणिमात्र को ईश्वर का एक अंश मानता है उसी भाव से मानव पूजा यह स्वीकार करता है। जो दर्शन अपनी भावना में प्राणिमात्र के प्रति इतना उदार हो वही संसार को सुख और सौहार्द के पथ पर ले जा सकता है। परन्तु वह दर्शन कलि की गति से कुछ निष्प्राण सा हो गया। समस्त दर्शनों और उपनिषदो का स्रोत बिन्दु जिसे हम धर्म कहते हैं वह समय के प्रभाव से ग्रसित है। अतएव धर्म रूपी वृक्ष की शाखायें, प्रशाखायें, जटायें, फूल पत्ते कोंपल सभी मुरझाये और सूखते चले जा रहे हैं। हमें उसी धर्म रूपी वृक्ष मे उसकी 'ज्ञान' रूपी कलम को काट कर फिर से धर्म का बीज बोना है जो धर्म के दसों लक्षणों से युक्त संसार को पुन अपना संदेश दे सके।

वैज्ञानिकों के इन मार्मिक भाषणों से उषा और प्रदीप प्रभावित हुये। अन्त में अभिवादन कर अपने आवास कक्ष की ओर चल दिये। आतिथ्य भवन में प्रवेश करते ही अनेक विद्वान सद्भावना प्रकट करने आये। इसी प्रकार कई स्थानों में एक सप्ताह निरन्तर दोनो के भाषण होते रहे।

अन्तर्राष्ट्रीय धर्म संसद का साप्ताहिक शिविर समाप्त कर उषा और प्रदीप ने अमेरिका से भारत के लिये प्रस्थान किया। प्रात नौ बजे विमान अमेरिका से भारत के लिये विमान का घटना निश्चित था। दोनो आतिथ्य भवन से चले। मार्ग के दोनो ओर कतारो में शान्ति पूर्वक खडे हुये सहस्रों नर नारी तथा छोटे छोटे बच्चे अपने अपार स्नेह को लिये अभिवादन करते। इधर उषा और प्रदीप सबको नत मस्तक करते जाते। विमान के छूटते ही सारा वातावरण जय जयकार के नारों से गूंज उठा और विमान की पूरी परिक्रमा तक लोग उस ओर निहारते रहे और मगलमय यात्रा की भावना से हाथों से सकेत करते रहे। जब तक विमान दृष्टि से ओझल नही हुआ सभी यथा स्थान खडे रहे। कुछ लोग इतने प्रभावित हुये कि उषा और प्रदीप को भारत तक पहुंचाने आये।

अष्टम पराग

प्रातः कालीन उषा ने क्षितिज में अरुण कुंकुम की झांकी [illegible] दी थी जिसमें मानव उल्लास और प्रेरणा में व्याप्त हो रहा था। कामिनियां [illegible] खिल यदना हो अध ढके उन्नत उरोजों को उद्घाटित हुई निलाम्ब [illegible] का परित्याग कर रही थी, वन-कमल अरुण अधरों को मुस्कराने को [illegible] रहे थे और [illegible] मधुर गुञ्जन के साथ बाहर निकल रहे थे। ऐसे सुखद वातावरण में प्रदीप और उषा के वायुयान ने शान्ताकुञ्ज की भूमि का स्पर्श किया। उसके वायुयान के [illegible] से उषा ने देखा कि उनके स्वागतार्थ विशिष्ट विभूतियां पुष्पों के [illegible] लिये खड़ी हैं। वायुयान के द्वारखुलते ही उषा और प्रदीप सीढ़ी के मध्य में [illegible] व्यक्तियों ने उनका स्वागत किया तथा पुष्पों के स्तवक भेंट किए।

प्रदीप और उषा ने आगन्तुकों को धन्यवाद दिया [illegible] उनके प्रेम की सराहना की। स्टेशन के जलपान कक्ष में आकर पत्र प्रतिनिधियों से भेंट किया और अपनी विदेश यात्रा के संस्मरण उन्हें दिये जिन्हें कि उषा व प्रदीप के सहयोग में वायुयान में ही टाइप कर लिये थे। तथा कार में बैठकर उस स्थान की ओर चले जहां उषा का प्राचीन गृह था जो दैव की कृपा से टूटे-फूटे, जर्जर अवस्था से एक विशाल-भवन बन गया था। भवन के मध्य में स्वर्णिम कुसुमों से अलंकृत लक्ष्मी-गणेश की एक युगुल मूर्ति स्थापित थी जिससे भवन की भव्यता देव मन्दिर सी प्रतीत होती थी।

उस देवालय और गेह का सारा प्रबन्ध [illegible] जी के हाथों में था जो नित्य पूजन अर्चन करते थे। प्रदीप भी [illegible] वहीं रहते थे। दोनों की भक्ति-भावना उसी भूमि के अञ्चल में जागी थी। प्रदीप का निजि स्थान उषा से लगभग दो मील की दूरी पर था। प्रदीप के एक छोटा भाई प्रताप विक्रम सिंह और मञ्जुला नाम की एक बड़ी बहिन थी। मञ्जुला विवाहिता थी। प्रदीप के पिता राणा कुलदीप सिंह और माता सूर्य भानु कुंवरि थी। कुलदीप सिंह नगर के सम्भ्रान्त एवं प्रभावशाली व्यक्ति थे। बात के धनी और लगन के पक्के थे। लाखों की संपदा थी ही। साथ ही व्यवसाय भी ऊंचा था। प्रदीप और उषा की मित्रता

को कुलदीप सिंह जानते थे पर उन्हे प्रदीप पर दृढ़ विश्वास था कि वह उषा के प्रेम पाश मे कभी नही फस सकता। उषा प्राय प्रदीप के घर मे कई दिन तक रहा करती थी। प्रदीप के माता पिता उषा के स्वभाव एवं शील सौजन्य से प्रसन्न थे। पर यह अनुमान रखते हुये कि वह अन्त्यज की पुत्री है अपने को उसके स्पर्श से बचाये रखते थे तथा खान-पान और पात्रादि के व्यवहार मे ऐसी रीति बरतते थे कि उषा कुछ स्पर्श भी न कर सके और उसे यह भी न आभास हो कि उसके साथ अस्पर्शयता का व्यवहार किया जाता है। उषा और प्रदीप के एक साथ अमेरिका से आने का समाचार कुलदीप सिह को लग गया था। प्रदीप ने घर पहुंचकर अपने माता पिता को प्रणाम किया। विदेश से प्राप्त भेंट की वस्तुये, उपहार आदि तथा अन्य सामग्री प्रदीप ने उनके चरणो में भेंट की। समाचार पत्रो द्वारा प्रकाशित एवं प्रसारित ख्याति कीर्ति और चित्रो को देखकर कुलदीप सिह अत्यन्त प्रसन्न हुये परन्तु साथ में उषा का चित्र और गुणगान देखकर कुछ सकुचाये।

कुलदीप सिंह ने प्रदीप से पूछा ' क्या तुम्हारे साथ उषा भी गई थी ?

प्रदीप : आमन्त्रित की गई थी।

आई तो तुम्हारे साथ ही है। आहार विहार तो अमेरिका मे साथ ही होता होगा।

प्रदीप : विदेशो में ऐसी विचार संकीर्णता मेरे लिये दुस्तर हो गई। जबकि दोनो एक ही विचार धारा के और साथ एक ही विषय पर भाषण देने की क्षमता रखते हो। उषा के ज्ञान की परख यहा की अपेक्षा विदेशो मे अधिक हुई।

उषा का शील सौजन्य और गम्भीर अध्ययन एव उसके वाणी की सरसता सद्गुणों की प्रतीक है। सम्भव है मानस पुत्री हो।

वेद में विदित कन्या की कोई जाति नहीं होती। यदि अन्त्यज भी माता हो और पिता महात्मा या ब्राह्मण हो उस सतान को शास्त्र अन्त्यज की सतति नही कहता। मनु भगवान ने सुस्पष्ट व्यवस्था दी है कि ब्राह्मण जाति का बालक क्षत्री, वैश्य और शूद्र तीनों जाति की कन्यायो से विवाह करने का अधिकारी है। इसी प्रकार क्षत्री का बालक वैश्य और शूद्र जाति की कन्या ले सकता है। अन्त्यज शूद्र के ही अन्तर्गत माने जाते हैं। और फिर अपवित्र स्थान पर पड़ा हुआ कन्चन भी सदा ग्राह्य रहा है।

इतने में स्नेह की झोली पसारती हुई प्रदीप की छोटी भगिनी मञ्जुला बोली : हमारा भइया कितना महान विद्वान हो गया। सारे प्रपंच बिना ज्ञान देने लगा। मालूम पड़ता है इसी विषय पर सारा अनुसन्धान कर डाला। अभी से घर में ज्ञान बघारने। बताओ ! मेरे लिए विदेश से क्या क्या लाये हो ?

एक हाथ की घड़ी, पाकेट रेडियो और केशों में लगाने के क्लिप्स।

इतने में प्रदीप का छोटा भाई प्रताप ने आकर कहा। मैं भी भइया की प्रतीक्षा इतने दिनों से कर रहा हूं। देखें, हमारे लिये क्या २ लाये हैं।

तुम्हारे लिये एक टेबुल लैम्प का ऐसा सेट लाया हूं जिसमें एक सुनहली घड़ी, कैलेन्डर रेडियो और कलम दान है।

इतने में प्रदीप ने संदूक खोला और सबकी वस्तुयें, साथ में माता जी के लिये नवरत्न जड़ित कान के टाप्स और पिता जी को दो सूट का ऊनी कपड़ा निकालकर दिया।

मंजुला : मेरे लिये ऐसे टाप्स क्यों नहीं लाये ?

तुम्हे अबकी बार और ला देंगे।

प्रताप : जीजी हमारी दोनो ओर हाथ मारती है। अभी विवाह में न जाने कितनी बहु मूल्य रत्न जड़ित वस्तुयें दी गई फिर भी नियत नहीं भरती। माता जी के पास ऐसे टाप्स थे भी नहीं।

सूर्यभानु कुंवरि ममता भरे भाव से बोली : दो भाइयों के बीच एक ही बहिन है। आखिर वह अपने भाइयों से दुलार न दिखावे तो और किससे। वह टाप्स मंजुला को दे दे। मैं और मंगा लूंगी।

मंजुला इठलाती हुई बोली : माता की ममता हो तो है।

इसके पश्चात सबने साथ बैठकर भोजन किया और प्रदीप ने अपनी विदेश यात्रा का रोचक हाल सुनाया। भोजन से निवृत्त होकर अपने विश्राम कक्ष में चले गये।

कुलदीप सिंह और सूर्यभानु कुंवरि अपने विशेष विश्राम कक्ष में आकर परस्पर विचार विमर्श करने लगे।

कुलदीप : मुझे कुछ दाल में काला मालूम पड़ता है।

सूर्यभानु कुंवरि : प्रदीप की बातों से कुछ ऐसा ही झलकता है। पर अब क्या किया जाय।

सोचा था प्रदीप अपना पूर्ण ब्रह्मचर्य आश्रम निभा लेता तब पाणिग्रहण होता। अभी बाइस शरद ही पार किये हैं।

जयपुर के कुंवर प्रताप सिंह की राजकुमारी मेरी देखी है। बडी ही सुशीला सुशिक्षिता और अपने क्षत्रिय वंश मे सर्वोच्च कुल वाली है। न हो वहां सदेश भेजा जाय।

कुलदीप : ऐसे न जाने कितने द्वार से लौट गये। सभी को पत्र लिखकर उनमे से छांट लिया जाय और प्रथम दोनों कुण्डलियो का मिलान करवा लिया जाय।

कुलदीप सिंह ने अपने दीवान भानु प्रताप को बुलाकर सभी राजकुमारियो की जन्म कुण्डलिया मंगाने का आदेश दिया। दीवान ने सबको पत्र डाले। एक सप्ताह मे सभी कुण्डलिया प्राप्तकर शीघ्र ही एक विद्वान ज्योतिषी द्वारा मिलान करवाया गया। बाइस कुण्डलियों मे आठ का मिलान प्रदीप की कुण्डली से ठीक मिला। जिसमे तीन उत्तम कोटि, चार मध्यम और एक साधारण बनाबन्त बना।

विवाह की चर्चा का संकेत प्रदीप को मिल चुका था पर कर भी क्या सकता। दर्शन का विद्वान और फिर माता पिता का आज्ञाकारी।

कन्या पक्ष वालों को पत्र भेजे गये। उनकी पारिवारिक मर्यादा, भाई, बहिन आदि सभी दृष्टि से विचार करना था। सभी के पत्र आये। परन्तु तीन कन्या परिवारो का चयन किया गया जो उत्तम कुल और हर प्रकार से सम्पन्न थे। जयपुर, अजमेर और सीकर राज्य की तीनों कन्या पक्ष वालो को कन्या देखकर निर्णय देने का समय निश्चित किया गया।

आश्विन का मास और शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि थी। मंजुला को उसके ससुराल से लड़की देखने के लिये बुलाया गया। मंजुला जैसे ही द्वार पर पहुची प्रदीप को खड़ा देखकर कार से उतरते ही प्रसन्न मुद्रा मे बधाई देते हुये बोली भइया के विवाह मे बहुत सामान लूंगी। अभी से सामग्री की सारी सूची तैयार करके दे दूंगी।

क्या। कहीं निश्चित हो गया है ?

मंजुला : हमारे भइया कैसे भोले हैं, कुछ जानते ही नहीं।

मुझे कुछ नहीं मालूम।

जिसका विवाह हो उसे कुछ पता तक नही। वयस्क लडकी लडकों से परामर्श तो कर ही लेना चाहिये। मैं अभी जाकर मा से पूछती हूं।

मंजुला के घर में प्रवेश करते ही [illegible] ने कहा [illegible] । तुम्हारी बड़ी प्रतीक्षा थी । सोचता हूं प्रदीप का विवाह अब [illegible] कर दूं । नादान हो हो गये क्या मालूम कहीं ऊंच नीच पांव पड़ जाये । विश्वासघात के बाद इस सूर्य में तीन राज कुमारियों को देखने मुझे अपनी मां के साथ जाना [illegible] ।

मंजुला प्रसन्न मुद्रा में बोली . पिता जी मैं [illegible] ।

इतना कहकर मंजुला मां के पास गई । मां [illegible] भोजन का प्रबन्ध कर रही थी । मां से बोली : आपका [illegible] ।

मेरी बेटी कितनी अच्छी है । तेरे भइया का विवाह कहां [illegible] निश्चित करना है । तीन राजकुमारियों को देखने चलना होगा । [illegible] उसी की गोद भर देंगे । शील, सौजन्य और सौन्दर्य होना ही चाहिए ।

मंजुला : हमारे भइया कैसे शील सौजन्य गुण सुन्दर और [illegible] के निधान हैं मां । उनके लिये लड़की का गुणवान भी होना उतना ही आवश्यक है । पर मां ! प्रदीप भइया से अभी तक कोई चर्चा विवाह की नहीं हुई क्या ?

बच्चों से विवाह के लिये क्या पूछना, बेटी ! माता पिता [illegible] हित का ध्यान रखते ही हैं । जिन बातों का ज्ञान [illegible] और अनुभव माता पिता को होता है वह बच्चों को होना कैसे सम्भव है ।

फिर भी सुशिक्षित लोगों की अपनी एक महत्वाकांक्षा रहती है, मां ।

बेटी ठीक कहती है । पर हमें उसके सभी हितों का ध्यान है । हां ! यदि कोई गोपनीय बात हो तो उससे पूंछ लें ।

कुछ बातें कभी ऐसी आ पड़ती हैं जिनमें [illegible] अनिवार्य हो जाता है । कभी बच्चों की बातें भी बड़ी सूझबूझ की होती हैं । नई बुद्धि, नये विचार । जिस प्रकार दुनिया तेजी से बदलती जा रही है लोगों की विचार धारा भी वैसी बदलती जा रही है ।

दुनिया व्यक्ति से बनी और व्यक्ति ही से समाज बना । [illegible] बदलते हुए समान के साथ अपने को बदलना ठीक नहीं । तू तो उसी बहिन है उसके भावों को पूंछकर बता ही सकती है ।

इतने में मंजुला प्रदीप के पास जाकर बोली : मैं अब अपनी भाभी को पसन्द करने जाऊंगी । जयपुर, सीकर और अजमेर जाना है । जो सबसे उत्तम रूप, रंग, बोल-चाल, कला प्रवीणा और विदुषी होगी उसी की गोद भरी जायगी ।

प्रदीप . क्या अभी विवाह भी ? पिता जी ने तो पचीस वर्ष पर ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त के बाद कहा था ।

बात पहले ऐसी ही थी । पता नहीं यह भावना क्यों बदली । मैं अभी जाकर मा से पूछती हूँ ।

मजुला मा के पास जाकर बोली भइया ने ब्रह्मचर्य आश्रम के पश्चात विवाह का स्मरण दिलाया है ।

इनके भीतर रहस्य है । उसका प्रेम उषा से हो गया है इस कारण यह सब रचना पड़ा ।

कुछ सकेत उस दिन उसकी बातों से मिला था । फिर तो दूसरे घर की लड़की को लाकर उनके गले मढ़ना उचित नहीं है, मा ।

क्या एक ऐसी लड़की से विवाह कर दिया जाय । जिसकी जाति का कछ निश्चित पता नहीं । सारे परिवार की मर्यादा धूल मे मिला दी जाय । ऐसे प्रेम आजकल गली-कूचे मारे २ फिरा करते है ।

प्रदीप भइया बड़े सिद्धान्तवादी है । पर मा ! उषा ऐसी कान्तकमनीयता वाली लड़की क्या अन्त्यज की हो सकेगी ? इसमे कोई रहस्य अवश्य छिपा है ।

यही विचार कभी २ तुम्हारे पिता जी को भी हो आता है पर कौन इस रहस्य की खोज करे ।

मान लिया भइया का प्रेम उससे अकाट्य है । फिर क्या होगा, मा ।

बेटी ठीक कहती है । आज मैं सारी परिस्थिति तुम्हारे पिता जी के सामने रखूंगी ।

मध्यान्ह भोजन के पश्चात कुलदीप सिंह जब विश्राम कक्ष में गये तब सूर्यभानु कुंवरि ने मजुला के सुझाव को उनके सामने रखा ।

कुलदीप सिंह यदि उषा से ही विवाह करने की कोई परिस्थिति हमे विवश करने लगी तो देश के प्रमुख गण्यमान विद्वानों, कुल गुरु धर्म केसरी श्री ध्रुवानन्द महाराज, मित्र गण तथा क्षत्री महा सभा के प्रमुख महानुभावो के समक्ष परिस्थिति से अवगत कराकर इन्ही के निर्णय पर विवाह करना उचित होगा ।

कुछ भी हो पर हम लोगों का सनातन अर्जित कुल गौरव तो समाप्त हो ही जायगा ।

विधि के विधान को कौन मेट सका। न तो प्रदीप की कुशाग्र मंजुला उससे मन की बात जान ले।

सायंकाल कुलदीप सिंह विश्राम गृह में [illegible] आने को तैयार हुये। उधर मंजुला अपनी मां के साथ सभी बातें परिस्थितियों पर विचार हुआ। मंजुला अपनी मां की सभी बातें समझकर सीधे प्रदीप के पास पहुंची और उन्हें समीप के एक रमणीय उद्यान में जाने के लिये कहा। दोनों उस उद्यान की सुहावनी हरी भरी दूर्वा पर जाकर बैठ गये और विचार विमर्श करने लगे।

मंजुला ने प्रेम भरे शब्दों में पूछा भइया अपनी बहिन को कितना चाहते है।

जितना धर्म ने बहिन से स्नेह करने का अधिकार दिया है।

भइया शास्त्र क्या पढ़ गये मानों दुनिया की मर्यादा सिख गये। घर में भी शास्त्र की व्याख्या करने लगे।

मैं बहिन की ममता और दुलार जानता हूं। तर्क वितर्क से क्या लाभ।

मंजुला ने पुनः स्नेह भरे भाव में कहा तो बात कुछ भइया सच २ बताओगे?

अपनी बहन से भला क्यों नहीं।

मंजुला : सुना है तुम उषा से विवाह करना चाहते हो?

प्रदीप ने मन्दमुस्कान से कहा : भाग्य जिधर ले जाय।

भइया भाग्यवादी कब से हो गये। दार्शनिक और भाग्यवादी का क्या मेल?

दार्शनिक कर्मवाद और भाग्यवाद दोनों पर विश्वास करता है। कृत्य कर्मों पर पश्चाताप नहीं करता।

मुझे तो अपनी निश्चित भावना बताये। उसी के अनुसार रूप रेखा बनाई जाय।

यदि विवाह हो जाय तो ठीक है सांसारिक मोह मेघ और प्रपंच सब शान्त हो जायगा।

पर जब उसकी जाति का कुछ निश्चय नहीं तब लोक लाज कुल की मर्यादा सभी नष्ट हो जायेगी। माता पिता को यदि हृदय वेदना हुई तब क्या होगा?

बिना उनकी आज्ञा मैं उषा से विवाह नहीं कर सकता। पर अन्यत्र भी नहीं। हां। प्रेम तो रहेगा ही।

प्रेम तो प्राणिमात्र से करना चाहिये । परन्तु प्रेम की कोटियां होती हैं । अगर तुम्हारा आदर्श प्रेम वैवाहिक बन्धन से परे है तब कोई दोष नहीं । राधा कृष्ण का परस्पर प्रेम था । उस आदर्श प्रेम के रहते कृष्ण का विवाह रुक्मिणी से हुआ । धर्म और लोक-लाज की मर्यादा का ध्यान रखते हुये विवाह अपने परिवार के अनुरूप करे । परन्तु यदि तुम में वासना भी घर कर गई है तब मुझे सुस्पष्ट बतादें । वैसा मार्ग ढूंढा जाय ।

मेरी तुलना कृष्ण भगवान से करना व्यर्थ है । उस भक्ति मार्ग पर जाने के लिये बड़ा ध्यान ज्ञान, जप और तप चाहिये । तुम्हें वह मार्ग निकालना है जिससे सब कार्य शोभा से हो जावे ।

भइया ने अब अपने मन की बात उगली ।

मेरी बहिन जो मांगेगी वह दूंगा ।

अपने भइया के लिये हर सम्भव उपाय ढूंढकर शोभा पूर्वक उषा से विवाह करवा दूंगी ।

इतना कहकर दोनों उद्यान से उठकर घर आये । इस वार्तालाप ने सायकाल छै बजा दिये । सबने साथ बैठकर जलपान किया तत्पश्चात प्रदीप उधर उषा के पास चले और मंजुला इधर अपनी मां से प्रदीप की सारी वार्त्ता कहती । इतने में कुलदीप सिंह आ गये । सब लोग घन्टों परिस्थिति पर तर्क वितर्क करते हुये इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि प्रदीप से सुस्पष्ट बात करने के पश्चात ही कुछ निर्णय करना उचित होगा ।

उधर प्रदीप ने उषा के पास आकर सारी परिस्थिति बताई ।

उषा दीर्घ निश्वास लेकर बोली ' मैंने आदर्श जीवन व्यतीत करने के लिये आरम्भ मे ही कहा था । आपको अपने माता पिता की आज्ञानुसार विवाह करना चाहिये ।

प्रदीप : तुम मेरे रोम कूपों में रमी हो, उषे ।

उषा के नेत्रों से प्रेम अश्रु के दो बिन्दु अरुणाभ कपोलों पर ढुलक पड़े ।

प्रदीप ने उसके कोमल करों को अपने हांथों में ग्रहण करते हुये सान्त्वना दी और अपने भवन वापिस आये ।

प्रात काल साम्ूहिक जलपान के अवसर पर कुलदीप सिंह ने पूछा ? रात्रि मे भोजन क्या नहीं किया था, बेटा ।

कुछ मानसिक असंतुलन था, पिता जी ।

यहीं तुम्हारा विचार उषा से ही विवाह करने के लिए आमन्त्रित कर रहा है।

मैंने सारी परिस्थिति सोच विचार के बना दी है।

कुलदीप : मुझे मालूम हुआ। परन्तु जाति के अनुसार पर इसका विचार कैसे सम्भव है।

हां। यदि कुण्डली ही न मिली तो सारा कल्पना व्यर्थ हो जायेगी।

सूर्यभानु कुंवरि ने कहा — मैं जानती हूं कि मेरा पुत्र आज्ञा के विरुद्ध एक पग भी आगे नहीं चल सकता।

मंजुला : भइया स्वयं उषा की कुण्डली मंगवाने का प्रबन्ध कर सकें।

कुलदीप ने प्रदीप से सस्नेह कहा। तुम अब बालिग वर्ष के हो गये। सोलह वर्ष पश्चात् "प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्र मित्र समाचरेत्" इस वाक्य से पुत्र भी मित्र के समान हो जाता है। अतः अब तुम्हें निःसंकोच विचार प्रकट करना चाहिये।

पिता जी की जो आज्ञा।

यदि उषा से सम्बन्ध बन गया फिर उसके परिवार में कौन है जो उसका वैवाहिक कृत्य सम्पादित करेंगे, प्रदीप।

केवल मामा–मामी के और कोई भी उसके परिवार में शेष नहीं रहा। एक बूढ़ी मां थी उसका भी गत वर्ष शरीर शान्त हो गया। परन्तु उसका अपना एक समाज है जिसमें संसार के बड़े २ दार्शनिक हैं। उसके अतिरिक्त वह स्वयं धर्म परायणा है। साक्षात् लक्ष्मी ने स्वयं अवतरित होकर उसके उजड़ घर को कञ्चन महल बना दिया और उसकी मरुभूमि एक सुन्दर वाटिका में परिवर्तित हो गई।

यह सुनकर कुलदीप सिंह और सूर्यभानु कुंवरि आश्चर्य चकित हो उठे।

मंजुला व्यङ्गात्मक भाव से बोली हमारे भइया बिना किसी विशेष आकर्षण के ही प्रभावित नहीं हुये।

कुलदीप : मैं भी यही सोचता कि मेरा पुत्र अनजाने में अपने जीवन को गर्त में झोंकने वाला नहीं।

पिता जी ! उषा देवी के समान है।

मंजुला विहंसकर बोली : भइया कैसे प्रशंसा के पुल बांधने लगे।

सूर्यभानु कुंवरि : हमारा पुत्र असत्य नहीं बोलता। क्या किसी का डर पड़ा है।

इन सब विचारों के आदान प्रदान में संकोच का पर्दा हटा और प्रदीप का साहस बढ़ा। दूसरे दिन उषा के पास जाकर उसकी जन्मतिथि, वार, संवत्, तारीख, समय आदि पूछा और अपने पिता जी को लाकर दिया।

कुलदीप सिंह ने एक प्रसिद्ध दैवज्ञ को बुलवाकर उषा के जन्म काल का ब्योरा दिया और यथा शीघ्र एक जन्माग तैयार करने के लिये आग्रह किया। ज्योतिषी जी दूसरे ही दिन अथक परिश्रम कर एक विशाल कुण्डली बनाकर लाये जिसमे तीनो जन्म का संस्कृत में उल्लेख था।

कुलदीप सिंह ने दैवज्ञ जी को प्रणाम कर शुभाशुभ फल का सारांश जानने की इच्छा प्रकट की।

विद्वान ज्योतिषी ने कहा इस कन्या का जन्माग विलक्षण है। पूर्व जन्म मे यह देवी थी। एक ऋषि के श्राप से पतित होकर उसका जन्म इस भूलोक मे एक अन्त्यज के घर में हुआ। यह एक महात्मा की मानस पुत्री है और कई ऋद्धि सिद्धिया लेकर आई है। इसका विवाह क्षत्री कुल में कुलदीप सिंह के सुपुत्र प्रदीप सिह के साथ होगा। इस संयोग से दोनों धर्म क्षेत्र में जीवन लगाकर सुयश कमायेंगे। इसके दो पुत्र सूर्य और इन्दु नाम के उत्पन्न होंगे और सन्ध्या नाम की एक पुत्री होगी। जिसकी कीर्ति दिग् दिगन्त विकसित होगी और विश्व मे धर्म का पुनरोदय होगा।

त्रिकालज्ञ के इस फलादेश को सुनकर कुलदीप सिंह का सारा परिवार मुग्ध हो उठा।

कुलदीप : आपके इस विलक्षण फलादेश ने स्वयं निष्कर्ष निकाल दिया।

दैवज्ञ : आत्म तुष्टि के लिये वह भी पक्ष देख लिया जाय। सूर्यभानु कुवरि ने अन्दर से प्रदीप की कुन्डली निकालकर उक्त विद्वान के समक्ष रखा।

दोनों कुन्डलियों का मिलान कर दैवज्ञ ने कहा गुण गणना विचार से छत्तीस गुणो मे अट्ठाइस गुण बनते हैं। दोनो देवतागण, ब्राह्मणवर्ण, और दोनो की राश्यैक्यता होने से उत्तम बनता है। ग्रहों का योग सम्बन्ध, दृष्टि सम्बन्ध तथा उसके बलाबल सभी संतुलित है। यह मिलान सर्व दोषो से रहित है।

कुलदीप सिंह ने गणितज्ञ को यथेष्ट सम्मानित किया।

इस निर्णय के पश्चात कुलदीप सिह सपरिवार बैठकर भावी कार्यक्रम पर विचार विनिमय करते।

कुलदीप ने प्रदीप से कहा — इस तिथि के विधान और नीति में कहा। पर हमें लोकाचार के सभी अंगों की पूर्ति करना है। इसलिये शास्त्र के वर्ग में कुछ चोटी के बीस विद्वान, षट्शास्त्री, मुख्य सम्प्रदायों एवं सिखगण तथा गुरु गुरु और आनन्द जी के अतिरिक्त कुछ अन्य धर्माचार्यों को आमन्त्रित कर सभी से व्याख्या कर सम्यक रूपेण निर्णय प्राप्त कर लेना अधिक उत्तम होगा।

यह तो और भी उत्तम होगा, पिता जी।

कुलदीप सिंह ने अपने दीवान मान् प्रताप द्वारा नगर के प्रतिष्ठित कर्मकाण्डी तथा पूर्वोक्त दैवज्ञ को बुलवाया और—प्रणाम कर कहा : आप मुझे एक धर्म सभा आयोजित करने के निमित्त उसके निमन्त्रण पत्रों का प्रकाशन तथा अन्य सभी कार्यों का मुहूर्त निश्चय कर बतायें जिसके द्वारा हम अपने लक्ष्य में सफल हो सकें।

माघ शुक्ल बसन्त पंचमी तिथि थी, प्रकृति पीत बसना हो चली थी। आम्र वृक्ष की शाखाओं पर मञ्जरियां फूल रहीं थी एवं श्यामला भूमि पर सरसों के पीले फूल नाच रहे थे और आम्र-मंजरी के संग बसन्ती बयार के सिहरन को पाकर पुलकित हो रहे थे। ऐसे मधुमास की सन्ध्या में धर्म–सभा समारोह करने का मुहर्त निश्चित किया गया। सभी विद्वानों को शुभ मुहूर्त से पन्द्रह दिन पूर्व आमन्त्रित किया गया। एक सप्ताह के अन्तर्गत लगभग सभी की स्वीकृति उपस्थित होने की आने लगी। सभा का पण्डाल अति ही सुन्दर सजा था। सभा स्थल पक्ष और विपक्ष दोनों विचारकों को लेकर बना था। बड़े २ शास्त्रार्थ महारथी विभिन्न आकृति और वेष भूषाओं वाले आयोजित समारोह में प्रातःकाल उपस्थित हुये। सभा का रूप प्राचीन परम्पराओं की झांकियों से अलंकृत था। विशाल दरियां और सुन्दर कालीन बिछे थे। चारों दिशाओं में सुगन्धित फूलों से बन्दनवार बंधे थे। भीनी २ पुष्पों की सुगन्ध वायु और भी मन को मोहित कर रही थी। चार बजे सायंकाल सभा स्थल पर सारे विद्वान उपस्थित हो गये। प्रदीप और उषा के विशेष भक्तानुयायी देश विदेश के विद्वान, नर नारी जिसमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, सिख, जैन, बौद्ध, सूफी आदि समस्त धर्मों के अनुयायी थे, सम्मिलित हुये। जिस समय उषा इन सबका नेतृत्व करती हुई सभा स्थल पर पहुंची उसके प्रत्येक पग पर दैवी शक्ति अपना तेज आलोकित करती थी।

सभा का कार्य संचालन कुलदीप सिंह ने स्वयं अपने हाथ में लिया था और प्रदीप सभास्थल के द्वार पर खड़े सबको अभिवादन कर रहे थे।

भारत के सर्वोत्कृष्ट विद्वान एव षट्शास्त्री महामहोपाध्याय आचार्य प्रवर धर्मेन्द्र धनञ्जय जी से कुलदीप सिंह ने सभा की अध्यक्षता ग्रहण करने के लिये आग्रह किया। समस्त उपस्थित विद्वानो ने समर्थन तथा अनुमोदन किया।

अध्यक्ष पद पर बैठते ही उषा और प्रदीप तथा अन्य चार वेद पाठ करने वाली पीत वस्त्रों से अलंकृत कुमारिकाओं द्वारा सस्वर वेद पाठ से समस्त वातावरण पवित्र होकर गूंज उठा। उषा के कण्ठ की सरसता ने समस्त उपस्थित प्राणियो की भावनाओं को केन्द्रीभूत कर लिया।

कुलदीप सिंह ने सभा की कार्यवाही आरम्भ करते हुये कहा. आज हमे देश विदेश के दिग्गज विद्वान तथा विभिन्न विषयों के प्रधानाचार्यो के दर्शन पाकर बडी प्रसन्नता है। हम आप सबके आभारी हैं। उषा ऐसी भारत की देवियां जिनका पाण्डित्य और ज्ञान गौरव, वेद की ऋचाओ का इतना सूक्ष्म अध्ययन और सस्वर वेद पाठ आज दिन भी देखने को मिलता है, इसका हमें गर्व है।

इतना कहते ही अध्यक्ष ने बिना किसी व्यवस्था के कहा ' आप सबने आज की सभा का अध्यक्षीय भार जो मुझे सौंपा उसका मैं आभारी हूं, परन्तु मैं अपनी ओर से देव-पुत्री कुमारी उषा से इस आसन को सुशोभित करने की प्रार्थना करता हू।

उषा सबके मन को आकर्षित कर चुकी थी। सबने एक स्वर से अध्यक्ष का समर्थन किया। कुलदीप सिंह और उसका परिवार यद्यपि उषा को अन्त्यज जानता था फिर भी परिस्थिति का अध्ययन कर सभी की मर्यादा का पालन करते हुये कहा : यह तो मानो हमारी धर्मपुत्री सभा की अध्यक्षता करने अवतरित हुई।

अध्यक्षीय पद पर उषा के आरूढ़ होते ही समस्त उपस्थित विद्वानो ने खडे होकर वेद पाठ किया। उषा के सौन्दर्य एव तेज से सभा स्थल जगमगा उठा।

कुलदीपसिंह ने पुन: खडे होकर कहा ' हमारे भारत की देव पुत्री उषा को वयो वृद्ध दिग्गज विद्वान महामहोपाध्याय श्री धर्मेन्द्र धनञ्जय ऐसे भारत के एक मात्र धर्म पुरुष ने देव पुत्री संबोधित कर अपनी ओर से अध्यक्ष पद पर आसीन किया और समस्त उपस्थित विद्वद् वर्ग ने एक स्वर से उसका जिस हृदय तल से स्वागत एव अनुमोदन किया इसमें अवश्य कुछ दैवी शक्ति का हाँथ है। इस अलौकिक घटना ने भूमि को ऐतिहासिक बना दिया।

सम्प्रति विषय से यद्यपि सभी उपस्थित महानुभाव परिचित है तथापि सभा के नियमानुसार कार्यवाही आरम्भ करने के पूर्व आपके समक्ष पुनः विषय को रखना आवश्यक है।

आज का विषय है 'धर्म और जाति' अर्थात् भारत की चार हिन्दू जातियां जिन्हें हमारा धर्मशास्त्र, ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र के नाम से पुकारता है क्या इन जातियों में परस्पर विवाह हो सकता है ? यदि हो तो कैसे ? और यदि 'ना' तो क्यों ? सभी सप्रमाण व्यवस्था देने की कृपा करें।

दूसरा विषय हमारे सामने एक और आया है। वह यह कि क्या विश्व के सभी प्राणी जातीय बन्धनों से ऊपर उठकर अन्तर्राष्ट्रीय विवाह के बन्धन में बंध सकते हैं ? यह विषय यद्यपि अनौपचारिक है फिर भी विचार विनिमय के लिये रख दिया जाता है।

प्रस्तुत विषय पर सर्व प्रथम भारत के प्रख्यात विद्वान श्री [illegible] षट्शास्त्री अपना शास्त्रीय विवेचन देने की कृपा करें।

श्री षट्शास्त्री जी--

परम आदरणीया अध्यक्ष महोदया उपस्थित विद्वत् मण्डल तथा सज्जन जनार्दन।

सृष्टि की उत्पत्ति और सृजन काल से आज तक धर्म-ग्रन्थ और इतिहास दोनों का सूक्ष्म अध्ययन करने से तथा उनके अर्थों का पर्यालोचन विश्लेषणात्मक, अन्वेषणात्मक, गवेषणात्मक आदि के आधार पर भूमण्डल विभागों में जगत को तथा उनमें रहने वाले प्राणियों को हम धर्म ग्रंथ से एक ही उस महान् ईश्वर का अंश मानते हैं। इस अवनीतल पर जितने भी अवतार हुये सबने अपने अपने ज्ञान-विज्ञान का रहस्य बताया। विश्व के सभी स्थलों पर प्रकृति ने विभिन्न प्रकार के प्राणियों को जन्म दिया तद अनुरूप देश और काल के अनुसार उनकी भाषायें और उनका समाज बना। इसी प्रकार त्रिगुणमयी प्रकृति ने पशु, पक्षी, कीट, पतंग उत्पन्न किये। जिनके रूप, स्वर आदि में विभिन्नतायें हुई। सद्धर्म कार्यों में रत प्राणियों का स्वयं एक समाज सुसंगठित हुआ जिसे ब्राह्मण के नाम से सबोधित किया जाने लगा। जिस समाज में स्वाभाविक वीरता के गुण परिलक्षित हुये उन्हें क्षत्री के नाम से पुकारा जाने लगा इसी प्रकार व्यापार में जिनकी स्वाभाविक रुचि हुई उन्हे वैश्य और सेवा भाव में जो रत रहते उन्हें शूद्र के नाम से कहा गया। इस प्रकार एक समाज को चार भागों में बांटकर उन्हें चार वर्णों से अलंकृत किया जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के नाम से पुकारे जाने लगे। इन चार जातियों ने अपने अपने गुण कर्म और स्वभाव को परखते हुये समाज को सींचा और पल्लवित किया। समाज के इन चारों जातियों में कुछ काल तक परस्पर सौहार्द रहा परन्तु कुछ समय बाद इनमें समता का बीज अंकुरित हुआ। वर्णों के भेदाभेद

की अपेक्षा जातियों में भेद भाव पैदा हुआ। इन जातियों में सद् असद् गुण और स्वभाव से युक्त प्राणियों का जन्म होना प्रकृति का लक्षण था। वर्ण की अपेक्षा जातीयता की संकीर्णता में बंधे हुये उन चारों जातियों में विकार पैदा हुआ जिसने बढ़ते २ उन चारों जातियों की दीवारों में दरारें पैदा कर दी। वेद में भी जहां तहां वर्णों का उल्लेख मिलता है पर किसी जाति विशेष का नहीं।

'वर्ण' शब्द कर्मणा है या कि जन्मना।

श्रुति में—

> ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
> ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥

अर्थात्—अस्य यद् मुखं आसीत् स ब्राह्मणः कृत, यद्बाहू स राजन्यः कृतः, यद् ऊरू स वैश्य कृत., यद् पद्भ्या अजायत स शूद्र कृत। इस आशय से जो मानव-समाज में सर्व श्रेष्ठ थे वे वेद के मुख स्वरूप ब्राह्मण के नाम से संबोधित किये जाने लगे; जो समाज के रक्षक अङ्ग थे उन्हें बाहुरूप क्षत्रिय, जो जंघा रूप थे उन्हे वैश्य और जो पद स्थानीय अर्थात् समाज की सेवा भाव में थे उन्हें शूद्र नाम की संज्ञा दी गई?

संस्कृत व्याकरण के नियम से आसीत, अजायत्, कृत. यह तीन क्रिया पद हैं जिनका अर्थ 'था' उत्पन्न हुआ और किया गया, होता है।

'वर्ण—व्यवस्था' दो शब्दो के समास से बना है। गुण क्रियादि का बोध कराने वाला "वर्ण" शब्द अच् प्रत्यय से बना है। व्याख्या—सुधा नामक अमरकोष की टीका में "वर्णयति" इतिवर्ण. लिखा है। अत. वर्ण शब्द का प्रयोग रूप, रङ्ग, गुण, अक्षर आदि अनेक स्थानों पर किया जाता है।

"व्यवस्था" शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत व्याकरण के नियम से वि + अव = उपसर्ग पूर्वक स्थित्यर्थक "ष्ठा" धातु से बना है। जिसका अर्थ विशेष रूप से अवस्थित होना, सिद्ध होता है।

प्राणी अपने २ स्वभाव के अनुसार अपना २ समाज बनाता रहता है। इसमें गुणकर्म की सदैव प्रधानता दी गई है। समाज बनते और बिगड़ते रहते हैं। जातीय बन्धनों को हमारे ऋषि मुनियों ने कभी नहीं माना। हमारे धर्म शास्त्र में पुराणों की प्राचीनता वेद के समकक्ष मानी है जिसे इतिहास बारबार दोहराता रहता है। पुराणों

ने सुस्पष्ट व्यवस्था ऋषि मुनियों की देन हुये पता कि भीष्म पितामह के पिता राजा सान्तनु ने धीवर जाति की कन्या सत्यवती से विवाह किया। मनु की पुत्री देवहूति का विवाह प्रजापति कर्दम के साथ, शर्याति की पुत्री सुकन्या का महर्षि च्यवन के साथ, राजा गाधि की पुत्री सत्यवती का मुनि ऋचीक के साथ, शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी का राजा ययाति के साथ और वशिष्ठ जी जैसे महर्षि ने अपना विवाह एक अन्त्यज की कन्या अरुन्धती से किया। पुराणादि में—

"हरिणी गर्भ संभूतो ऋष्यश्रृंगो महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम्।
श्वपाकी गर्भ संभूतः पिता व्यासस्य पार्थिव।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम्।
उलूकी गर्भ संभूतः कणादाख्यो महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम्।
गणिका गर्भ संभूतो वशिष्ठश्च महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम्॥

इत्यादि वचन मिलते हैं।

इस प्रकार हमारे ऋषि मुनियों ने जातीय बन्धनों को स्वयं तोड़ कर संसार का मार्ग दिक्दर्शन कराया। फिर हम क्यों नहीं इस संकुचित दायरे से उभर कर जातीय बन्धनो के भेद भाव को समाप्त करते।

इसके पश्चात कुलदीप सिंह ने भारत धर्म महामण्डल के प्रधान आचार्य प्रवर अखिलेश्वर श्री सच्चिदानन्द जी से अपने विचार प्रस्तुत करने की प्रार्थना की।

श्री सच्चिदानन्द जी ने कहा :

आज का विषय है 'धर्म और जाति बन्धन'। यद्यपि यह विषय आज जितना सुलझाया जाता है उतना ही विकृत होता जा रहा है। जिधर देखिये धर्म और जाति के नाम पर स्वार्थी समाज में विष फैलाते रहते हैं। जबकि अधिकांश व्यक्ति अपने २ धर्म कर्म से च्युत हो चुके है। सद्गुणो की अपेक्षा दुर्गुणों का उत्तरोत्तर उभार हो रहा है। फिर भी जातीय बन्धन यत्र-तत्र जकड़ा पड़ा है। वस्तुतः कलि ने धर्म का रूप विकृत कर अधर्म का जामा पहना दिया है।

जाति की व्युत्पत्ति व्याकरण के नियम से 'जायते प्रादुर्भवती + ति जाति" जनि प्रादुर्भाव से तिङ् प्रत्यय होने पर बनी है। जिसका अर्थ जन्म से उत्पन्न होना है।

ब्राह्मण के सम्बन्ध में "ब्रह्मणा अपत्यं ब्राह्मणः" तस्यापत्यम् यह व्याकरण का सूत्र अपत्यार्थ में और जाति वाचक में अण् प्रत्यय करता है, अन्यत्र नहीं। 'ब्राह्मोऽजातौ' सूत्र से जातिवाचक जहां नहीं है वहां ब्राह्मण शब्द नहीं बनता है।

इन सूत्रों के प्रमाण से जाति की उत्पत्ति जन्म से ही सिद्ध होती है। प्राण-संकट में धर्म स्वरूप जाति रक्षा—

महर्षि बालमीक ने कहा है—

ब्रह्म हत्या कृतं तापं, हृदयात्दपनीयताम्।
न द्विजाति रहं राजन्, साभूत्ते मनसो व्यथा॥
शूद्रीयामेन वैश्येन जातो नर वराधिप।

अर्थात्-राजा दशरथ से श्रवण कुमार ने प्राण संकट के समय कहा : मैं शूद्रा माता से और वैश्य पिता से उत्पन्न हूं, अतः ब्रह्म हत्या के पाप का भय न कीजिये।

भगवान विष्णु ने भी कहा है—

"अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनु" अर्थात् ब्राह्मण विद्यायुक्त हो या न हो वह मेरा ही स्वरूप है।

श्री मद्भागवत के दशम स्कन्ध के पचहत्तरवें अध्याय मे युधिष्ठिर द्वारा राजस् यज्ञ प्रकरण मे भगवान श्री कृष्ण ने "गुरु शुश्रूषणे जिष्णु कृष्णः पादावने जने" इन वाक्य प्रमाण से आये हुये ब्राह्मण अतिथियो के पांव पखारने का काम किया था।

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र ने भी स्वयंवर में लक्ष्मण परशुराम संवाद मे परशुराम को ब्राह्मण समझकर प्रणाम किया था। परशुराम ने एक्कीस बार अभिमानी क्षत्रियों का विध्वंस किया, तथापि वे क्षत्री न कहलाये। महाभारत युद्ध मे द्रोणाचार्य ऐसे ब्राह्मण सेनापति रहे और अनेक युद्धो के महारथी रहे। यदि हम कर्मणा के सिद्धान्त को मान लें तो इन्हें भी क्षत्री मानना चाहिये था। अतः इतिहास और पुराण प्रमाणित करता है कि जन्म जाति से ही ब्राह्मणादि की मान्यता है।

शास्त्र इसे स्वीकार करता है कि कर्म और सस्कारों से जातियों मे गुणाधान होता है।

"धर्म चर्यया जघन्यो वर्ण : पूर्वपूर्व वर्ण आपद्यते जाति परि वृत्तौ।
अधर्म चर्यया पूर्वो वर्णः जघन्यं वर्ण आपद्यते जाति परि वृत्तौ॥
यः कश्चित् कस्य चित् धर्मः मनुना परिकीर्त्तितः"

अर्थात दूसरे जन्म में स्वकर्म करते रहने से जाति का परिवर्तन अन्म जन्मान्तर के संस्कार से होता है। इसी प्रकार अधर्म के आचरण से ब्राह्मणादि वर्ण जघन्य योनि मे जन्म लेते हैं।

छान्दोग्य उपनिषद् में भी ऐसा उल्लेख है कि ब्राह्मण, क्षत्री, चाण्डाल, शूकरादि योनियों को मानव कर्म से ही प्राप्त करता है।

इसके बाद कुलदीप सिंह ने आचार्य प्रवर श्री बैकुण्ठ शास्त्री खिस्ते से अपने विचार प्रस्तुत करने के लिये आग्रह किया।

श्री खिस्ते महोदय जी ने कहा। जाति की उत्पत्ति अपने २ गुण धर्मों से अलंकृत है। हमारे ऋषि मुनियों के काल से इसका स्वरूप वर्गों मे काल से चला आ रहा है। जिस प्रकार चार वेद, चार पीठ इत्यादि शास्त्रों मे माने गये है। ऐसे ही विभिन्न देश विदेश वासियों ने शनै. शनै गुण कर्मानुसार चार वर्गों अर्थात श्रेणियों मे समाज का बटवारा कर दिया। भारत मे इन्हें ब्राह्मण क्षत्री, वैश्य, शूद्र के नाम से पुकारा जाने लगा। मुसलमानी देशों मे इन्हें शेख, सैयद, मुगल और पठान के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा। इसी प्रकार अन्य धर्मो के प्रवर्तकों ने एक दूसरे की देखा देखी चार वर्गों का वर्गीकरण किया। इसी क्रम से जन संख्या भी बढ़ते २ आगे २ कर्मक्षेत्र बनाती गई जो उन चार जातियों मे अगणित उपजातियां और समाज अलग अलग टुकड़ियो मे बंट गईं। जिस लक्ष बिन्दु से चार जातिया समाज की चारों दिशाओं की चार लोह स्तम्भों की भांति खड़ी थीं आज इन उपजातियों एवं उस समाज के वर्गीकरण ने उन्हे वेधित कर दिया है। विवेक कहता है कि इन वेधित स्तम्भों को खोद कर संसार में एक ऐसा मेरु स्तम्भ खड़ा करें जो अनेकता में एक रूपता का संदेश देकर विश्व के समस्त प्राणियो मे सच्चे सुख और शान्ति का मार्ग दिग्दर्शन करा सके।

कुलदीप सिंह ने इसके बाद ज्योतिष तन्त्र के प्रकाण्ड विद्वान आचार्य प्रवर श्री धर मिश्र "दैवज्ञ" जी से ज्ञान विज्ञान के आधार पर जातिवाद पर अपनी तार्किक व्यवस्था देने के लिये प्रार्थना की।

आचार्य श्रीधर मिश्र ने कहा: जातियों की उत्पत्ति और उनका विकास धर्म शास्त्र और इतिहास दोनों में मिलता है। सृष्टि का सृजन प्राणियों की उत्तरोत्तर उत्पत्ति से होता गया। ज्यो २ जन संख्या बढ़ी मानव ने अपना समाज बनाया। कर्मानुसार विभाग बांटे जो जातीयता के ढाचे में ढलता हुआ अपने जन्म सिद्ध अधिकार

का दावा कर बैठा। इन जातीय बन्धनों की बेड़ियों से जकड़े हुये समाज को काल की गति ने ललकारा जो आज राष्ट्र का वैर बनकर संसार को जलाने का जाल बिछाता है।

ज्योतिष वेद का चक्षु माना गया है। ज्योतिष के सिद्धान्त से कर्म को ही प्रधानता दी गई है। वर्णों का वर्णन ज्योतिष शास्त्र मे सर्व प्रथम मिलता है। विशेष कर वैवाहिक कृत्यों में वर्ण को प्रथम स्थान दिया है।

वर्णों वश्यं तथा तारा योनिश्च ग्रह मैत्रिकम्।
गण मैत्रं भकूटं च नाडी चैके गुणाधिपः॥

वर्ण का सम्बन्ध किसी जाति वाले व्यक्ति की जाति से नहीं अपितु उसके कर्म से है। ज्योतिष शास्त्र मे भी ब्राह्मण, क्षत्री वैश्य, शूद्र के क्रम से चार वर्णों का उल्लेख किया गया है। पर उसका सम्बन्ध पूर्व जन्म के सञ्चित कर्मों से है। अत यदि कोई प्राणी ब्राह्मण जाति में जन्म लेता है परन्तु ज्योतिष की गणनानुसार वह शूद्र वर्ण का होता है शास्त्र उसे उसी वर्ण का मानेगा भले ही वह ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न हुआ हो। इसी प्रकार यदि कोई प्राणी शूद्र जाति मे जन्मा हो और ज्योतिष के सिद्धान्त से वह ब्राह्मण वर्ण की गणना मे आता है तो उसे शूद्र कुल मे जन्म होते हुए भी ब्राह्मण वर्ण की संज्ञा दी जाती है। ज्योतिष शास्त्र में लिखा है कि—"वरस्य वर्णतोऽधिकार वधूर्न शस्यते बुधै।" श्रेष्ठ वर्ण कन्या के लिये धर्म शास्त्रों में रूप-गुण-बल और यश पर विचार किया है। "वर्णों रूपेऽक्षरे भेदे यशोगुण कथामु च" लिखा है।

इस प्रकार शास्त्रीय दृष्टि से उनके जीवन का अध्ययन करने से उनके गुण कर्म भी उसी प्रकार के होते है। हमारे ऋषि मुनियों के लोक मे जात पात का कोई स्थान नहीं दिया गया। एक ही ऋषि की सन्ताने सभी जातियो मे पाई जाती हैं जो कि विभिन्न जातियों के गोत्रो का परिचायक है। जैसे कश्यप ऋषि की सन्तानें कश्यप गोत्रीय कहलाईं, जबकि कश्यप गोत्र ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्रादि सभी जातियों मे पाया जाता है। इसी प्रकार सभी ऋषियो की व्यवस्था है। अत. ऋषि मुनियो के वेद प्रणीत वाक्यानुसार तथा उनके रचे हुये एवं ज्ञान विज्ञान की कसौटी पर कसे हुये सिद्धान्तों के आधार पर जात पात का कोई महत्व नही माना गया। फलत: कर्म के सिद्धान्त पर वर कन्या दोनों एक ही वर्ण के हो तो विवाह शास्त्र सम्मत माना गया है।

कुलदीपसिंह ने सभी उपस्थित विद्वानों से अपने अपने विचार व्यक्त करने की प्रार्थना की पर सभी मौन रहे। अन्त में कुलदीपसिंह ने परम विदुषी देव पुत्री कुमारी 'उषा' से अपने अध्यक्षीय भाषण देने के लिये प्रार्थना की।

देव पुत्री कुमारी उषा ने अपने मुक्त कण्ठ से सर्व प्रथम भगवत्-आराधन के दो पद सुनाने के पश्चात अपना मधुमय भाषण आरम्भ किया। परब्रह्म कोटि नायक महा प्रभु तथा आदरणीय विद्वद्जन!

आज इस पुनीत नगरी की तपोभूमि पर भारत के महान विद्वान तथा तपस्वी-जन उपस्थित हुये हैं। यह हमारा सौभाग्य है। आज के प्रतिपादित विषय 'धर्म और जाति पर बड़े २ विद्वानों ने तार्किक भाषण दिये। सभी ने गम्भीर शास्त्रीय व्यवस्थायें दी। अत. सभी आदर के पात्र हैं। वास्तव में धर्म और जाति का सम्बन्ध अति काल से अविच्छिन्न चला आता है। जाति का नाना समाज विशेष से रहा। जो अपने २ गुण धर्मों के अनुसार विभिन्न रूप को धारण करता हुआ बना। जैसे-ब्राह्मण-धर्म, क्षत्री-धर्म, वैश्य-धर्म, शूद्र-धर्म इत्यादि। इन चारों जातियों में धर्म शब्द सन्निहित है। यहां पर ब्राह्मण-धर्म का अर्थ उनके कर्मों का परिचायक है। इसी प्रकार क्षत्री, वैश्व, शूद्र अपने २ धर्म कर्मानुसार गुणों के परिचायक है।

ब्राह्मण का अर्थ है "ब्रह्म अधीते जानाति वा इति ब्राह्मण." अर्थात वेद तत्व को जानने वाला ब्राह्मण।

क्षत्री का अर्थ "क्षतात् (कष्टात् जनान्) त्रायते इति क्षत्रियः" अर्थात् समाज को सुव्यवस्थित कर कष्ट से मुक्त करना, क्षत्री।

वैश्व का अर्थ "विशन्ति यस्मिन् जना इति वैश्य. अन्न वस्त्रादि से मानव का पोषण करना, वैश्य।

शूद्र का अर्थ "शोचतीति शूद्रः" अर्थात विचार-मंथन कर सेवाभाव में रत रहना उसे शूद्र कहा है।

सभी जातियों में धर्म की प्रधानता है। इससे सुस्पष्ट सिद्ध होता है कि धर्म से सुनियन्त्रित समाज था।

हमारे ऋषि मुनियों ने विशेष परिस्थितियों में अनेक धार्मिक व्यवस्थायें देते हुये उनके व्यविधान बताकर सब कुछ अपने अधिकार में रखा। धर्म के दस लक्षणों

पर विचार करने से संसार मे आज दिन कुछ ही ऐसी विभूतियां सभी लक्षणों से युक्त होगी परन्तु एक दो लक्षण बुद्धि वालो की झलक अवश्य किन्ही महान पुरुषो मे दिखाई पड़ती है। उनमें भी दृढ़ता की प्रतिभा आभासित नही होती। परन्तु जो धर्म अथवा समाज जातीयता का रूप देकर आदि में उठा और पनपा था उनमें अब धर्म के उक्त लक्षणों का अभाव हो जाने से विभिन्न प्रकार की विषमतायें आ गई जिसके परिणाम स्वरूप टुकड़ों मे बंटता हुआ समाज का वह स्वरूप छिन्न भिन्न हो गया। यही गति विश्व के सभी धर्म और जातियो की हुई। धर्म प्राणिमात्र का है। जो धर्म के लक्षणो को धारण करेगा धर्म उसी का होगा। जहा तक दो प्राणियो के वैवाहिक जीवन का प्रश्न है। इसका बहुत कुछ सम्बन्ध आध्यात्मिक तत्वो से है। दो प्राणियो का मिलन उनके विचार, आहार-विहार और उनके स्वाभाविक गुण यदि संतुलित और सौम्यता रखते हों तो ऐसा सम्बन्ध आदर्श जीवन का प्रतीक है। ऐसी स्थिति मे उन दो प्राणियो का बिवाह बिना किसी जातीय भेदभाव के किया जा सकता है।

धर्म शब्द विविध भावनाओं का उद्बोधन करता है। "जनं पतन्नम् धरतीति धर्मः" अर्थात् गिरते हुये मानव को जो रोके उसे धर्म कहते है। किसी वस्तु या व्यक्ति मे सदा रहने वाली उसकी मूल वृत्ति को धर्म कहते है। किसी जाति, वर्ग, पद आदि के निमित्त निश्चित किया हुआ कार्य, व्यवहार या कर्तव्य जैसे सेवा-धर्म, ब्राह्मण-धर्म, क्षत्री-धर्म, वैश्य-धर्म, मानव-धर्म इत्यादि को भी धर्म कहते हैं। ईश्वर आदि विशिष्ट महापुरुषों के सम्बन्ध में विशेष प्रकार की आस्था, श्रद्धा और विश्वास जिसमें सद्गुणों की भावना उद्बोधित हो उसे धर्म के नाम से पुकारा जाता है। धर्म को मत, सम्प्रदाय, जाति, पथ, मजहब, रेलीजन, नैतिक व्यवस्था नीति, कानून, शास्त्र आदि विविध नामो की संज्ञा देकर दुनिया ने इसे अपने २ आवरण से ढंक लिया है। पर सभी की आधारभित्ति एक ही है। विश्व का समस्त प्राणी धर्म और जाति के रूप में अपने २ गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार नाता जोड़ता आया है। वेदांग ज्योतिष ने इस वैवाहिक जीवन का अति ही सुन्दर धार्मिक और वैज्ञानिक रूप से प्रतिपादन किया है। उसमें वर्णों को लिया है जाति को नही। स्त्री का दाम्पत्य जीवन किस प्रकार सुखमय हो सकता है। इसका विस्तृत विवेचनात्मक वर्णन ज्योतिष शास्त्र ने किया है। रोम और ग्रीस ने ज्योतिष शास्त्र के ज्ञान विज्ञान दोनों पक्षों को बहुत ही अच्छे ढंग से बतलाया है। गीता मे भगवान कृष्ण ने चतुर्थ अध्याय के १३वे श्लोक में "चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागश"

जो कहा है वह चतुर्वर्ण क्या है जिनसे सृष्टि की उत्पत्ति हुई। वस्तुतः शब्द विज्ञान के तत्व बीज को देखा जाय तो ओम् एवं अहम् यही चार वर्ण है जिनके आकर्षण एवं विकर्षण में पञ्चतत्व का रूप प्रकट होता है। यही (अ–उ–ह–म्) वर्ण-माला के अन्तर्गत चार मूल वर्ण चराचर जगत में व्याप्त है।

तत्वज्ञानी ऋषि मुनियों ने इन चार वर्णों के सम्बन्ध में कहा है कि —

"ऊँकार हुँकार मकारे, अकार हकारद्वयम्,
चातुर्वर्ण्यं भवेत् सृष्टिः

अतएव वर्ण व्यवस्था किसी जाति या दल-वर्ग का परिचायक नहीं अपितु वह मूलभूत तत्वों की आधार भित्ति पर वर्ण–माला की शक्ल में पिरोयी हुई सृष्टि का सृजन करती है।

साराश में हमें मानना पड़ेगा कि ऐतिहासिक युग में आगे के लिये जब हम उपरोक्त परिस्थितियो पर ध्यान देते हैं तो जाति समाज का मूल्यांकन करने में हम असमर्थ हो जाते हैं और एक अन्तर्राष्ट्रीय दिशा की ओर बढ़ते हैं जिससे मानव मात्र में आन्तरिक सौहार्द प्रस्फुटित हो। हम परस्पर एक दूसरे को निकट आकर पहिचाने और ममता की भावना जाग्रत करें। धर्म ही एक ऐसा है जो जातीय बन्धनों द्वारा फैले हुये सभी विकारों को धोकर और उन्हें अपने दसों लक्षणों से छानकर विशुद्ध प्राणियो की दुनियां बनाने की क्षमता रखता है। हमारा अन्तःकरण कहता है कि वह दिन अब अधिक दूर नहीं जबकि विश्व की एक संस्कृति और उसका एक संसार होगा जिसमें सारा जातीय और धर्म विषाद स्वतः तिरोहित हो जायगा।

अन्त में कुलदीप सिंह ने विद्वानों को धन्यवाद दिया और अध्यक्षा के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुये कहा, इस धर्म–सभा की अध्यक्ष महोदया ने गीता के चतुर्थ अध्याय के तेरहवे श्लोक की व्याख्या जिस प्रकार तत्वों की आधार भित्ति पर करते हुये वर्ण को वर्णमाला मे पिरोकर सारे जगत को ब्रह्म स्वरूप कर दिया यदि इस आत्म तत्व की वर्ण व्याख्या का प्रसार विश्व की समस्त शाखाओं द्वारा किया

जाय तो निःसन्देह कुछ ही दिनों मे विश्व का समस्त मानव जाति, मत सम्प्रदाय, ऊंच-नीच, रङ्ग भेद आदि सभी भेद भावों को भुलाकर एक रसमय हो जाय।

धर्म सभा मे विभिन्न विचार धारा के लोग के थे। सभा की सारी कार्यवाही समाचार पत्रों द्वारा प्रसारित की गई थी। घर घर धर्म की चर्चा फैली। तरह तरह के विचारो की झड़ी लगी। अनेक प्रकार के व्यंग उपहास ने जन्म लिया। मार्ग में चलते फिरते विभिन्न जाति, धर्म सम्प्रदाय के लोगों मे चहल पहल मची।

नवम पराग

दो ग्रामीण परस्पर बातें करते मार्ग मे चले जा रहे थे। एक का नाम था बिन्दा और दूसरे का सुखई।

बिन्दा : अजुआ अखबरवा मा देखेन कि देश बिदेश केर बड़ा २ विद्वान धरम और जाति केर बन्धन तोड़ि के हम पञ्चन का भुआरी भूमि मा बैठाय दीन्हिन।

सुखई : हाँ भइया बिन्दा। बतिया ऐसेन मालूम पड़ति हवै। पर हम पञ्चन किसानन केरि कौन बिसात। बड़ेन केर बतिया बड़ेन पहिचानैन।

बिन्दा : याक बात बताई। अब दुनिया मा सब कोऊ याक दूसर से बियाह करि सकित हवै। न होय हम पञ्चन अब की गोरि गोरि मेहुरुआ बिलायतिया केर किसानन केरि भौरियाय लाइब। फिर देखेउ भइया कैस चंगा बंनिआ ह्वाति हवै।

सुखई : का ई पास हुइगा। बिलायतियन सबही जतियन केर मेहरूआ भौरियाय सकित हवैं।

बिन्दा : औ का। सबहिन जतियन मा ब्याह होय का चाही। जो जीका पसन्द लागे।

सुखई : ई कैस भा। ब्राह्मन, ठाकुर, बनिया, क्वारी, धनुक, बारी, चमार, पासी, ल्वाध, मेहतर, मुसलमान, ईसाई, सिख, जैन इन सबन मा का ब्याह होइ लागी। ई न होई। जब धरती फाटि जाइ तौ भले ही होइ। हम पञ्चन केर जियत जिन्दगी तो होई ना।

बिन्दा : हम पञ्चन अबहिन आनिब का। घर मा खतुआ ओतेन औ पड़े रहेन। किसान भलाई का जाने। हमार महात्मा लोग कहति हैं कि हमरे देश केर बहुत गरीब मनई जिनकेर खाय का ठिकाना नाही रहा उनका बिदेसिया फुसलाय फुसलाय धरमुआ बदलि डारिन। कैऊ ईसाई हुइगा, तो कैऊ कुछ, एहिसा से ई सब भा। सबका याक धर्म हुइ जाइ तो फिर ई सब बखेड़ा न रही।

सुखई : बिन्दा भइया। हम पन्च याहि तो गावा करित हवै 'सन्तौ नदी बहे यक धारा' आखिर हमार सन्तन केर बानी का खाली जाई। याक दिन तो आवैका रही।

बिन्दा : हा भइया सुखई। सन्तन केरि बानिन की महिमा हम पन्च जानित हवैं।

इसी बीच दो चिर परिचित राही चलते फिरते अनायास एक दूसरे से मिले और सड़क की एक पुलिया पर बैठ कर बातें करते लगे। एक का नाम था सूरज और दूसरे का चन्दा।

सूरज ने पूंछा : चन्दा भाई, क्या हाल चाल है? क्या आप भी कल धर्म सभा में गये थे?

हा गया था। बड़ा आनन्द आया, सूरज।

जब देश विदेश के प्रकाण्ड विद्वानो ने स्वयं ही जात-पात का भेद भाव तोड़ दिया फिर क्या रहा। मन चाहा विवाह कर लिया।

बात तो तब हो जब व्यवस्थापक लोग स्वय अग्रसर हो।

"समरथ को नहि दोष गुसाई" की उक्ति मुझे याद आ गई, चन्दा। बड़े लोगो ने जो चाहा कह दिया और कर भी डाला। आपदा तो मध्यम वर्ग की है। एक ने भी कही ऐसा वैसा विवाह विजाति में किया तो लोग उसे जाति से बहिष्कृत कर देते हैं।

जात पात का कोढ़ समाज से निकलना इतना सरल नही।

जात–पात, ऊंच–नीच, गरीबी–अमीरी, वर्ग–श्रेणी आदि विविध विभाग दुनिया में बनते और बिगड़ते आये हैं। यह सब माया का खेल है।

इतने में एक धर्म गुरूजी हाथ में कमंडल और बगल में मृग चर्म लिये पद यात्रा करते उधर से आ रहे थे। इन दोनों को पुलिया पर बैठे देखकर पूंछा : क्या प्रसंग चल रहा है, युवकों?

दोनों ने धर्म गुरू को देखते ही साष्टांग प्रणाम किया।

चन्दा ने पूंछा : आप तो धर्म गुरू हैं बताइये। अब क्या होगा?

धर्म गुरू ने पूंछा : बात क्या है?

सूरज : देश विदेश के बड़े बड़े धर्माचार्य तथा कोटी के विद्वान आज एक धर्म-सभा में उपस्थित थे। सभी ने धर्म और जाति के बन्धनों को तोड़कर एक विश्व व्यापी धर्म और एक जाति का निर्णय किया। धर्म सभा की अध्यक्ष महोदया परम विदुषी देव-पुत्री कुमारी उषा ने वैदिक सिद्धान्त तथा धर्म द्वारा आत्म तत्व की विवेचना करते हुये विश्व बंधुत्व की भावना जगाकर उपस्थित जन समूह को अपनी ओर केन्द्रित कर लिया।

धर्म गुरु : धर्म हमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का ही पाठ पढ़ाता है। हमारे धर्म शास्त्रों ने सदा इसी सिद्धान्त को स्वीकार किया है। ऋषि मुनियों ने स्वयं अन्त्यज की कन्या से विवाह कर जात-पात का भेद भाव समाप्त करने के लिये उदाहरण प्रस्तुत किये। हमें इसीलिये जात-पात, रक्त-भेद की इति श्री करके "विश्वसंघ" की स्थापना करनी है।

चन्दा : महाराज! क्षमा करें। इसका अर्थ यह है कि इसके उत्तरदायी हमारे ऋषि मुनि स्वयं हैं। जिन्होंने संसार की सारी धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक सुव्यवस्था बिगाड़ी। इनमें तपस्वी, विद्वान, और महात्माओं ने जातीय गुण गौरव को विकृत कर दिया। मिट्टी की हाँडी भी ठोक बजाकर ली जाती है। कुत्ते, घोड़े, घोड़ी आदि की भी नस्ल परखी जाती है। मानव की बात ही क्या। दुनिया में वर्ण व्यवस्था सदा रही। सभी प्राणियों ने मिलकर गुण कर्मानुसार अपना २ समाज बनाया जिस पर ऋषि मुनियों ने पानी फेर दिया। इतिहास और पुराणों को उठाकर देखने से मानव की बुद्धि चक्कर खाती है। ऋषि मुनि होते हुये माया जाल में फंस गये। इस रहस्य को देखकर धीमान धर्म-अधर्म के चक्र में उलझ जाता है।

धर्म गुरु ने कहा : यह सब माया का ही खेल है। उसकी दृष्टि में धीमान और मूर्ख एक समान हैं। अर्थात माया मूर्ख को ज्ञानी और ज्ञानी को मूर्ख बनाती है।

सूरज : माना कि विशेष परिस्थितियों में पड़कर ऋषि, मुनि जन ऐसा करते रहे। पर भारतीय नारी का जीवन सदा आदर्श रहा। भारत में भक्ति, ज्ञान और वैराग्य तीनों का स्थान ऊँचा रहा। जब जात-पात का भेद भाव समाप्त होकर सभी लोग विवाह करने लगेंगे फिर रक्त का शुद्धाशुद्ध भेद न रहकर संसार में वर्ण संकरता की प्रधानता होगी जो विकार बनकर सबको खा जायगी।

धर्म गुरु : शास्त्र विदित वर्ण विचार लोगों ने कई भाव से किये हैं परन्तु विशेष रूप से तीन ही स्वरूप वर्णों के माने गये हैं। कुछ लोगों ने जातीयता से वर्ण

का नाता जोड़ा है । कुछ ने गौर, श्याम, आदि विविध रूप रंग से वर्णों का स्वरूप बतलाया है । पर वर्णों की व्यवस्था का आधार शास्त्रीय और आध्यात्मिक दोनो से सन्निहित है । जो कि सत, रज और तम इन तीनों गुणों से युक्त प्रकृति-जन्य प्राणियो के आविर्भूत होने पर किया गया है । इन वर्णों की आधार-भूमि जिसे हम वर्णाश्रम धर्म कहते हैं उसका तात्पर्य ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यस्थ आश्रमों मे हैं । पर दोनों अवस्थाओं में वर्णों का उल्लिखित रूप चिर स्थाई नही । दोनो एक ही गति से चलने वाले है । उनमें ज्वार भाटा की तरह उतार चढाव दिखलाई पड़ता है जिसका प्रत्यक्ष अनुभव हमें नित्य हो रहा है । ब्राह्मण जाति जो सतोगुणी लक्षणों से युक्त थी, क्षत्री जो वीरता का परिचायक था इन दोनो जातियो मे रज और तम का प्रभाव अधिक बढ़ गया । यही दशा वैश्य और शूद्र जातियों की है । सभी अपने धर्म कर्म से कोसों दूर भागते चले जा रहे हैं । गोरे काले वर्ण की ओर जब हम निहारते हैं तो कोई भी सुशिक्षित विद्वान गोरे वर्ण के प्राणियों की सद् भावना बुद्धि को चुनौती नहीं दे सकता । दोनों के आंकड़े निकालने पर गोरों की अपेक्षा काले प्राणी अधिक सात्विक होते हैं । गोरा प्राणी मन से शतरंग की सी चालें चलाता है जब कि काला प्राणी उतना ही मन से शुद्ध होता है । ज्ञान-विज्ञान दोनों यह तथ्य सिद्ध कर चुका है कि रक्त का सम्बन्ध अर्थात् एक ही गर्भ से उत्पन्न चार प्राणियों की चेष्टायें, आकृति, स्वभाव और भिन्न २ कर्म होते है । चिकित्सा विज्ञान से भी यदि चार सहोदर भाइयो अथवा बहिनो की रक्त परीक्षा की जाय तो कभी २ एक दूसरे के रक्त से भिन्नता होती है । कभी प्राणी इस प्रकार के तर्क प्रस्तुत करता है कि गुलाब के वृक्ष से सदा फूल एक ही सुगन्ध को लिये होता है । परन्तु ऐसा नही । जिस गुलाब के फूलो में जो सुगन्ध भारत की भूमि में उत्पन्न फूलों मे हो सकती है वह सुगन्ध, अमेरिका की भूमि में उत्पन्न पुष्पो में मिलना कठिन है । इसका सम्बन्ध वस्तुत: भूमि की मिट्टी और विभिन्न स्थानों के जलवायु से है । इसी प्रकार नीम, विष और अन्य कई प्रकार के उदाहरण और तर्क मे लोग सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं । पाश्चात्य देशों मे रक्त और वंशानुगत का विचार होता है । परन्तु ऐसे नियम और उदाहरण प्रकृति के सामने कदापि युक्ति संगत सिद्ध नही होते । जबकि नित्य नई घटनायें हमारे सामने घटित होती आ रही हैं । बड़े से बड़ा अपने को उच्च वंश मे जन्म लेने वाला दावेदार निकृष्ट—तम काम करता रहता है । यदि यही उसकी सद्बुद्धि और उस वर्ग का परिचय है तो ऐसा समाज एक दिन समूल नष्ट हो जाता है । कोई भी सुशिक्षित समाज ऐसे वर्ग को एक अभिजात्य वंश का कहना उचित न समझेगा । निष्कर्ष रूप

मे हमे मानना पड़ेगा कि गुण कर्म के आधार पर समाज का जो ढांचा आदि में बना था जिसे हमने जाति, वर्ण के रूप में विभाजित किया था सब विकार युक्त हो गये। इसलिये प्रकृति पुनः अपने गुणों के अनुसार अपने नये समाज की रचना करेगी जिससे समस्त विश्व सुखी और समृद्धशाली होगा।

चन्दा : धर्म गुरू की सभी बातें शिरोधार्य हैं। वर्णाश्रम-धर्म की व्यवस्था सर्वोत्तम है।

सूरज : चार वर्णों का स्वरूप आश्रम के रूप में एक सराहनीय विवेचन है। जिसके अस्तित्व को लोगों ने जानते हुये भी न अपनाया। हमारे महा इन्हीं चार आश्रमों को धर्म का स्वरूप माना है। भगवान कृष्ण द्वारा गीता में कहे हुये उनके चार श्रेष्ठ वर्णों का तात्पर्य इन्हीं चार वर्णाश्रमों से है जो अपने २ गुण कर्म के अनुसार विभाजित किये गये हैं। धर्म गुरू जी ने ब्रह्मचर्य, गृहस्थ वानप्रस्थ और सन्यस्थ इन चार आश्रमो के वर्णों का जो बताया है वह यथार्थ है।

चन्दा : यदि इन वर्णाश्रमों को मानव अपने जीवन में उतार ले तो सारे विवाद और संघर्ष समाप्त हो जायें और धर्म का वास्तविक पुनरोदय हो।

सूरज : इन वर्णाश्रम धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों की व्यापकता किस प्रकार की जा सकती है?

चन्दा : इसका उपाय धर्म गुरू जी निकालेंगे।

धर्म गुरू . इसका एक मात्र उपाय 'धर्म के मूल भूत सिद्धान्त हैं।'

चन्दा आपका तात्पर्य त्रिकाल सन्ध्या, अर्चना आदि से ही होगा।

सूरज : त्रिकाल सन्ध्या-वन्दना करने वाले कलि से प्रभावित हो अधिकांश पाखण्डी बन कर निसिवासर झूठ का व्यापार करते हैं।

धर्म गुरू : धर्म का तात्पर्य मेरा धर्म के उन दस लक्षणों से है जिन्हें शास्त्र ने बारबार दोहराया है। जो सामान्य धर्म की परिधि में माने गये हैं और जो धर्म के मुख्य स्वरूप को अलंकृत करते हैं।

इस प्रसंग के अन्तर्गत चन्दा ने धर्म गुरू जी से अपनी कुटिया में चलने के लिये कर बद्ध प्रार्थना की।

धर्म गुरू: यहां से कितनी दूर है?

सूरज : लगभग दो मील की दूरी पर सेवा नगर में निवास है।

धर्म गुरु जी प्रार्थना को स्वीकार कर साथ चल दिये। आध मील की दूरी पर एक आयोजित समारोह की झलक दिखाई पड़ी। तबला, मृदंग, ढोलक, बासुरी हरमोनियम आदि विविध साज सज्जा के साथ अनेक नर नारियां जाति-भेद दूर करने के उपलक्ष में खुशहाली के गीत गाती और गर्वा नृत्य करती हुई जनता को रिझा रही थी। धर्म गुरू जी को आते ही कुछ लोगों ने उनका स्वागत कर मुख्य मञ्च पर बैठाया।

धर्म गुरू जी प्रभावित होकर बोले : ऐसे आयोजन यदि गांव २ और देश के कोने कोने में कराये जायें तो जात-पात का विवाद समाप्त होने में अधिक विलम्ब न हो।

समारोह के संयोजक श्री कन्हैयालाल आर्य ने कहा : धर्म गुरू जी ने इस आयोजन में पदार्पण कर सोने मे सुहागा का काम किया। यदि हमारे देश के धर्म गुरू-संकल्प ले कर ऐसे आयोजन करने में तल्लीन हो जायें तो संसार "वसुधैव कुटुम्बकम्" का सिद्धान्त शीघ्र अपनाले।

समारोह के मन्त्री श्री प्रकाश वीर बाल्मीकी ने धर्म गुरू जी को धन्यवाद देते हुये कहा : देश के धर्म-गुरू-जन प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में ऐसे आयोजन करते आये हैं जिनमें प्रत्येक जाति और वर्ग के लोग सम्मिलित होते हैं। धर्मगुरू जनो की दुनिया मे जात-पात का क्या भेद भाव। यदि यह लोग अपने २ धार्मिक क्षेत्रो और शिविरो मे इस प्रकार के प्रचार कार्य करने का दृढ संकल्प लें लें फिर जात पात का भेद-भाव छुआछूत का बाह्य पाखण्ड और आन्तरिक वैमनस्य समाप्त हो जाय।

समारोह में आस-पास के ब्राह्मण, ठाकुर, वैश्य, शूद्र, आदि सभी थे। परन्तु अन्त्यजों की संख्या अधिक थी।

ब्राह्मणों ने संदिग्ध भाव से कहा : विशेष परिस्थिति में पड कर विद्वानों ने जात-पात का उन्मूलन करने का उपचार बताया होगा।

क्षत्रियों ने कहा : यह विषय विद्वान पण्डितों तथा धर्माचार्यो का है। हमारी परिधि से परे है।

वैश्यों ने कहा : हमारा विषय एक मात्र धनोपार्जन और धर्म सिंचन है।

शूद्रों ने कहा : हमे सदैव सेवा का भार सौंपा गया है।

अन्य धर्मानुयायियों ने कहा : धर्म के दसों लक्षणों में सार्वभौमिकता है। अतः यह सभी को ग्राह्य है।

इस प्रकार समारोह से निवृत्त होकर कुछ लोग जगह २ टोलियों में बैठकर बातें करने लगे।

धर्म गुरु जी समारोह से उठकर ज्यों ही कुछ दूर पहुँचे, टोलियों में बैठे लोगों ने धर्म गुरु को घेर कर अपने तार्किक प्रश्न करना शुरू किये।

ब्राह्मणों ने कहा : धर्म और जाति दोनों का परस्पर अविच्छिन्न सम्बन्ध है। एक दूसरे के बिना जीवित नहीं रह सकते। जिस प्रकार जीव और देह की तदात्मीयता है उसी प्रकार धर्म और जाति का रूप है।

क्षत्रियों ने कहा : धर्म और जाति का सम्बन्ध अनादि काल से है। धर्म ही ने चार जातियों को जन्म दिया, सींचा और पल्लवित किया। वह धर्म वस्तुतः धर्म नहीं जो स्वयं अपने नियमों का उल्लंघन करे।

वैश्यों ने कहा : धर्म और जाति उस अनन्त शक्ति महा प्रभु के अंश की दो ऐसी सत्तायें है जो एक दूसरे पर आधारित हैं। विश्व की संस्कृति इन्हीं दो सत्ताओं पर जीवित हैं।

शूद्रों ने कहा : धर्म और जाति का सम्बन्ध सनातन है। मानव ने स्वयं अपने गुण कर्मानुसार कार्य क्षेत्र बांटे जो जातीयता के रूप में अपना समाज बनाकर चले। इसी प्रकार ज्यों २ जन संख्या बढ़ती गई लोगों ने स्वरुचि के अनुसार जिन २ कर्म क्षेत्रों में जो जो प्रविष्ट हुये उसी क्रम में चार जातियों मे भी उप जातियां बनी। सुस्पष्ट है कि जातियों की उत्पत्ति और उनका विकास देश और काल के आधार पर उनके गुण कर्मानुसार होता गया। यद्यपि इन्हें अब हम एक वंश परम्परानुगत कह सकते हैं परन्तु हमें इसे 'मानव कृत्य' कहना पड़ेगा।

धर्म गुरु ने सभी की बातें सुनने के पश्चात् पूछा : क्या आप धर्म को जानते हैं ?

सभी ने एक स्वर से उत्तर दिया ? क्यों नहीं ? हमारी रक्तवाही धमनियों मे जन्म-जन्मान्तर से धर्म की भावनायें समाई हुई हैं। हम सभी धर्मों को देखते और अपने २ धर्मों का पालन भी यथा शक्ति करते हैं।

धर्मगुरु : धर्म को देखना, परखना, पालन करना आदि किन २ रूपों में आप लोगों ने धर्म को समझा ?

ब्राह्मण : वेद, पुराण, कथा, वार्ता, तीर्थ, मन्दिर और महात्माओं के मनन चिन्तन और दर्शनों के माध्यम से धर्म को जाना गया।

दूसरे ने कहा : गीता, भागवत, न्याय, वेदान्त, उपनिषद आदि में धर्म को परखा।

तीसरे ने कहा : गीत, वाद्य, नृत्य, पूजन पाठ, व्रत, तप, दान, स्नान आदि में धर्म को पहिचाना !

इतने में एक सुन्दरी "कञ्चनलता" नाम की नारी अचानक धर्म गुरू के पास पहुंची और अभिवादन कर बोली : यदि गुरू जी आज्ञा दें तो मैं आज के युग का धर्म बताऊ।

धर्म गुरू ने कहा : हमें तो सभी के विचारो का स्वागत करना है, पुत्री ! अवश्य बतायें।

कञ्चन लता बोली : आज के युग में नारियों का शील-भंग करना धर्म-समाज के अन्तर्जगत का तीर्थ-स्थल बन गया है। धर्मगुरू जन इन्ही में रमण करते हैं।

इन वाक्यों से वहा का सारा वातावरण धर्मगुरू की भावनाओ से बहिर्मुख हो गया !

एक ने कहा : विश्व के अधिकांश धर्म-केन्द्र पापाचार के व्यापार क्षेत्र बन गये। मानव का जीवन ही अरक्षित हो गया।

इसी मध्य में "प्रेम" नाम के युवक ने अपना एक वृत्तान्त सुनाते हुये कहा : प्रातःकाल का समय था एक दिन हाट की ओर गया। देखा कि कई दुकानो के नीचे ऊपर दोनों खण्डों में धर्म-परख लिखा है। धर्म-परख है क्या ? इस जिज्ञासा से रुका। कुछ देर सोचकर आगे बढ़ा। पचास पग की दूरी पर एक भव्य भवन के प्रथम खण्ड पर अत्यन्त सुन्दर स्वर्णाक्षरो मे नीचे "स्वागतम्" और ऊपर धर्म-परख लिखा था। जाने का मार्ग सामने सगमरमर की सीढियो से था। जिनमे जगह २ बिजली के बल्ब लगे थे और सीढ़ियों की छत मे बिजली के दो पंखे भी थे। इत्र से सारा मार्ग महक रहा था। सीढ़ी के द्वार पर दाहिनी ओर एक गद्दी लगी थी जिस पर एक स्थूल शरीर के सेठ जी मखमली कारचोपी का मसनद तकिया लगाये बैठे थे। सामने उनके एक चांदी की नली युक्त हुक्का रखा था। जिसे वह बार-बार गुडगुड़ाते और आगन्तुक लोगों का स्वागत करते जाते।

प्रेम ने सेठ जी से पूछा : आपका शुभ परिचय ?

सेठ जी ने विनम्र भाव से कहा : आपका सेवक, लक्ष्मीदास।

आपके दाहिनी ओर 'धर्म परख' जो लिखा है उसका तात्पर्य कुछ बताने की कृपा करेंगे ?

श्री मान जी, यहां धर्म की परख होती है।

धर्म की परख किस प्रकार की जाती है, सेठ जी ?

वहां जाकर स्वयं पता चल जायेगा।

जाने का मार्ग ?

श्रीमान जी का शुभ स्थान ?

प्रेम : बम्बई में प्रेम-धाम नाम के एक धाम में रहता हूं।

आप ही जैसे महापुरुषों के लिये यह भव्य भवन है, श्रीमान जी। इन शब्दों के साथ सेठ जी ने द्वारपाल को बुलवाया और प्रेम को ऊपर ले जाने के लिये आदेश दिया। द्वारपाल प्रेम के साथ मार्ग का निर्देश करता हुआ सीढ़ियों पर चढ़ा। अन्तिम द्वार के निकट पहुंचकर पास में लगी बटन को दबाते ही द्वार पट स्वतः खुल गया और प्रेम के अन्दर प्रवेश करते ही द्वार पट बन्द हो गया। कुछ ही क्षणों में दो युवतियां रंभा-उर्वशी सदृश सुन्दरी झीनी गुलाबी साड़ियाँ पहिने तथा मणियों से जड़ित आभूषणों से अलंकृत अन्दर से आईं और प्रेम को प्रणाम करती हुई उस भव्य कक्ष में पड़ी एक मखमली कोच पर प्रेम से आसीन होने के लिये आग्रह करती।

प्रेम ने दोनों का साधुवाद करने के पश्चात परिचय जानने की उत्कण्ठा प्रगट की।

एक ने कहा : मेरा नाम 'धर्म' है। मैं धर्म के रूप में यहां निवास करती हूं।

दूसरे ने कहा : मेरा नाम 'परख' है धर्म की कसौटी पर संसार को परखने के लिये नियुक्त की गई हूं।

इन दिव्य अप्सराओं के पुरुष ऐसे नाम सुनते ही कुछ शंका में पड़कर प्रेम ने धर्म से पूछा ? आप तो जाति की नारी और नाम आपका "धर्म" पुरुषों जैसा ! इस रहस्य को मैं समझ न सका।

इसलिये कि मैं धारण करती हूं।

आप क्या धारण करती हैं देवि ?

संसार के पाप और पुण्य।

धर्म तो पाप धारण करता नहीं।

धर्म : काल वशात् धर्म सभी को धारण करता है। परन्तु उस पाप और पुण्य की परख कर ली जाती है। साधारण जन पाप पुण्य को नही समझ पाते। क्योंकि जो आपके लिये अमृत है दूसरे के लिये वह विष हो सकता है।

पाप और पुण्य दोनों का अपना स्वरूप है जिसे सभी समझते हैं।

बड़े २ ऋषि मुनि, तपस्वी भी पाप और पुण्य को वस्तुत समझ न पाये। जिसे आप पाप कहते हैं, कभी वह महा पुण्य का स्थान ग्रहण कर लेता और कभी पुण्य काल वशात् पाप का भागी बन जाता है।

पाप यदि पुण्य से शोधित हो जाता है तो फिर वह पाप, पाप नहीं रह जाता। विष का शोधन करने से वही विष अमृत बन जाता है।

माना कि किसी वस्तु का शोधन कर लेने से उसके दोष, गुण, अवगुण सभी विलीन हो जाते हैं। परन्तु प्रत्येक शब्द का स्वरूप और उसका गुण अलग अलग है। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु पदार्थ और व्यक्ति की स्थिति जो है वह तो रहेगी ही।

एक व्यक्ति जो किसी अज्ञात व्यक्ति का वध करता है। न्याय उसे प्राण दण्ड देता है और दो प्राणियों की मृत्यु होती है। इस प्रकार मृत्यु दण्ड न्याय ने धर्म माना है। पर मृत्यु दण्ड भी तो पाप की कोटि मे आता है। विष शोधन की तरह वध करने वाले प्राणी की भावनाओं का यदि शोधन कर दिया गया होता तो क्या सम्भव न था? इस सम्बन्ध मे परख कुछ प्रकाश डालेंगी।

परख ने विनम्र भाव से कहा : धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य इनका पहचानना मेरा काम है। इनका आदि स्रोत मानव-भावना है। मुझे किसी व्यक्ति की भावना (नियति) को परखना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव उसके गुण के अनुसार होता है। उसीके वशीभूत वह शुभाशुभ कर्म से रत रहता है। इसलिये ऐसे प्राणियों को परख कर धर्म के पास भेजा जाता है।

प्रेम ने प्रश्न किया। आज के आधुनिक युग में अणु-आयुधों के परीक्षणों ने मानव को एक काले सर्प की तरह डस रखा है। ऐसी स्थिति मे परख क्या व्यवस्था देंगी।

परख : इसमें 'अहम्' की भावना प्रधान है। जो संसार को आतंकित किये है।

इस 'अहम्' को दूर करने का क्या उपाय है?

उपाय और उपचार धर्म के अधिकार में हैं, प्रेम।

धर्म ने कहा। 'अहम्' का उपाय और उपचार धर्म के दस लक्षण हैं।

प्रेम ने इसके पश्चात दोनों को धन्यवाद दिया और चलने की आज्ञा मांगी।

धर्म ने कहा : अभी आप आये ही हैं। इतनी शीघ्रता क्यों ?

आप दोनो विभूतियों के दर्शन हो ही गये।

धर्म : बिना अतिथि सत्कार पाये वापिस जाना धर्म नहीं कहता।

इतने मे एक उपचारिका रजतपात्र मे अनेक प्रकार के व्यञ्जन सजोकर लाई।

प्रेम ने कहा। आपकी इस कृपा का मैं सदा आभारी रहूंगा।

परख : कृपा की क्या बात। यह तो मानव-धर्म है।

आप दोनों भी साथ सम्मिलित हों।

आपकी बड़ी शिष्टता है।

क्या आप मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करेंगी ?

अतिथि भगवान के तुल्य होता है।

प्रेम ने धर्म से पूंछा : धर्म अतिथि को किस कोटि में मानता है।

धर्म अतिथि-सेवा धर्म का प्रथम कर्तव्य है। अब धर्म इसे कर्तव्य पथ पर मान करता है।

आप को बड़ा कष्ट हो रहा है, क्षमा करें। अब आज्ञा ?

परख : धर्म के सत्यान्वेषण में आये हुये को कुछ दिन रह कर ही धर्म का रूप मालूम होगा।

प्रेम : आप दोनों के दर्शनों से मुझे अपरिमित आनन्द मिला। पर मैं अपनी ओर निहार कर लज्जित हूं कि मैं इस प्रकार के आदर का पात्र नहीं। इतने सुख सौन्दर्य की झलक जिसकी मैं स्वप्न में भी कल्पना न कर पाता मुझे यहाँ देखने को मिली।

परख : सभी अपने संस्कार में बंधे हैं। कौन, कहाँ आता, किससे किसका नाता, कब और कैसे होता आदि जीवन की पहेलियाँ हैं।

आपके आतिथ्य नियमानुसार मुझे यहाँ कितने दिन निवास करना होगा ?

अतिथि का नियम तीन दिन निवास का तो होना ही है।

प्रेम : तीन ही दिन सीमित का क्या तात्पर्य है ?

परख : तीन दिन का तात्पर्य सत, रज और तम इन तीनों गुणों का आनन्द।

प्रेम ने धर्म से पूछा : धर्म में क्या रज और तम भी होता है।

धर्म : जल, अग्नि और वायु जिस प्रकार यह तीन तत्व देह मे प्रविष्ट हैं उसी प्रकार धर्म में सत, रज और तम इन तीनों गुणों का मिलन है। इनमे एक का भी न्यूनाधिक होने से सृष्टि के नियमो में असंतुलन आ जाता है।

धर्म ने मर्म-स्पर्शी वेदान्त की व्याख्या कर दी। रज और तम की दुनिया में संतुलन लाने का मार्ग धर्म कुछ बताने की कृपा करे।

विश्व के विभिन्न भागों में आध्यात्मिक जाग्रति के लिये शिविर खोले जायें। शिक्षा केन्द्रो, संस्थाओ, पीठो और विद्यालयो में अध्यात्म और योग की शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय। विश्व के समस्त राष्ट्रो मे अध्यात्म और योग को राष्ट्रीय निधि एवं वैभव मानकर उनके अध्ययन के निमित्त साहित्यिक सामग्री का संकलन किया जाय। ऐसे ठोस कदम उठाने से धीरे २ सभी शक्तियो का सतुलन होकर समस्त संसार में विश्व-बंधुत्व की भावना समा जायगी और सभी राष्ट्र के प्राणी एक भावना में ढलकर सच्चे "विश्व राष्ट्र संघ" की स्थापना करने मे सक्षम होगे।

आप धर्म की साक्षात मूर्ति ही हैं। पर आध्यात्मिक ज्योति भारत ही की देन है। भारत ही दृढ़ता के साथ इस कार्य को उठाकर विश्व के प्रमुख राजनीतिज्ञो और वैज्ञानिकों में आध्यात्मिक भावना भर कर संसार की वर्तमान संघर्षात्मक स्थिति को तिरोहित कर सकता है। क्योंकि "महाजना येन गता स पन्थः" अर्थात् बडों के पद चिन्हों का छोटे सदा अनुसरण करते आये है।

प्रेम ने धर्म से पूछा : जर्मनी में यहूदियों की हत्या करने वाला एक मात्र दानव एडाल्फ आइकमैन ने लगभग साठ लाख व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया जिसे कुछ दिन हुए मृत्यु दण्ड मिला है। क्या यह भी जर्मनी की हिंसा रूपी पाप का घड़ा भर कर उसके विनाश का कारण बना ? धर्म के नाम पर नर-संहार करना मानवता और धर्म दोनों को चुनौती है। किंग हैल्स हिलासी द्वारा यूथोपिया में किया गया नर यज्ञ भी इसी से मिला जुला है। इधर तिब्बत मे किया हुआ लाल चीनियों द्वारा नर संहार तथा वहां की मानवी एवं धार्मिक प्रवृत्तियो, परम्पराओं और विश्वासों का क्रमानुगिक उन्मूलन आज हमें पुन स्मरण दिलाता है।

यह प्रकृति का नियम है प्रेम। जर्मनी को हिटलर के "अहम्" ने निगल लिया!

मानवजाति का निरापराध वध, धर्म महान अपराध मानता है। पर कार्य-कारण के भेद से सत्य की रक्षा करने के लिये नर-वध अपेक्षित हो जाता है।

भगवान कृष्ण ने गीता में उल्लिखित कौरव-पांडवों को युद्ध में झोंक कर भयंकर नर मेध यज्ञ किया जिसे विश्व का एक वर्ग कृष्ण को हिंसक कहता है। भारत का दर्शन, धर्म और वेद सभी में हिंसा व्याप्त है। आत्माओं की हिंसा भी जीव की हिंसा से कहीं २ प्रमुख स्थान विचारकों में ग्रहण कर लेती है। नर-मेध ऐसे यज्ञों मे मनुष्यों की बलि दी जाती थी। वस्तुतः जीव-विज्ञान का अध्ययन करने से पता चलता है कि येन केन प्रकारेण जीव ही जीवका पोषक और भक्षक है। शरीर कीटाणुओ से भरा है जिनकी विभिन्न प्रक्रियाएँ है। कुछ कीटाणु पोषक और कुछ शोषक हैं। जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी और आकाश में कीटाणुओं का अनवरत संचार रहता है। अगणित संख्या में क्षण २ मरते और जीते हुए कीटाणु सूक्ष्म यन्त्रों द्वारा दिखाई पड़ते हैं। जो कि प्रकृति की सूक्ष्मातिसूक्ष्म क्रिया है। आज का समस्त विश्व हिंसात्मक प्रवृत्तियों का शिकार बन गया है। ऐसी स्थिति मे अहिंसा का ढोल पीटना नगाड़ खाने मे तूती की आवाज के समान है। कहा जाता है 'जीव मारे पर जीविका न मारे" पर आज का मानव दानव की तरह स्वार्थ लिप्त एक दूसरे की जीविका पर प्रहार कर उसे तड़पा २ कर मारता है। क्या यही धर्म है?

प्राकृतिक प्रक्रियाओ के अन्तर्भेद से कीटाणुओं अथवा कीट पतंगों का जन्म मरण हिंसात्मक प्रवृत्तियों का सूचक नहीं होता। धर्म की परख "ज्ञान" की कसौटी पर की जाती है। जिस प्राणी में चेतन शक्ति होती वही इसके भेदाभेद को बता सकता है। परख इस सम्बन्ध में प्रकाश डालेगी।

पाप–पुण्य के समान हिंसा-अहिंसा दोनों को धर्म धारण करता है। एक अचेतन जीव के वध से यदि दूसरे जीव का पोषण हो तो उसे न्याय ने हिंसा नही माना। पर मानव की हिंसा सर्व दृष्टि से हिंसा कही जाती है। मानव में चेतन शक्ति है। इसलिये धर्म न्याय उसे अपराधी समझकर दण्ड देता है। राष्ट्र के कल्याणार्थ जनहित की भावना से युक्त युद्ध को धर्म-न्याय ने शास्त्र सम्मत माना है। वह हिंसा कल्याण की भावनाओं मे शोधित कर विशुद्ध सात्विक तत्वों का विकास करती है। इसीलिये कृष्ण भगवान ने युद्ध कराया।

कुछ भी हो पर कुरुक्षेत्र मे इतना बड़ा नर संहार कराने वाले कृष्ण को दुनिया कभी अहिंसक नही मान सकती। आज की सभ्यता, शिष्टता, संस्कृति और मानवता के लिये यह बहुत बड़ा कलंक है।

परख' गीता में "विनाशाय च दुष्कृताम्" लिखा है। पाप और अधर्म को बढ़ते हुये धर्म ने स्वयं व्यवस्था दी है, इसलिए धर्म की रक्षा हेतु नर संहार कराना पडता है। उसको धर्म हिंसा नहीं मानता। धर्म आत्म रक्षा (सेल्फ डिफेन्स) का मार्ग अपनाता है। जब कभी भी धर्म पर प्रहार हुये काल-धर्म उसी क्षण आकर रक्षा करता है धर्म अपने निर्मल स्वरूप से समस्त अधर्म रूपी मल को छानकर बाहर निकालता रहता है।

प्रेम . धर्म क्या उस निर्मल सिन्धु के समान है जहां अधर्म का कोई पङ्क नही। फिर धर्म पाप-पुण्य दोनों को कैसे धारण करता है ?

प्रत्यक्ष में ऐसा प्रतीत होता है पर वस्तुत नही। धर्म स्वभाव से निर्मल है। जैसे सागर मे समस्त नदियां सारी दुनिया का मल विकार लाकर गिराती हैं। पर सागर समस्त मल विकारों को धोकर एक किनारे लगा देता है। उसी प्रकार धर्म उस सागर के समान है जिसके मन्थन से अमृत और विष दोनों मिलते है। धर्म द्वारा मानव मस्तिष्क के मन्थन में पाप और पुण्य दोनों ही प्राप्त होते है। भारतीय धर्म अपने मेरु दण्ड पर धर्म और अधर्म म समन्वय स्थापित करता है। तुलसीदास ने राम रावण युद्ध में समन्वय स्थापित करने का "प्रयत्न किया है।" सुमति विचारहु परिहरउ दल कुमितहु समाम" से यही धारणा प्रतिपादित होती है।

एक समस्या समाधानार्थ शेष और है, पारखी।

धर्म से सम्बधित सभी समस्याओं का समाधान किया जा सकता है, प्रेम।

आज दिन भी संसार में धर्म के नाम पर बात की बात में सघर्ष, युद्ध और राज्यविप्लव खडे हो जाते हैं। डायोक्लीटियन द्वारा रोम में किया गया ईसाइयो का वध, इजिप्ट मे रैमसीस के द्वारा धर्म के नाम पर किया हुआ वध, इसी प्रकार हिन्दुओं में अनेक धर्म और संप्रदाय परस्पर सघर्ष और विवाद के कारण बन बैठे। मुसलमानों में शिया-सुन्नी का संघर्ष धर्म की तह मे घर कर बैठा। ईसाई, सिख, बौद्ध, जैन आदि सभी धर्मों में फिरके परस्ती ने धर्म का अपना २ जामा पहना रखा हैं। धर्म दुनिया का एक स्वांग बन गया है। जबकि दुनिया का कोई भी धर्म परस्पर लड़ना नही सिखाता फिर यह सब बखेड़े क्यों। इस सम्बन्ध मे मुझे एक शेर याद आ गई "दिल जला कोसने लगे दिल को, हुये कोसो अलग दिल कोसने वाले। हाथ मल रह गये वह दिल दिल से फिर भी कहते कि हम वो हैं दिल वाले।' ठीक यही स्थिति धर्म की है। इसलिये आज की दुनिया और प्रत्येक राजनीतिज्ञ अपने को धर्म से

अलगाव की भावना रखना है। अन्यथा ऐसी पुनीत भावना को जन्म देने वाली धर्म की दुनिया में कौन रहना पसन्द नहीं करता।

दुनिया के प्राणी अपनी अपनी श्रद्धा और विश्वास के अनुसार ईसामसीह, देवी, देवताओं, पीर पैगम्बरों ऐसे अवतारी महान विभूतियों के आधारभूत सद् उपदेशों से प्रभावित उनके पद-चिन्हों का अनुकरण कर विभिन्न सम्प्रदायों के समूह में समा गये। जिनमें जात-पात का कोई भेद-भाव नहीं होता। देश विदेश के हिन्दू, मुसलमान, ईसाई पारसी आदि सभी एक दूसरे के ऐसे अवतारी महान पुरुषों का आदर करते आये हैं। यही भारतीय संस्कृति और सभ्यता है। कुछ हिन्दू ताजिया रखते और मुसलमान देवी देवताओं को पूजते और मान्यताये मानते हैं। यह परस्पर सौहार्द और भ्रातृत्व भावना का कैसा निर्मल उदाहरण है। भारत की संस्कृति मानव मात्र का आदर करना सिखाती है।

धर्म के नाम पर फिर क्यों इतना संघर्ष होता ?

यह विकार कुछ स्वार्थी प्राणियों के स्वाभाविक गुण दोषों का मेल है, जिसे धर्म छान कर बाहर निकाल देता है। दुनिया का कोई धर्म अथवा सम्प्रदाय का भला और सज्ञान व्यक्ति, जो अपनी २ भावना, श्रद्धा और विश्वास के साथ देवी देवताओ, पीर पैगम्बरों, हज़रत ईसामसीह, बौद्ध जैन, सिक्ख आदि अवतारी पुरुषों को पूजता या आदर देता, कभी ऐसे विवादों में नहीं पड़ता।

यद्यपि आपका दृष्टिकोण न्याय संगत है फिर धर्म परिवर्तन लोग क्यों करते है ?

धर्म अटल है। इसका कभी परिवर्तन नहीं होता। मानव के विचार परिवर्तित होते रहते हैं। इस्लाम-धर्म, हिन्दू-धर्म, ईसाई-धर्म, बौद्ध-धर्म, सिक्ख-धर्म ऐसे विश्व के समस्त धर्म वस्तुतः धर्म नहीं अपितु वे सब मत हैं जिन्हें धर्म का रूप दे दिया गया है। विश्व के जितने अवतारी महान पुरुषों ने इस भूलोक में जन्म लिया इनके सद् उपदेशों से प्रभावित होकर लोग उनके मतानुयायी हुये। फलत् अवतारी विभूतियों के मतानुयायियों ने उनके सद् उपदेशों को अपनी २ भावनाओं में उतार कर धर्म का चश्मा लगाया और उन विभूतियों को धर्मावतार की संज्ञा दी। किसी भी अवतारी महापुरुष ने कहीं भी धर्म के नाम पर लड़ने या युद्ध करने का उपदेश कभी नहीं दिया। ममता, दया, कोमलता और सद्विचार का उत्पादक ऐसे धर्म के प्रति युद्ध की भावना का जन्म होना कल्पना से परे है। जो धर्म के नाम पर लड़ते वे लड़ते ही रहेंगे। लड़ने वालों की प्रकृति और स्वभाव उन्हें बात-बात पर दाने-दाने पर,

रोटी-बेटी पर लड़ने के लिये विवश करती है। यहां तक कि अपने मन बुद्धि से लड़ते हुये दसों इन्द्रियों को इतना संघर्ष का केन्द्र बना देते कि उसी मे घुट-पिस कर मिट जाते हैं। धर्म सदा से निष्कलंक और मानव मात्र का है। जीव-जन्तु, कीट-पतंग, पशु-पक्षी, चेतन, अचेतन, सभी पदार्थो, वृक्षों कण-कण, पग-पग पर धर्म ही है।

प्रश्न : दक्षिण अफ्रीका मे गण-तन्त्र के राष्ट्रपति डा० वारवेर्डो द्वारा चलाई गई रंग-भेद नीति क्या धर्म का गला नही घोटती? जहा पर केवल गौर वर्ण प्राणियो को जीवित रहने दिया जाता और काले प्राणियों को मौत के घाट उतार दिया जाता है।

धर्म का गला रंग-भेद नीति से नहीं घुटता। धर्म पर घुटने मरने वाले धर्म को पहिचान न सके। वस्तुत, मानवता का ही नाम धर्म है। धर्म सदा अमरता का संदेश देता रहा है। दक्षिण अफ्रीका में रग-भेद के आधार पर काले प्राणियों पर अमानुषिक अत्याचार धर्म नही अपितु अभिशाप है। इससे यह सिद्ध होता है कि उस देश के गोरे प्राणी ऊपर से गोरे परन्तु मन, वचन, कर्म से काले हैं। उनके काले कारनामों से तरह २ की आपत्तियां दुनिया में आई। धर्म कभी ऐसे प्राणियों को संरक्षण नहीं देता।

आज की बीसवी सदी का पूंजीवाद धर्म के नाम पर मानवता को खाये जा रहा है। बड़े २ पूंजीपति धर्म-खाता खोले, धर्म कांटा लगाये, धर्म के तराजू पर तौल कर निसबासर काटे मारते हैं। परख ने इस पर भी कभी सोचा है?

पूंजीवाद इस युग का अभिशाप है। इसमे 'अहम्' ने जन्म लिया है जो उसे खाये खा रहा है। पूंजीपति धर्म को ठगता है। चक्षु होते हुये भी नही देखता। उसके ज्ञान चक्षु तिरोहित हो जाते हैं। शास्त्र मे जन्मान्ध, कामान्ध, मदान्ध और धनान्ध इन चार प्रकार के अन्धों का वर्णन किया है। अर्थ ही अनर्थ कराता है। आज का पापाचार, भ्रष्टाचार आदि सभी अर्थ के ही कारण हैं। धर्म का सही आचरण न करने वाले पूंजीपति को लक्ष्मी शीघ्र छोड़ देती है। आज का पूंजीवाद मानवता का शोषण कर धर्म की बार २ दुहाई देता है। पर यदि पूंजीपति अपनी पूंजी को मानव के कल्याणार्थ लगाता है तो वह निश्चय ही धर्म का सच्चा प्रतिनिधित्व करता है।

पूंजीपति फूटी आंखो भी गरीब को देखना नहीं चाहता। वह उसे धधकती हुई आग की भट्ठी में जीवित जलाता है। मानव कल्याण की कल्पना स्वप्न मे भी पूंजीपति

नहीं करता । जो वर्ग गरीबों का खून चूस चूस कर जीता वह उन पर रहम क्या खा सकेगा ।

पूंजीपति लक्ष्मी का प्रतिनिधित्व करता है। कुछ पूंजीपति जन कल्याणार्थ चिकित्सालय, धर्मार्थ सेवा सदन, विद्यालय, धर्मशालायें आदि विविध प्रकार के दान अपनी २ भावनाओं के अनुसार आज दिन भी किया करते हैं ऐसी स्थिति मे पूंजीपति की सतोगुणी भावनाओं को सतत जगाये रखने के लिये प्रयत्न करना चाहिये ।

प्रेम . साम्राज्यवाद में आपका धर्म क्या कहता है, पारखी ?

प्राचीन काल मे साम्राज्यवाद सदा आदर का पात्र रहा । प्रजा अपने राजा को भगवान का अवतार मानती थी । राजा भी प्रजा-भक्त-वत्सल होता था । प्रजा को राजा अपनी सन्तान तुल्य समझता था । उनके रक्षा निमित्त विविध साधनों और उपायों को करता । दोनों मे परस्पर ममता थी । पर काल की गति ने इन राजाओं को विलासता के मुख में झोंक कर प्रजा की भावनाओं से कोसो दूर कर दिया । इस प्रकार साम्राज्यवाद का वास्तविक रूप विकृत हो गया । साम्राज्यवाद पर टिके आज के कुछ राष्ट्र काल के प्रवाह मे धीरे २ अन्दर से खोखले होते जा रहे हैं । आज का साम्राज्यवाद 'अहं' की भावना मे समाकर विस्तारवाद को अपना कर शान्ति प्रिय मित्र राष्ट्रों पर अमानुषिक आक्रमण कर उन्हे निगलने की चेष्टा करता है जो मानवता और धर्म दोनों को चुनौती है। ऐसे विस्तारवादी साम्राज्यवाद को धर्म अपने क्षेत्र में कहीं भी स्थान नहीं देता ।

प्रेम : साम्यवाद को धर्म क्या समझता है ?

परख : वैदिक धर्म ने साम्यवाद को सदा अपनाया और उसे प्रमुखता दी । पर आज का धर्म-विहीन-साम्यवाद अधिक सुखकर नहीं । धर्म सापेक्ष साम्यवाद वैदिक धर्म का मूल स्वरूप है । धर्म की भावना से प्राणी का स्वरूप त्यागमय हो जाता है । वह प्राणी संसार के प्रति बलिदान करने को तैय्यार रहता है । जिसमे धर्म की भावना नहीं, अथवा जो राष्ट्र धर्म विहीन हो, वह बिना नींव की दीवार के धराशायी हो जाता है । धर्म राष्ट्र का प्राण है । बिना धर्म के राष्ट्र का होना ठीक इस शरीर का बिना आत्मा के होना अभिव्यक्त करता है । धर्म की आधार भित्ति पर राष्ट्र का निर्माण सदैव पल्लवित होता है । धर्मसापेक्ष ऐसे साम्यवादी राष्ट्र मे प्राणिमात्र को स्वतन्त्रता दी गई है । सब कुछ राष्ट्र को अर्पण करने की भावना को जाग्रति करने की क्षमता धर्म सापेक्ष साम्यवाद मे ही है जिसमें प्राणी आस्था, श्रद्धा और विश्वास की सीढ़ी लगाकर व्रत उपवास करता हुआ राष्ट्र के हित में

अपना सर्वस्व बलिदान कर देता है। प्राणिमात्र को स्वच्छन्द रूप से विचरने की क्षमता प्रदान करने वाला राष्ट्र ही सच्चे साम्यवाद का हामी भर सकता है। जिस राष्ट्र में मानव की समस्त स्वतन्त्रता राष्ट्र की दासी बनकर जीवन व्यतीत कर रही हो वह राष्ट्र सच्चे साम्यवाद की एक कल्पना मात्र है जो अपना गला स्वयं घोटता रहता है और अन्त में वह स्वयं घुटकर विलीन हो जाता है। धर्म एसे साम्यवाद को अधिक प्रश्रय नहीं देता। ऐसा साम्यवादी राष्ट्र अपनी शक्ति से परवश सी जनता जनार्दन को अधिक दिन दबोचे नहीं रह सकता। जिस राष्ट्र ने "जन स्वातन्त्र्य की भावनाओं को नियन्त्रित कर दिया वह राष्ट्र मानवता के लिये एक बन्दी गृह के समान है। उस राष्ट्र को हम एक विशाल पशु गृह (ज़ू) की संज्ञा दें तो अनुपयुक्त न होगा जिसमें मानवता को एक घेरे में डालकर उसे चारा पानी दिया जाता है।

परख ने धर्म की कसौटी पर कसकर साम्यवाद को जिस न्याय तर्क पर उतारा है। भले ही जन स्वातन्त्र्य की दृष्टि से उसमें आत्म समर्पण त्याग और बलिदान की भावना स्वतः जाग्रत न होती हो पर जहां तक धर्म के दस लक्षणो का सम्बन्ध है आज का साम्यवादी रूस संतोष, क्षमा, दम, अर्थात मन को वश मे करना, अस्तेय अर्थात चोरी न करना अथवा न्याय के तुला पर तौल कर धन का उपार्जन करना, शौच अर्थात पवित्रता, इन्द्रिय निग्रह अर्थात इन्द्रियों को वश मे करना, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध धर्म के इन मुख्य लक्षणो में से कुछ लक्षणों को तो पूर्णतया धारण करने की क्षमता रखता है। फिर ऐसे साम्यवाद को धर्म मान्यता क्यों नही देता ?

परख—बाह्य दृष्टि से आज का साम्यवाद धर्म के कुछ लक्षणों को अवश्य अलंकृत करता है। विशेषकर इस वैज्ञानिक युग मे बुद्धि, विद्या और अस्तेय ऐसे बाह्य आवरण रूपी धर्म के लक्षणों से साम्यवाद अवश्य युक्त है परन्तु धर्म-तत्व की मूल कसौटी पर इसकी परख कैसे की जाय जबकि यह स्वयं उस कसौटी पर आना नहीं चाहता और न इसमें उस कोटि की भावना परिलक्षित है। हां ! यदि प्रेम अपनी रसना से इसे रसमय कर अपने प्रेम जगत में उतार दे तो सम्भव है प्रेम-धर्म-धाम में पहुंच कर यह धर्म-तत्व की मूल कसौटी पर कसा जा सके और परखने पर खरा भी उतरे।

प्रेम—धर्म की कसौटी पर उतार कर परखने की क्षमता का अधिकार धर्म ने आपको दिया है। कभी परखने मे दृष्टि दोष भी हो सकता है। अत इस तथ्य पर आपको पुन. विचार करने की आवश्यकता है।

प्रेम : धर्म निरपेक्षवाद मे धर्म का कहां तक, क्या स्थान है ?

धर्म निरपेक्षवाद को धर्म जल में कमल के समान मानता है। इसमें धर्म के सभी मूलभूत सिद्धान्तों का समन्वय है। यह विश्व के सभी धर्म, मत एवं सम्प्रदाय को समन्वयवादी दृष्टि से देखता है। निरपेक्षवाद वस्तुत: किसी धर्म विशेष का पोषक नहीं अपितु सभी धर्मों के आदर का पात्र है। अर्थात् सागर के सदृश गम्भीर सभी धर्मों को धारण करता है। सभी धर्म एवं मत के अनुयायी निरपेक्षवाद में सुख की नींद सोते है। जो राष्ट्र या मानव मानवता के आधार पर समन्वयवादी दृष्टि से सभी धर्मों को अपनाकर अपने जीवन मे उतारे वही संसार को सुख और समृद्धशाली बना सकता है। ऐसा राष्ट्र विश्व के सभी धर्मों का रक्षक अंग है। वही राष्ट्र यथार्थ में धर्म का प्राण है। निरपेक्षवाद ही ऐसा वाद है जो विश्व के सभी धर्मानुयायियो को एक मंच पर लाकर विश्व बंधुत्व की स्थापना कर सकता है। निरपेक्षवाद धर्म के दसो लक्षणों को अलङ्कृत करता है। इसलिये धर्म ऐसे निरपेक्षवाद को सर्वोत्कृष्ट स्थान देता है। ऐसा निरपेक्षवाद वस्तुत: पूर्ण धर्म सापेक्ष कहाता है।

प्रेम : धर्म ने निरपेक्षवाद को सर्वोच्च मान्यता देकर उत्तम चुनाव किया है। जो राष्ट्र विश्व के सभी धर्मों की साम्प्रदायिक भावनाओं को पीकर उनके मन को अन्तर्जगत के तत्वों एवं इन्द्रिय रूपी कल पुर्जों द्वारा शोधन कर फिल्टर रूपी मन से छानता हुआ समन्वयवादी दृष्टि अपनाकर तत्वसार को निर्मल श्वेत बिन्दु से निकाले वही लोक प्रिय एवं अमृतमय होता है। ऐसा निरपेक्षवाद केवल धार्मिक क्षेत्र मे ही नहीं अपितु राजनीति क्षेत्र मे भी अपने कार्य कौशल से समन्वयवादी भावनाओं द्वारा संसार के सभी राष्ट्रीय सिद्धान्तों मे अपनत्व स्थापित कर सकता है।

नेहरू जी के सोशलिस्टिक सिक्युलिरिजम अर्थात समाजवादी-धर्म-निरपेक्ष-वाद को धर्म क्या समझता है ? परख कुछ प्रकाश डालने की कृपा करें।

श्री नेहरू जी के समाजवादीधर्म निरपेक्षवाद को वस्तुतः धर्म अपना "प्राणतत्व" समझता है। समानता, विचार स्वातन्त्र्य और भ्रातृत्व यह तीन इसके सहचर अङ्ग है।

लोकतन्त्र के आधार भूत यह तीन सिद्धान्त धर्म के सर्वोत्कृष्ट लक्षण शान्तिपूर्ण-सहअस्तित्व को अलङ्कृत करते हैं। समाजवादी निरपेक्षवाद ही समस्त विश्व मे फैली हुई जात, मत, पन्थ, सम्प्रदाय, रङ्ग-भेद आदि की अनेकता मे एकरूपता लाने की क्षमता रखता है। मानवता के शत्रु दरिद्रता, अकिञ्चनता तथा भ्रष्टाचार

को इसी से दूर किया जा सकता है। नङ्गे को तन पर वस्त्र, भूखे को रोटी देने का हामी सच्चा समाजवाद ही भर सकता है। पर ऐसा समाजवाद तभी स्थापित हो सकता है जब प्रेम अपनी मनोगामी रज्जु से मानव को बांध ले।

प्रेम इसे स्वीकार करता है पर बिना आध्यात्मिक ज्योति के सतोगुण जाग्रत नहीं होता। परमार्थ, क्षमा, कोमलता, ममता, उदारता, त्याग, तप, दान आदि अध्यात्म से ही आविर्भूत हैं। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, इन्द्रिय-निग्रह इन सद्गुणों का स्रोत अध्यात्म ही है। यही चारित्रिक उत्कर्ष और नैतिक उन्नयन ला सकता है। बिना चरित्र निर्माण के समाजवाद की स्थापना कल्पना मात्र है। पर अध्यात्म तो धर्म का ही प्रतिनिधि है। निष्कर्ष मे हमे धर्म का आधार लेना पड़ेगा।

धर्म विहीन समाज की स्थापना मानव प्रेम की पृष्ठ भूमि पर आधारित है जहां व्यक्तिगत स्वार्थ होम कर दिये जाते हैं।

अन्त में प्रेम ने जिज्ञासा प्रकट करते हुये पूछा . धर्म और संस्कृति में क्या भेद है ? परन्तु कुछ प्रकाश डालने की कृपा करें।

वस्तुतः धर्म और संस्कृति में सूक्ष्मातिसूक्ष्म अन्तर है। धर्म मानव की पूर्ण संस्कृति, सभ्यता और आचार-विचार को धारण करता है। अर्थात मानवता को धारण करने का नाम "धर्म" है। मानवता को संस्कृति कहते हैं। संस्कृति का यथार्थ सम्बन्ध आत्मा से है। मानव जगत के अन्तरक्षितिज का उत्थान और उत्कर्ष संस्कृति से ही होता है। संस्कृति सात्विक तत्वो का विकास करती है।

"संस्कृति" शब्द की व्युत्पत्ति व्याकरण के सूत्र से 'कृ" धातु से बनी है। इसमें सुट् का आगम कर सम् प्रत्यय और क्तिन् उपसर्ग लगा देने से सन्-कृति अर्थात सदाचार युक्त सम्यक् कृति बन जाता है।

इस प्रकार लौकिक एवं पारलौकिक उत्थान और उत्कर्ष की ओर ले जाने वाले आचार-विचार का स्रोत 'संस्कृति' है।

संस्कृति परा विद्या से सम्बन्धित है। अत धर्म और संस्कृति का स्वरूप जीव-आत्मा के सहज है।

इस प्रकार अनेक गम्भीर विषयो पर वाद संवाद चल रहा था। इतने में मध्यान्ह एक बजे का घंटा सुन्दर सुनहले दीवार पर लगी हुई घड़ी से सुनाई पड़ा। एक दासी रजत पात्रों में संजोये अनेक प्रकार के व्यंजन लेकर आ पहुंची। प्रेम से

भोजन के लिये आग्रह किया। हस्त प्रक्षालन के पश्चात प्रेम ने भोजन का रसास्वादन कर भूरि २ प्रशंसा की।

परख ने स्नेह पूरित नयनों से प्रेम की ओर निरख कर कहा :

सांसारिक सभी भोग सामग्रियों का रसास्वादन आपको यहां कराया जायगा।

आप तो मानव जाति को परख कर ही यथोचित स्वागताभिनन्दन करती होगी।

आपका कथन सत्य है, प्रेम।

धर्म की ओर संबोधित करते हुये प्रेम ने कहा : वस्तुत: परख की कसौटी धर्म ही है। यदि धर्म न होता तो परख किस पर होती।

परख ने भाव गाम्भीर्य शब्दों में कहा :

धर्म की यवनिका नेपथ्य में जहां शोभित हुई, वहीं मानव, दानव हो गया। अत: धर्म पर तो त्रैलोक्य की परख होती है, प्रेम।

प्रेम ने पुन: जिज्ञासा प्रकट करते हुये कहा : आज की राजनैतिक-क्रान्ति अर्थात साम्यवाद और साम्राज्यवाद के परस्पर संघर्ष में मानव पिसा जा रहा है। इसमें धर्म क्या व्यवस्था देता है ?

परख इस युग के साम्यवाद और साम्राज्यवाद की खाई को प्रेम ही के माध्यम से विश्व-बंधुत्व की भावना जाग कर पाटा जा सकता है। प्रेम ही दोनों लड़ियों को जोड़ सकता है। युग धर्म ने प्रेम ही को ही विश्व शान्ति का उद्गम स्थान माना है।

आपने सारा व्यंगात्मक चित्र मेरे ऊपर ही खींच दिया।

जिस शब्द के उच्चारण मात्र से ही मन शान्त हो। जिसमें भावोत्पादक शक्ति हो, उसे धारण कर अपने जीवन में उतारने से कितना सुख मिलता होगा, इस अन्तर्निहित आनन्द में रमने वाला प्रेम स्वयं कुछ अभिव्यक्त करे।

वस्तुत: कलह और शान्ति दोनों का उत्पादक प्रेम है। इसे परखने की क्षमता परख को ही है। आशा है परख कुछ प्रकाश डालने की कृपा करेंगे।

पाश्चात्य देशों में साम्यवाद और साम्राज्यवाद के परस्पर चले आ रहे संघर्षों में प्रेम की हम विचित्र गति पाते हैं। राष्ट्र-वैभव, व्यवसाय, ज्ञान-विज्ञान और विलास में ही प्रेम विशेष रूप से व्याप्त है। साम्राज्यवाद और साम्यवाद के पाश्चात्य देश रज और तम के गुणों से आक्रान्त एवं अविमुक्त हैं। सतोगुण प्रेम का गाम्भीर्य विचार तथा मन्थन उनके ज्ञान की परिधि से परे हैं।

बिना सतोगुण के प्रेम की गांठ में दृढ़ता नहीं आती। उनके खुल जाने का भय सदैव बना रहता है। सतोगुणी प्रेम रज्जु की गाठ को भारत ही बाध सकता है। जो कि अपनी आध्यात्मिक प्रेम रज्जु में समस्त विश्व की भावनाओ को बाटकर उनमें सतोगुण की ग्रन्थियों को परिपक्व कर सदा के लिये दृढ़ बना सकता है।

धर्म ने पराग की ओर देखते हुये कहा.

प्रेम ने कितना सुन्दर आध्यात्मिक तार तम्य का आदर्श माध्यम बताया। बिना आध्यात्मिक चेतना के प्रेम अपने सच्चे स्वरूप को नही पहचान पाता। धर्म के स्तर पर प्रेम के आदर्श का स्थापकत्व सुस्थिर रहता है। अतः साम्यवाद और साम्राज्यवाद को संघर्षात्मक प्रवृत्ति को सतोगुण प्रेम के माध्यम से दूर किया जा सकता है।

इसके पश्चात प्रेम ने ज्यों ही धर्म से प्रस्थान के लिये याचना की सूर्य की पत्नी सन्ध्या आ पहुंची।
प्रेम ने उठकर प्रणाम करते हुये पूछा : आप का शुभ परिचय ?

मैं सूर्य की पत्नी सन्ध्या हूं।

आपका आगमन कैसे हुआ?

सांसारिक सुखों का उपभोग कराने।

सन्ध्या तो आध्यात्मिक ज्योति जगाती है।

इसे तो प्रेम परख पहिचाने।

इतना कहते ही सन्ध्या ने माया का रूप धारण कर वस्त्राभूषणों से युक्त श्रृंगार किये हास्य-विलास करती हुई प्रेम के मन को केन्द्रित करती। प्रेम, राजसी प्रवृत्तियों के वशीभूत होकर सन्ध्या की ओर एक टक निहारते हुये मन्द मुसकान से बोले . सुना है सन्ध्या सदा तरुण रहती है!

सदा तरुण रहने वाली आकाश की पुत्री उषा है। सन्ध्या तो सदा वासना में छिपी रहती है।

कुछ ही क्षण में दो अप्सरायें चांदी के थाल में आरती सजाये अत्यन्त मधुर ध्वनि से घुंघरू की ताल पर नृत्य करती हुई दूसरे कक्ष में ज्यों ही प्रवेश हुईं प्रेम की दुनिया का मानस-पटल परिवर्तित हो गया। प्रेम, मन्त्र मुग्ध हो मन ही मन कहते, इस धर्म की दुनिया में माया का पूरा जाल बिछा है। नृत्य गीत, समाप्त होने के पश्चात परस्पर राजसी भावाभिव्यञ्जन हुआ।

प्रेम ने धर्म से कहा : मेरे मन में एक चोर प्रवेश कर गया।

धर्म : प्रेम के मन में कैसा चोर ?

चोर क्यों बताने लगा।

इसका अधिकार परख को है।

प्रेम के मन मे वासना घर कर गई, धर्म।

धर्म : वासना प्रेम में सदा रही। यह प्रकृति-जन्य-रम-प्रवृत्ति है, इसी को प्रेम परख कहते हैं।

प्रेम : आप ही की माया है। इस गोरख धन्धे को आप ही समझें।

परख : वस्तुतः प्रेम ही सब को परखना है। प्रेम ही जीवन का सार है।

प्रेम : नारी का प्रेम कभी भोग की कामना में नमा आता है, परख।

प्रेम स्वयं उस प्रकृति रूपी माया के गर्भ से अंकुरित हुआ है।

मुझे धर्म ही प्रिय है, पारखी।

अन्त में परख ने भाव भीने शब्दों में प्रेम की ओर निहारते हुये कहा वस्तुतः तुम्ही अपने प्रेम सूत्र मे सभी धर्मों को गूंथ कर मानवता का दीप जलाने मे सक्षम हो ! ऐ धर्म के प्राण ! तुम्हे शत्-शत् प्रणाम् !

इस प्रकार प्रेम आत्म समर्पण कर धर्म की भावनाओं में समा गया। तत्क्षण ऊपर से पुष्प वर्षा हुई और एक अज्ञात दिशा से 'प्रेम धर्म का सार मनुआ' शब्दो की ध्वनि गूंज उठी।

इन शब्दों को सुनकर सारा वातावरण प्रेम से विभोर हो गया।

धर्म गुरू ने कहा : वस्तुतः आज के युग की जटिल गुत्थियों को प्रेम ने जिस पारस्परिक वाद संवाद से धर्म मन्च पर लाकर सुलझाया वह एक अनूठा प्रयास है। जहां तक मानव के ज्ञान की दौड़ है विश्व का कोई भी ज्ञानी, दार्शनिक, राजनीतिक अथवा धर्माचार्य प्रेम के इस धार्मिक वाद-संवाद से प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकता। मानवता प्रेम की क्षुधा से आतुर होकर विलख रही है। प्रेम रूपी 'ममता' के अभाव से विश्व का अन्तर्जगत खोखला हो रहा है। इसलिये हमें विश्व में प्रेम ही का दीपक घर घर जलाकर ममता की भावना उभारना है। इसके द्वारा विश्व बंधुत्व की स्थापना होगी और समस्त राष्ट्र परस्पर सुहृद भाव से अपना "विश्व राष्ट्र संघ" स्थापित कर सकेंगे।

धर्मगुरु ने धर्म की विविध व्यवस्थायें बताते हुये कहा : धर्म के तीन स्वरूप मुख्य होते है। सामान्य धर्म, विशेष धर्म और आपद धर्म। धृति, क्षमा, दम अस्तेय आदि वर्णित धर्म के दस लक्षणों का सामान्य धर्म की कोटि मे माना है। स्त्री पुरुष, माता, पिता, पुत्री, भगिनी, कुटुम्ब, परिवार आदि का परस्पर सम्बन्ध कर्त्तव्य-धर्म का परिचायक है। अकस्मात आपत्ति विपत्ति आने पर धर्म मर्यादा का रक्षण आपद्-धर्म माना है। इसके अतिरिक्त आपने ऋतु-धर्म की व्यवस्था देते हुये कहा : वर्ष मे छै ऋतुयें होती हैं। ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर और बसन्त। जिन्हे हम ऋतु धर्म कहते हैं। इन ऋतुओं का पृथक २ धर्म है। सभी ऋतुये काल से नियन्त्रित हैं और सब अपने प्राकृतिक गुण धर्मों से वेष्ठित है। ग्रीष्म से उष्णता, वर्षा से जल, शरद से शीत इत्यादि। इन्हीं ऋतुओं के कालक्रमानुसार देह के दसों इन्द्रियों का कार्यक्रम निर्धारित है। इसी ऋतु धर्म के अनुसार प्रत्येक कर्म की व्यवस्था शास्त्र मे दी गई है। अर्थात किस ऋतु मे कौन सा कार्य करना हितकर होगा? जैसे-बीजोप्ति, बीज-वपन, धान्य-छेदन, रस-प्रवाह आदि विषय कृषि के उत्पादन कर्म में काल से नियन्त्रित होकर काम करते हैं। इसलिये धर्म ने काल के प्रत्येक अणु एवं परमाणु पर अपना सह-अस्तित्व सम्बन्ध रखा है। काल ही धर्म है। इसलिये धर्म, काल को ज्ञान की कसौटी पर परखता है। यह अधिकार धर्म ने अपने पुत्र ज्ञान को सौंपा है। ऋषि मुनियों के दिव्य चक्षु से निकला हुआ वह ज्ञान सुस्पष्ट घोषणा करता है कि वह दिन अब दूर नहीं जबकि विश्व में एक ही धर्म के आधार पर मानव-समाज बनेगा जिसे हम विश्व धर्म प्रतिष्ठान के नाम से प्रतिष्ठापित करेंगे।

दशम पराग

अमा की अर्ध निशा में जब तारागण व्योम पर टिमटिमा रहे थे और संसार मूक था, युगुल तरुण उषा और प्रदीप सुदूर एक निर्जन वन के जैन मन्दिर में तन्त्र की साधना करने के पूर्व दर्शन शास्त्र की चर्चा करने लगे ।

उषा ने कहा : दर्शन शब्द कितना प्रिय है मेरे सुहृद !

प्रदीप : यथार्थ है देवि ! दर्शन शब्द की व्यापकता गैनोक्ता में व्याप्त है। सत्यासत्य का ज्ञान, पद-पदार्थों का ज्ञान, तत्वों का ज्ञान, सृष्टि की उत्पत्ति और उसका सृजन कब और कैसे हुआ, चेतन-अचेतन का भेद, कर्तव्य-अकर्तव्य तथा उचित-अनुचित का ज्ञान और साधना-मार्ग आदि दर्शन के ही द्वारा होता है।

उषा : पाश्चात्य दर्शन जिसे हम फिलासफी कहते हैं वह हमारे भारतीय दर्शन-शास्त्र की गहनता को नहीं पाता। फिलासफी शब्द की उत्पत्ति ग्रीस ने की। पाश्चात्य फिलासफी शब्द का अर्थ विद्यानुरागिता ही कहा जाता है। संसार के आश्चर्य पूर्ण पद पदार्थों का अवलोकन कर उनके रहस्यों को जानने की जिज्ञासा से पाश्चात्य दार्शनिक कल्पनाओं की कूंची से अपने मानस-पटल में अलंकृत करता है। उसका दर्शन मनोविनोद ही पर एक मात्र आधारित है। भारतीय दर्शन हमें इस लोक और परलोक दोनों का दिग्दर्शन कराता है।

प्रदीप : मनोविज्ञान, तत्व-मीमांसा, सौन्दर्य-मीमांसा, प्रमाण-मीमांसा, आचार-मीमांसा तथा तर्क-शास्त्र ऐसे विषयों में पाश्चात्य और प्राच्य-दर्शन में बहुत कुछ साम्यता है, देवि !

मनोविज्ञान–जिसे अङ्गरेजी में साइकालोजी कहते हैं—आकृति को देखकर उनके रूप-रङ्ग आदि लक्षणों का अध्ययन करने के पश्चात् मानव का स्वभाव, कार्य करने की क्षमता एवं प्रवृत्ति आदि का ज्ञान इस मनोविज्ञान से ही होता है।

तत्व मीमांसा–पाश्चात्य दार्शनिक इसे मेटाफिजिक्स कहता है। इस दर्शन की आधार भित्ति 'सत्' है। प्रकृति के सत्य स्वरूप को अलंकृत कर 'प्रतीति' से पृथक

करने की क्षमता इसी दर्शन में है। भौतिक पदार्थ, जैसे-तरुवर, पर्वत, सरिता, आदि और सुख, दुःख, नीरवता ऐसी मानसिक गतिविधि इन्हें दोनों सिद्धान्त वादियो ने समान रूप में माना है। कुछ मन्य दार्शनिकों ने शाश्वत सत्य को सर्वोत्कृष्ट माना है।

सौन्दर्य मीमांसा—पाश्चात्य दर्शन एस्थेटिक्स के नाम से प्रसिद्ध है। सौन्दर्य के तत्व की व्याख्या किसी वस्तु को सुन्दर क्यों माने और वह वस्तु सुख दुख का उद्‌गम कैसे बनती हैं और कला की भावाभिव्यञ्जना आदि इस दर्शन का मुख्य विषय है।

प्रमाण मीमांसा—जिसे पाश्चात्य दार्शनिक एपिस्टोमालोजी कहता है: इस दर्शन में ज्ञान का विवेचन किया जाता है। ज्ञान का व्यवहारिक और आन्तरिक दोनो पक्षो का प्रतिपादन इसमें है। सत्य और असत्य का निर्णय, अनेक प्रमाणोसे ज्ञान का सिंहावलोकन, ज्ञान का स्वरूप तथा ज्ञान की अपरिमित सीमा, ज्ञान-गहनता तथाज्ञान का असीम स्वरूप आदि विषयों की विशद व्याख्या इस दर्शन ने की है।

आचार मीमांसा—जिसे पाश्चात्य दर्शन ने एथिक्स की संज्ञा दी है। यह विषय मानव जीवन के आचार एवं चरित्र की उत्कृष्टता का प्रतीक है। कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का ज्ञान, सुख और कल्याण की प्राप्ति, यम-नियम आहार-विहार आदि का ज्ञान यह दर्शन कराता है।

तर्क-शास्त्र—जिसे पाश्चात्य दार्शनिक लाजिक कहता है। सत्य और असत्य को तर्क की कसौटी पर उतार कर उसे कसना, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष की प्रामाणिकता को तर्क के आधार पर निर्णय देना आदि इस दर्शन के विशिष्ट अंग हैं।

पाश्चात्य जगत का मानव दर्शन के व्यावहारिक पक्ष को अपने जीवन में उतार कर मुक्ति का साधन करता है। प्राच्य जगत का दार्शनिक दर्शन शास्त्र को धर्म की भूमि पर उतार कर आध्यात्मिक सत्ता की छाप लगाता है। शुद्ध शब्दों में धर्म और भारतीय दर्शन परस्पर एक दूसरे में समन्वय स्थापित करता है।

उपा बौद्ध-दर्शन, जैन-दर्शन, शैव-दर्शन, चार्वाक-दर्शन, गीता-दर्शन, न्याय-दर्शन, सांख्य-दर्शन, योग-दर्शन, वैशेषिक-दर्शन, अद्वैत-वेदान्त-दर्शन, मीमांसा-दर्शन, वैष्णव-दर्शन, शैव-दर्शन, शाक्त-दर्शन आदि के अध्ययन से कितना सुख की सीमा कल्पना से परे है। धर्म के वस्तुतः यही स्रोत हैं। इन ग्रन्थ मणियो का पर्यालोचन करने से मानव को परम सुख मिलता है।

दर्शनों का उद्‌गम स्थान वेद ही हैं। पाश्चात्य विद्वान वेद को नित्य नहीं मानते परन्तु प्राच्य विद्वान एवं धर्म के साक्षात स्वरूप महर्षियो

ने वेद को नित्य माना है। त्रैलोक्य की सत्ता के विभिन्न ज्ञान का अक्षय भण्डार वेद ही हैं। वेद का विभाजन तीन विभागों में हुआ है। प्रथम मन्त्र विभाग जिसे संहिता कहते हैं, दूसरा ब्राह्मण विभाग और तीसरा आरण्यक विभाग। किसी विशिष्ट देवता की साधना, स्तुति-वन्दना आदि में प्रयुक्त होने वाले अर्थ वाक्य को 'मन्त्र' और यज्ञानुष्ठानादि का सम्यक् रूप से प्रतिपादन करने कराने वाले को "ब्राह्मण" कहते हैं। ब्राह्मण के ही अन्तर्गत आरण्यक आता है।

प्रदीप : ऐसा प्रतीत होता है कि आज की शिक्षा तन्त्र साधना की अपेक्षा इसी ज्ञान के आनन्दातिरेक में व्यतीत होगी दीदि!

उषा : मुझे भी कुछ ऐसा ही आभासित हो रहा है। इसी ओर हम दोनों का अनुराग बढ़ता जा रहा है। जी चाहता है आरम्भ काल तक इसी विषय का रसास्वादन होता रहे।

प्रदीप : प्रच्छन्न सी प्रतिपाद्य विषय और-दर्शन की भी कुछ चर्चा हो जाय। वेद के विभागों में प्रथम संहिता की मान्यता दी है। संहिताओं के भी चार रूप हैं। ऋग्-संहिता, साम-संहिता, यजुः-संहिता और अथर्व संहिता। पुराणों में उल्लिखित महर्षि वेद व्यास ने यज्ञानुष्ठानादि हेत्वर्थ—होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा इन चार ऋत्विजों की आवश्यकता मानी है।

होता का कार्य—यज्ञानुष्ठानादि में प्रतिष्ठापित तत्सत् देवताओं का प्रशंसात्मक मन्त्रों द्वारा आह्वान करना। ऋग्वेद में हौत्र कार्य से सम्बन्धित मन्त्रों का महत्व पूर्ण संकलन है।

उद्गाता—मन्त्रों की ऋचाओं में स्वर लय और ध्वनि का ध्यान करते हुये उद्गाता उन्हें मधुर स्वरों में गाता है। संगीत का उद्गम सामवेद है। सामवेद की ऋचाओं पर जो प्राणी अपने कण्ठ को साफ और साध कर स्वर-लय और ध्वनि के साथ चलता है वह महत्तत्त्व को पाने की क्षमता रखता है।

अध्वर्यु—यज्ञानुष्ठानों से सम्बन्धित उनके विविध कर्मों एवं क्रियाओं का विधिवत संचालन करना होता है। आध्वर्य-कर्म का ज्ञान अर्जित करने के लिये यजुःसंहिता है।

ब्रह्मा—यज्ञानुष्ठानादि कार्यों में ब्रह्मा का उत्तरदायित्व सबसे अधिक है। यज्ञानुष्ठानादि से सम्बन्धित आदि से अन्त तक समस्त कार्यों का निर्विघ्न समाप्त

होना तथा सांकल्पित लक्ष्य की सिद्धि होना आदि सब ब्रह्मा पर ही निर्भर है। अत यज्ञादि में ब्रह्मा का अधिकार उसी को दिया जाता है जो समस्त वेद वेदाङ्गो मे पारङ्गत हो।

उषा ने कहा . आरण्यकों में भी यज्ञानुष्ठानादि का उल्लेख मिलता है। यागादि कर्मों के आध्यात्मिक रहस्य की मीमांसा सुन्दर ढङ्ग मे आरण्यको मे की गई है। समस्त उपनिषदों का उद्गम आरण्यक है। उपनिषदों को इसलिये वेदान्त की संज्ञा दी है।

कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड इन दो रूपों का वर्णन वेद मे मिलता है। उपनिषद् ज्ञानकाण्ड के अंग है और संहिता कर्मकाण्ड के।

वेदों में देवोपासना, स्तुति, वन्दना आदि मुख्य विषयो का समावेश है। देवताओं के तीन स्थान निम्नप्रकार से विभाजित किये हैं। पृथ्वी, अन्तरिक्ष और आकाश।

पृथ्वी में अग्नि, अन्तरिक्ष में इन्द्र और आकाश में सौर देवता सूर्य, विष्णु और सविता आदि का निवास है। अग्नि का महत्त्व सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। अग्नि की पूजा, उपासना, स्तुति, वन्दना ऋषिमुनियों के काल से आज दिन भी चली आ रही है। वरुण का स्थान हमारे वेदों में सर्वोत्कृष्ट माना गया है। प्राणिमात्र के शुभाशुभ कर्मों को देखने वाला एवम् उनके फलो को देने वाला साक्षी स्वरूप वरुण ही है।

इन्द्र—जलवृष्टि के देवता है। युद्ध-संग्राम में विजय के दाता है। और दानवो के संहारक हैं।

विष्णु—सूर्य के प्रतीक विष्णु ने तीन डगों से त्रैलोक्य को माप डाला। विष्णु जी का रथ बकरे खींचते है और कर मे उनके कलशा रहती है। मृतक प्राणियो को पितृलोक मे पहुंचाने का कार्य विष्णु जी ही सम्पादन करते हैं।

प्रदीप ने आश्चर्य—मुद्रा मे उषा की ओर निहार कर कहा ऋग्वेद में तो देवतागण को भी असुरों की कोटि मे माना गया है। इन्द्र और वरुण ऐसे देवता असुर कहे गये हैं। पर उस असुर या असुरत्व देवताओं का बल अथवा सामर्थ्य के रूप में प्रकट होता है।

उषा ने कहा अब कुछ उपनिषदों की चर्चा कीजिये।

वेद का उपनिषद् उत्कृष्ट प्रति निधित्व करता है। व्याकरण के सूत्र से उप तथा नि उपसर्ग सद् धातु से क्विप प्रत्यय की युक्ति में होता है। सद् धातु तीन अर्थों को अभिव्यक्त करता है। जिसे विशरण प्राप्ति और अवसादन कहते हैं। उपनिषद् का यथार्थ सम्बन्ध अध्यात्म विद्या से है। धर्म के मूलभूत तथा ब्रह्म के स्वरूप की प्राप्ति उपनिषद् ही से होती है। मुक्तिकोपनिषद में उपनिषदों की तालिका दी है। ऋग्वेद के १० शुक्ल यजुर्वेद के १६, कृष्ण यजुर्वेद के ३२, सामवेद के १६ और अर्थवेद के ३१ उपनिदो का उल्लेख मुक्तिकोपनिषद् में किया गया है जिनकी कुल संख्या एक सौ आठ की माला मे पिरोइ गई है। कुछ उपनिषद् गद्यात्मक, कुछ पद्यात्मक और कुछ गद्य पद्यात्मक दोनों हैं। आद्य शंकराचार्य ने ऋग्वेदीय उपनिषदो मे ऐतरेय तथा कौषीतकि, अथर्व उपनिषदो मे—मुण्डक और माण्डूक्य, कृष्ण यजु उपनिषदों मे-तैत्तरीय, कठ, महानारायण, श्वेताश्वतर और मैत्रायिणी, साम-उपनिषदों मे-छान्दोग्य और केन, शुक्ल यजुर्वेद उपनिषदो मे-ईशावास्य और बृहदारण्यक। आदि पर भाष्य लिखे हैं। शङ्कराचार्य द्वारा लिखित व्याख्यात उपनिषद्-ग्रन्थ की लोक प्रियता सर्वोत्कृष्ट है। अद्वैतवाद का सिद्धान्त स्वीकार कर शंकराचार्य जी ने उपनिषदों का संपादन किया है। रामानुजाचार्य विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुयायी हैं।

आत्म तत्व का ज्ञान उपनिषदो मे ही होता है। शरीर, स्वप्न, सुषुप्ति और आत्मा यह चार चैतन्य स्वरूप के स्तर बतलाये हैं।

ब्रह्म तत्व का ज्ञान भी उपनिषद् कराते है। आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक यह तीन विधान ब्रह्म तत्त्व के हैं। उत्पत्ति, स्थिति और विनाश के कारणों का अनुसन्धान आधि भौतिक पद्धति कराती है। देवताओं मे शक्ति संचार करने वाले परमात्म तत्व का आधिदैविक पद्धति गवेषणा करती है। मानस प्रक्रियाओं एव शारीरिक कार्य कलापों के मूल-भूत आत्मतत्व का निरूपण आध्यात्मिक पद्धति से किया जाता है।

ब्रह्म के दो स्वरूपों का विशद वर्णन उपनिषदों में किया गया है। एक सगुण ब्रह्म और दूसरा निर्गुण ब्रह्म। निर्गुण ब्रह्म निराकार को अभिव्यक्त करना है। इसमें किसी चिन्ह या ऐसे गुण का विवरण नहीं होता। परन्तु सगुण ब्रह्म में चिन्ह, लक्षण, चित्र आदि का बोध कराया जाता है।

सगुण ब्रह्म के दो लक्षण हैं—तटस्थ और स्वरूप।

किसी वस्तु एवं पदार्थ के अस्थाई एवं परिवर्तन शील होने को तटस्थ और वस्तु के शुद्ध स्वरूप एवं उसके सात्विक रूप की उपलब्धि को स्वरूप लक्षण कहते हैं।

ब्रह्म की तीन ही स्वाभाविक शक्तियों का उल्लेख उपनिषदों में किया गया है। जिसे ज्ञान शक्ति, बल शक्ति और क्रिया शक्ति कहते हैं।

तटस्थ सगुण ब्रह्म का लक्षण छान्दोग्य-उपनिषद् में "तज्जलान्" शब्द मे सन्निहित है। तज्जलान् शब्द तज्ज, तल्ल, और तदन् इन तीन के योग से बना है। तज्ज का अर्थ उसी मे लीन होना, तल्ल का अर्थ उसी में प्राण धारण करना, और तदन् का अर्थ जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय के परमतत्व का ज्ञान कराना।

निर्गुण ब्रह्म के सम्बन्ध में केनोपनिषद् मे ब्रह्म का वर्णन करते हुये कहा है कि–

यद् वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥

अर्थात् जो वाणी मे कहा नही जा सकता पर वाणी जिसकी शक्ति के आधार पर बोलती है उसे ही ब्रह्म समझना चाहिये। जिसकी उपासना मे तुम्हारी अनुरक्ति हो, यह नहीं।

मुण्डक उपनिषद् मे कहा है कि सृष्टि का उत्पादन तथा निमित्त का एक मात्र कारण ब्रह्म ही है। परमात्मा से पहले आकाश की उत्पत्ति हुई, आकाश से वायु, वायु में अग्नि, अग्नि से जल, जल में पृथ्वी, और पृथ्वी से समस्त जगत्।

उषा ने कहा: ब्रह्म की प्राप्ति जीव को तब तक नही होती जब तक उसे सत्यासत्य का ज्ञान जगत् मे वैराग्य की भावना उसमें जाग्रत नही होती। ब्रह्मलोक मे जाने वाले जिज्ञासु को प्रथम यह निर्णय लेना होता है कि मैं किस मार्ग को अपनाऊ। देवयान अथवा पितृयान। ज्ञान के अभ्युदय हो जाने पर जिज्ञासु श्रद्धा और तपस्या करता हुआ देवयान का मार्ग अपनाकर ब्रह्मलोक मे प्रवेश करता है। इस प्रकार वह जिज्ञासु परब्रह्म मे लीन हो जाता है। श्रौत स्मार्त कर्म में प्रवृत्त मानव को पितृ यान द्वारा चन्द्रलोक की प्राप्ति होती है। ऐसे मानव आवागमन के बन्धन मे बंधे स्व-कर्मानुसार बार बार जन्म लेते हैं। पर बृहदारण्यक श्रुति का कथन है कि जो प्राणी कामना रहित हो जाता है वह मरण पर अमरतत्व को प्राप्त कर लेता है और उसे इसी लोक मे ब्रह्म की अनुभूति होती है।

प्रदीप ने उषा से पूछा : तुम्हारी दृष्टि में कौन सा मार्ग उत्तम है, जिसे हम दोनों अपनाकर ब्रह्म में समा जावें।

उषा ने स्मित-मुख हो कहा : इसका निर्णय आपको करना है। मुझे तो आप निमित्त-मात्र समझें।

प्रदीप ने विहस कर कहा : आत्म तत्व पर उतर कर प्रथम आत्म साक्षात्कार हो जाने दे तत्पश्चात् भावी रूप रेखा स्वतः बन जायगी।

उषा ने कहा : अब कुछ जैन-दर्शन पर वाद-संवाद हो जाय।

प्रदीप : जैन धर्म का काल निरूपण "निगण्ठ" नाम की प्राचीनता से होता है जो "निर्ग्रन्थ" शब्द के नाम से भी प्रसिद्ध है। इस धर्म में सिद्ध विभूतियों की संज्ञा "अर्हत्" है। राग द्वेष से मुक्त हो उनका दमन करने वाला धर्म "जैन" शब्द को अलंकृत करता है। जैन सम्प्रदाय अपने धर्म पीठों को "तीर्थंकर" के नाम से सम्बोधित करता है। जैन धर्म के तीर्थंकर ऋषभ देव माने जाते हैं। इनकी आत्मिक विज्ञता एवं चारित्रिक उत्कर्ष की पराकाष्ठा पुराणों में भी मिलती है। श्री ऋषभ देव के सम्बन्ध में इतिहासकारों ने लिखा है कि यह मनु के वंशज थे। महीपति नाभि और महाराज्ञी मरुदेवी के होनहार सुत थे। इनके एक सौ पुत्र थे। महाराज भरत सबसे ज्येष्ठ थे, जो जड़-भरत के नाम से प्रसिद्ध थे। आध्यात्मिक जगत में उतर कर इन्होंने संसार में अविस्मरणीय प्रतिभा एवं प्रतिष्ठा स्थापित की। ऐतिहासिक दृष्टि से इन्हीं की दिग् दिगन्त प्रतिभा के फल स्वरूप "भारत" इस देश का नामकरण संस्कार हुआ जो भारतवर्ष के नाम से विश्व में आलोकित हुआ।

ऋषभनाथ की गणना ब्राह्मण-धर्म के चौबीस अवतारों में की गई है। जैन धर्म ग्रन्थों में तेइस तीर्थंकरों का सविस्तृत वर्णन किया गया है।

आज का विद्वान विवेचनात्मक दृष्टि से पार्श्वनाथ को ही जैन धर्म का प्रवर्तक मानता है। महावीर से ढाई सौ वर्ष पूर्व श्री पार्श्वनाथ ने जैन धर्म को भारत की भूमि पर सींचकर उसे उर्वरा कर दिया। पार्श्वनाथ जी के पिता अश्वसेन काशी के राजा थे और महारानी वामा देवी इनकी माता थीं। इतिहास इनके जन्म काल का काल निरूपण ८१७ ई० पूर्व काशी नगरी का करता है। पार्श्वनाथ इनका नाम क्यों पड़ा ? इस सम्बन्ध में कहा जाता है कि जन्म से पूर्व इनकी माता ने किसी कृष्ण वर्ण नाग को अपने निकट देखा था इसी भावना को लेकर इनका नामकरण संस्कार किया गया। श्री पार्श्वनाथ जी का गृहस्थ जीवन तीस वर्ष तक रहा।

तत्पश्चात् अपनी अपार सम्पत्ति व वैभव को त्याग कर तपोभूमि में उतर कर भिक्षा वृत्ति को स्वीकार किया और कैवल्य की प्राप्ति हेतु लग गये। सत्तर वर्ष की आयु तक इन्होंने जैनधर्म का अपने प्रभावोत्पादक उपदेशों से व्यापक प्रचार किया। अन्त में 'समेत शिखर' पर निर्वाण पद को प्राप्त हुये।

पार्श्वनाथ और महावीर की शिक्षा में जैन ग्रन्थों के अनुसार कुछ भिन्नता सी प्रतीत होती है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह इन चार महाव्रतों पर पार्श्वनाथ जी ने उपदेश दिये हैं। पर महावीर जी ने ब्रह्मचर्य की भी उपादेयता इन चार महाव्रतों के समकक्ष मानी है। पार्श्वनाथ सुन्दर वस्त्र धारण के पक्ष में थे पर महावीर जी ने वैराग्य-पथ पर यतियों को वस्त्र परिधान का परित्याग कर साधना के हेतु नग्न अवस्था में रहना ही आदर्श बताया है। श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायों का परस्पर भेद उसी काल से सिद्धान्तत चला आ रहा है।

वर्धमान महावीर बिहार प्रान्तर्गत मुजफ्फरनगर के बसाढ नामक ग्राम में उत्पन्न हुए थे। वैशाली नाम का यह क्षेत्र क्षत्रिय वंशों का था। पार्श्वनाथ के ढाई सौ वर्ष पश्चात् ५९९ ईसवी में 'ज्ञातृक' क्षत्री कुल में इनका जन्म हुआ था। सिद्धार्थ इनके पिता और माता त्रिशला थी। इनकी धर्म पत्नी का नाम श्वेताम्बर सम्प्रदाय यशोदा देवी बताता है। इनके ज्येष्ठ भ्राता का नाम नन्दिवर्धन था। बाल काल से ही वैराग्य का बीज इनमें अंकुरित हो गया। तीस वर्ष की आयु में इन्होंने यति धर्म को अङ्गीकृत किया। तेरह वर्ष तक सतत तपश्चर्या और स्वाध्याय से इन्हे 'कैवल्य' की प्राप्ति हुई। सर्व प्रथम इन्होंने अपने परम शिष्य इन्द्रभूति को शिक्षित किया। अंग, मगध, कौशाम्बी ऐसे अनेक राज्याधिपतियों को अपने मधुर उपदेशों से प्रभावित कर उन्हें धर्म दीक्षा दी। इनके व्याख्यानों से जैन धर्म का उत्तर भारत में व्यापक प्रचार हुआ और बहुत से जैन धर्म के अनुयायी हो गये। बहत्तर वर्ष की आयु में पावापुरी ग्राम में महावीर जी ने निर्वाण प्राप्त किया।

जैन धर्म का विपुल साहित्य नष्ट प्राय सा यत्र तत्र बिखरा पड़ा है। दार्शनिक ग्रन्थों का अपार भण्डार जैन साहित्य में है। प्रमाण सम्बन्धी ग्रन्थों की अपेक्षा आचार सम्बन्धी ग्रन्थों का बाहुल्य है।

जैन धर्म का सिद्धान्त पैंतालिस भागों में विभक्त है। जिनमें ११ अङ्ग, १२ उपाङ्ग, १० प्रकीर्ण, ६ छेद सूत्र, ४ मूल ग्रन्थ तथा २ स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं।

उमास्वाति, कुन्दकुन्दाचार्य, समन्त भद्र, सिद्धसेन दिवाकर, हरिभद्र, भट्ट अकलंक, विद्यानन्दन, वादिराजसूरि, देवसूरि, हेमचन्द्र मल्लिषेणसूरि, गुण रत्न, यशो विजय

आदि जैन धर्म सम्प्रदाय के उद्भट विद्वान है जिनका गुण गान आज दिन भी किया जाता है ।

जैन ज्ञान मीमासा के अनुसार जीव चैतन्य स्वरूप है । ज्ञान साक्षी है, पर कर्मो के आवरण से वह स्वरूप दृष्टि से ओझल रहता है । ज्ञान दो प्रकार का होता है । प्रत्यक्ष और परोक्ष । आत्मसापेक्ष ज्ञान को प्रत्यक्ष और इन्द्रिय-मन सापेक्ष ज्ञान को परोक्ष मानते हैं ।

परोक्ष ज्ञान भी दो प्रकार का होता है । मति और श्रुत । इन्द्रिय और मन के सहारे यह दोनो चलते है । मति भी दो प्रकार के होते है । अनिन्द्रिय जन्य और मानस-जन्य ।

शब्द से उत्पन्न बोध कराने वाले को श्रुति ज्ञान कहा जाता है । जैन दर्शन प्रमाण मीमांसा के अन्तर्गत प्रत्यक्ष, अनुमान तथा आगम इन तीन प्रमाणों को स्वीकार करता है । लोक व्यवहार हेतु अनुमान-प्रमाण को विशिष्ट स्थान दिया है ।

स्याद्वाद—जैन दर्शन का मुख्य सिद्धान्त माना गया है । स्याद्वाद ने ही कैवल्य ज्ञान का द्वार पट खोला है । प्रत्येक परामर्श से पहले उसे सापेक्ष बनाने के लिये 'स्यात्' विशेषण की युक्ति जैन दर्शन मे अपेक्षित है । सुप्रसिद्ध स्याद्वाद जैन दर्शन के इतिहास मे अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है । इसे अनेकान्तवाद भी कहते है । स्याद्वाद की उत्पत्ति महावीर ने स्वयं भगवती सत्र में स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, तथा स्याद् अवक्तव्य इन तीन भागो का सुस्पष्ट वर्णन किया है ।

अनन्त धर्मो मे से एक धर्म के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने को जैन दर्शन 'नय' के नाम से संबोधित करता है । 'नयवाद' भी जैन दर्शन मे अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है । विषय का सांक्षेप निरूपण ही नयवाद है । नयवाद के दो भेद हैं—द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नय ।

प्रथम नय तीन प्रकार का अन्तिम चार प्रकार का नय होता है इस प्रकार कुल योग सात होता है । नैगम—नय, संग्रह नय, व्यवहार नय, ऋजुनय, शब्द नय, समभिरुढ़ नय और एवंभूत नय ।

जैन दर्शन में 'पुद्गल' शब्द का विशिष्ट स्थान है । 'पुद्गल' शब्द की निरुक्ति सर्व दर्शन संग्रह मे बताई गई है । पूरयन्ति गलन्ति च, अर्थात् जो पूर्ण होकर गल जाय । उसे पुद्गल कहते हैं । पुद्गल के दो रूप हैं । अणु और संघात । पुद्गल के सूक्ष्माति

सूक्ष्म अंश को "अणु" कहते। दो या इनसे अधिक सूक्ष्म अंशो के परस्पर मिलने से 'संघात' होता है। इन्हीं संघातों से मन, प्राण आदि की सृष्टि व्यवस्थित की गई है,

पुद्गल पदार्थों के चार गुण हैं—स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण। जैन दर्शन सूक्ष्मत्व, स्थूलत्व, अन्धकार, छाया आदि के सदृश उत्पन्न हुये अवान्तर परिणाम के सूचक हैं।

जैन धर्म मे आकाश दो प्रकार का मानते हैं। लोकाकाश और अलोकाकाश। और काल के पाँच उपकार होते है। वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व। परन्तु आकाश और काल की कल्पना अनुमान की आधार भित्ति पर की जाती है।

काल के दो भेद होते हैं—व्यावहारिक काल और पारमार्थिक काल। गणना अर्थात् संख्या के रूप घटी पलादि का बोध कराने वाले को व्यावहारिक काल के नाम से संबोधित करते हैं।

पारमार्थिक काल—नित्य कल्पना में व्यवहृत है। यह पदार्थों की स्थिति का नित्य बोध कराता है।

जैन दर्शन में मोक्ष की साधना के तीन अङ्ग है—सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र। दर्शन को यहा श्रद्धा की कोटि मे माना है। मोक्ष द्वार पर पहुचने के लिये आकार रूप श्रद्धा का सोपान अपेक्षित है।

जैन दर्शन अन्य समस्त दर्शनो में अपना स्वतन्त्र स्थान रखता है। इसमें भौतिक कर्म की प्रधानता दी गई है। कर्मों का वर्णन इन्होंने आठ प्रकार से किया है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, वेदनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय। इन कर्मों के अन्तर्गत जैन दर्शन सात पदार्थों का उल्लेख करता है। आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, जीव और सातवां अजीव।

आस्रव के दो रूप हैं—भावास्रव और द्रव्यास्रव।

बन्ध पाच प्रकार का होता है—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। यह कर्म स्वरूप जीवन के बन्धन द्वार हैं। इन कर्मो से सम्बन्ध विच्छेद को सवर कहते हैं। संवर भी दो रूप को अलंकृत करते हैं—भाव संवर और द्रव्य सवर।

श्रद्धा—सोपान के प्रथम दण्ड पर चढ़कर सोपान का दूसरा दण्ड निर्जरा है। जिसमें मोक्ष का पट है। मोक्ष-मार्ग को जैन दर्शन 'गुण स्थान' कहता है। गुण स्थानों की संख्या चौदह है। मिथ्यात्व, ग्रन्थि भेद, मिश्र, अविरत सम्यग्दृष्टि, देश-

विरति, प्रमत्त, अप्रमत्त, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्म साम्पराय, उपशान्त मोह, क्षीण मोह सयोग-केवल और अयोग केवल। लोकाकाश और अलोकाकाश के मध्य एक पुनीत स्थल है जिसे "सिद्ध शिला" कहा जाता है। यही स्थान शाश्वत शान्ति का द्योतक माना जाता है।

सम्यक् चरित्र की साधना के सोपान जैन दर्शन ने पांच महाव्रतों को बताया है अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह।

इस प्रकार जैन दर्शन वास्तववाद का प्रतिपादक है। अहिंसा को जैन दर्शन अपना परम पुनीत धर्म मानता है।

उषा ने कहा जैन दर्शन का अहिंसा मार्ग यद्यपि सर्वोत्कृष्ट भावना है पर जिस कोटि की भावना से जैन धर्म ने अहिंसा को उतारा है उस कोटि में चेतन स्वरूप जीव का पहुंचना आज के युग में दुस्तर है। प्रकृति स्वभाव से ही एक जीव से दूसरे जीव का भक्षण कराती है। भावनाओं की हिंसा चेतना-जगत में अछूती नहीं रह सकती। आज का मानव बिरला ही कोई होगा जिसमें भावनाओं की हिंसा सूक्ष्माति-सूक्ष्म अणु रूप विद्यमान न हो। अहिंसा की भावनाओं से मानव अपने अन्तर्जगत को शोध कर निःसन्देह निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

प्रदीप : देवि ! तुम्हारा कथन सत्य है। प्राकृतिक गुण—दोषों के योग से एवं पञ्चतत्वों की त्रैलोक्य व्यापकता को देख कर सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं की हिंसा न होना कल्पना से परे है। पर अचेतन पिण्ड में प्राणी पहुंच कर संज्ञाशून्य सा हो जाता है। उस मूक संसार में प्राणी अपनी सूक्ष्माति सूक्ष्म भावनाओं का अन्त कर देता है।

प्रदीप ने कहा श्रौत-दर्शन और जैन-दर्शन की चर्चा तो हो चुकी अब कुछ बौद्ध-दर्शन की चर्चा कर डालें।

उषा बोली : भौतिक जगत में बुद्ध-धर्म ने मानव को उबार कर उन्हें जो धर्म और अध्यात्म के रहस्यों का दिग्दर्शन कराया वह स्तुत्य है। अपने अध्ययन काल में विश्व के सभी दर्शनों का अध्ययन करते समय जब मैंने बौद्ध-दर्शन के ग्रन्थों का अवलोकन किया तो मुझे बहुत ही प्रिय लगा।

बौद्ध-धर्म के प्रवर्तक गौतम बुद्ध, ईसा के ४४८ वर्ष पूर्व अर्थात् ५०५ विक्रम संवत् के पूर्व वैशाख शुक्ल की पूर्णिमा तिथि को शाक्यगणाधिपति शुद्धोदन की धर्म-पत्नी

माया देवी के गर्भ में उत्पन्न हुये। अपनी युवावस्था में ही आप को वैराग्य की भावना जागी और उन्तीस वर्ष की आयु में ही आपने राज-वैभव एवं प्रेम-पराग-रस-पूरित अपनी भार्या को छोड़कर तथा अपने एक मात्र नव जात शिशुकी ममता को अपनी स्मृति-पटल से भुला कर काषाय चीर धारण किया और भिक्षा पात्र लेकर रात्रि की अर्ध बेला में महाभिनिष्क्रमण के लिये चल दिये। पचीस वर्ष की आयु में अपने प्रखर मस्तिष्क, स्वाध्याय और तपश्चर्या से चन्द्र की पूर्ण कला वैशाखी पूर्णिमा को 'बुद्धत्व' प्राप्त किया। सुत्त पिटक, विनय पिटक, अभिधम्म पिटक, यह तीन पिटक आपके उपदेश ग्रन्थ हैं। सुत्ति पिटक में पांच निकाय हैं—दीघ निकाय, मज्झिम निकाय, संयुक्त निकाय, अंगुत्तर निकाय और खुद्दक निकाय।

आचार शिक्षा के अन्तर्गत बुद्ध ने कर्त्तव्य-मार्ग को अधिक महत्व दिया। जरामरण, जाति, भव उपादान, तृष्णा वेदना, स्पर्श षडायतन, नामरूप, विज्ञान, संस्कार और अविद्या यह बारह निदानों को जिसे 'भव चक्र' की संज्ञा दी गई है बुद्ध ने इन पर विशेष बल दिया।

आर्य सत्य को उन्होंने चार भावनाओं में उतारा है–प्रथम आर्य सत्य को दुःख माना है, द्वितीय को दुःख समुदाय, तृतीय को दुःख निरोध और चतुर्थ को निर्वाण-मार्ग की संज्ञा दी है।

बुद्ध ने सांसारिक जीवन से निखरने के लिये "मध्यम प्रतिपदा" मार्ग का संचालन किया। जिसे अष्टांगिक मार्ग भी कहा जाता है। सम्यक् ज्ञान, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक्-आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि, अष्टाङ्गिक मार्ग के रूप हैं।

बौद्ध-दर्शन-अहिंसा, अस्तेय, सत्य भाषण, ब्रह्मचर्य और मादक पदार्थों का वर्जन इन 'पंचशील' सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है।

बुद्ध दर्शन ने उपनिषदों के इस सिद्धान्त "ऋते ज्ञानान्न मुक्ति" को अपनाया है। वह यह स्वीकार करता है कि बिना शरीर-शुद्धि के ज्ञान का विकास नहीं हो पाता। इसलिये मन की शुद्धि के साथ साथ गात्र शुद्धि भी नितान्त आवश्यक है। इस युक्ति से बौद्ध ने तीन साधन अपनाये हैं। शील, समाधि और प्रज्ञा। शील का तात्पर्य समस्त सात्विक कर्मों से है। पंचशील' इसी के अन्तर्गत आते है। समाधि के भी तीन रूप हैं–पूर्व-जन्म-स्मृति, जीवोत्पत्ति एवं उसके विनाश का ज्ञान, तथा चित्त के बाधक विषयों का ज्ञान। प्रज्ञा को भी तीन प्रकार में रखा है–श्रुतमयी

चिन्तामयी और भावना मयी। प्रज्ञा की साधना से मानव को निर्वाण की प्राप्ति हो जाती है।

बौद्ध धर्म ने आचार के आधार-भूत शिक्षाओं के अन्तर्गत दो सिद्धान्तों का मुख्य रूप से प्रतिपादन किया है। प्रथम संघात वाद और दूसरा सन्तान वाद। आत्मा के रहस्य का ज्ञान करना और कराना इनका मुख्य विषय था। आत्मा के रूपों का वर्णन इन्होंने, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान इन चार प्रकार से किया है।

बौद्ध के स्थविरवाद की व्यापक प्रतिष्ठा देखकर काल की गति ने महा सांघिक नामक एक वाद उत्पन्न कर दिया। जो 'महायान' के नाम से उदित हुआ। स्थविरवाद के पोषकों को हीनयान कहा जाता है। महासांघिक वाद, सर्वास्ति वाद, साम्मितवाद, वैपुल्य वाद, इन चारों वादों का रूप विकसित हुआ और चीन, तिब्बत, कोरिया, जापान और मंगोलिया में अपना आधिपत्य जमा बैठा। इस प्रकार से महायान की व्यापकता इन राष्ट्रों में हुई। हीनयान का प्रचार भारत के दक्षिण एवं पूर्वीय भागों में जैसे-बरमा, जावा, स्याम और सिंहल आदि प्रदेशों में हुआ।

श्रावक, प्रत्येक और सम्यक् यह तीन यान बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार देखने में आते हैं। हीनयान श्रावक को मानता है। श्रावक की चार अवस्थायें हैं—सोतापन्न सकदागामी, अनागामी और अर्हत।

महायान में बोधिसत्व की कल्पना अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। बोधिसत्व का अर्थ कूट जगत् की कल्याण मयी साधना है। इसके दो प्रधान गुण—महामैत्री और महा करुणा है। हीनयान के रूखे ज्ञान पर महायान ने भक्ति और प्रेम सुधा की वृद्धि कर बौद्ध की काया-कल्प कर दी। महायान के युग में मन्त्र-तन्त्र का विपुल विकास हुआ। इस प्रकार 'मन्त्रयान' का स्वरूप अलंकृत हुआ। कुछ समय पश्चात् 'वज्रयान' का जन्म हुआ। जिसमें मद्य, मन्त्र, और हठयोग की साधना व्यापक हुई। 'वज्रयान' दार्शनिक पृष्ठ भूमि पर शून्यवाद को लेकर चला। बौद्ध धर्म में तान्त्रिक शक्तियों का अभ्युदय वज्रयान ने किया। भारत के उत्तर प्रदेशों में सम्पूर्ण पूर्वीय भारत में सहजयान का रूप देकर वज्रयान ने तन्त्र की व्यापकता की।

विद्वान ब्राह्मण दार्शनिकों ने बुद्ध दर्शन को चार सम्प्रदायों में विभाजित किया है, जो वैभाषिक, सौतान्त्रिक, योगाचार और माध्यमिक के नाम से प्रसिद्ध है।

वैभाषिक सम्प्रदाय हीनयान का मतानुयायी है। शेष तीन सम्प्रदायों का सम्बन्ध महायान से है।

वैभाषिक सम्प्रदाय—संसार को सत्य और निर्वाण को भी सत्य स्वरूप मानता है।

माध्यमिक सम्प्रदाय—संसार को असत्य अर्थात् मिथ्या समझता है, इसी दृष्टि से निर्वाण को भी असत्य एवं मिथ्या समझता है।

सौतान्त्रिक सम्प्रदाय—संसार को सत्य मानता है पर निर्वाण की गति को असत्य मानता है।

योगाचार सम्प्रदाय—संसार को असत्य अर्थात् मिथ्या समझता है और निर्वाण को सत्य स्वरूप स्वीकार करता है।

विक्रमी संवत् से पूर्व पाचवीं शताब्दी से दशवीं शताब्दी तक अर्थात् पन्द्रह सौ वर्ष की अवधि तक बौद्ध-धर्म तथा उसके दर्शन का स्वरूप व्यापक प्रतिष्ठा स्थापित किये रहा। इस दृष्टि से बौद्ध-काल-निरूपण को अलकृत कर आचार्यों ने 'त्रिचक्र' रूपी काल की सत्ता देकर पांच पांच सौ वर्ष के अन्तर्गत तीन विभागों में बाटा।

प्रथम काल विभाग में वैभाषिक मत की सत्ता को माना जिसमें आत्मा के अनस्तित्व का सिद्धान्त प्रमुख माना जाता था। 'अर्हत्' पद की प्राप्ति प्राणिमात्र का चरम लक्ष्य था।

दूसरे काल विभाग में 'शून्यवाद' प्रतिष्ठापित हुआ जो कि शकराचार्य के अद्वैत वाद को प्रश्रय देता रहा। 'अर्हत्' की विचार संकीर्णता से उभर कर सर्व लोक का कल्याण सूचक यह 'शून्यवाद' अखिल विश्व मे अपनी प्रभु-सत्ता स्थापित करने लगा। मानव-मात्र के कल्याणार्थ इसने उदार भाव उपस्थित किया।

तीसरे काल विभाग में विज्ञान-चैतन्य-मात्र की सत्यता प्रतिष्ठापित हुई। जिसमे न्याय को जीवन का मुख्य अङ्ग समझा गया और 'शून्यवाद' को दोष पूर्ण सिद्ध किया गया। विज्ञानवाद का यह स्वरूप जिसे योगाचार भी कहा जाता है बौद्ध दर्शन के तीसरे काल विभाग का प्रतीक है।

बौद्ध दर्शन में मौलिक कल्पना का धीरे धीरे ह्रास होने लगा। आहार-विहार एवं आचार-विचार की दुर्बलता तथा काल-चक्र के वशीभूत बौद्ध धर्म शिथिल होने लगा।

प्रदीप : आज की निशा क्या दार्शनिक विवेचनों में ही बीतेगी ?

उषा : अध्ययन काल की पुनरावृत्ति होना ही चाहिये । शास्त्र-शास्त्र के विनोद मे पता नहीं क्यों आज की निशा उमड़ पड़ आई ।

प्रदीप बात कुछ ऐसी ही प्रतीत होती है । अच्छा तो अब न्याय-दर्शन पर भी कुछ प्रकाश डाला जाय ।

उषा समस्त विद्याओं का दीप पुञ्ज न्याय-दर्शन ही है । समस्त धर्मों का आश्रयदाता एवं समस्त कर्मों का पथ-प्रदर्शक न्याय-दर्शन भी है ।

प्रदीप वात्सायन ने अपने न्याय भाष्य मे "प्रमाणैरर्थ परीक्षणं न्यायः" अर्थात अनेक प्रमाणो द्वारा किसी वस्तु के मूल तत्त्व की परीक्षा कर निर्णय देना" न्याय कहलाता है । न्याय शब्द की अपनी परिभाषा है—प्रतिज्ञा, हेतु, दृष्टान्त, उपनय, और निगमन यह पांच अवयव न्याय-दर्शन के पारिभाषिक रूप को अलंकृत करते हैं । इस विद्या को अन्वीक्षिकी विद्या भी कहते है । प्रत्यक्ष एवं शब्द प्रमाण द्वारा जो विषय से अवगत कराये उसका नाम अन्वीक्षिकी विद्या है । न्याय-शास्त्र अनुमान हेतु, वाद, तर्क, प्रमाण, आदि अपने विविध अङ्गो को लेकर चलता है । न्याय-दर्शन और वैशेषिक-दर्शन दोनो अन्योन्याश्रित है । न्याय का वैशेषिक "प्रतितन्त्र" सिद्धान्त वात्सायन ने माना है । दोनों दर्शनों मे परस्पर समन्वय है ।

ऐतिहासिक दृष्टि से न्याय-दर्शन की उत्पत्ति लगभग दो हजार वर्ष प्राचीन है । गौतम ने प्रथम "पदार्थ मीमासात्मक" प्रणाली को जन्म दिया । तत्पश्चात् दूसरी प्रणाली "प्रमाण मीमांसात्मक" के प्रवर्त्तक श्री गङ्गेश जी उपाध्याय हुये । गौतम मिथिला निवासी थे ।

न्यायसूत्र की विभक्ति पांच अध्यायों मे हुई है । प्रत्येक अध्याय दो आह्निको को अलंकृत करते हैं । सोलह पदार्थों के उद्देश्य, लक्षण एवं परीक्षण इन खण्डो में अभिव्यक्त किये गये है । जिन्हे-प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल-छिद्र, जाति और निग्रह के नाम से संबोधित करते है ।

न्याय-प्रमाण मीमांसा में ज्ञान को अधिष्ठाता माना है । ज्ञान ही आत्मा की ज्योति है । ज्ञान के दो रूप हैं—स्मृति और अनुभव । स्मृति से भी जो भिन्न हो ऐसे ज्ञान को 'अनुभव' कहा जाता है । अनुभव भी दो प्रकार का होता है—यथार्थ और अयथार्थ । यथार्थ को प्रमा और अयथार्थ ज्ञान को "अप्रमा" कहते है ।

प्रमा के भी चार रूप है—प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमति और शाब्द। प्रत्यक्षीकृत को प्रत्यक्ष, अनुमान द्वारा अनुभव कर सिद्ध करना 'अनुमिति, सादृश-ज्ञान की अनुभूतियों पर आधारित उसे 'उपमिति' तथा वचन रूपी शब्दों से कहे हुये वाक्यों पर आधारित 'शाब्द' कहा जाता है।

अप्रमा के तीन रूप हैं। संशय, विपर्यय और तर्क। संदिग्ध भावोत्पादकता का नाम 'संशय' है। मिथ्या ज्ञान को 'विपर्यय' कहते है। किसी वस्तु स्थिति के मूल तत्व को परिहार द्वारा खण्डन-मण्डन करने को 'तर्क' कहते हैं।

प्रत्यक्ष प्रमाण के दो स्वरूप हैं—निर्विकल्पक और सविकल्पक। इसके अतिरिक्त दो और भेद हैं जिन्हें—लौकिक और अलौकिक के नाम से सम्बोधित किया जाता है। लौकिक प्रत्यक्ष के भी दो भेद हैं—बाह्य और आभ्यान्तरिक।

बाह्य प्रत्यक्ष भी पाँच प्रकार का होता है, जिसे—चक्षु, श्रवण, स्पर्शन रसास्वादन और घ्राण कहते हैं।

अलौकिक ज्ञान तीन प्रकार का होता है-अलौकिक, सन्निकर्ष और योगज।

प्रदीप : अब कुछ अनुमान प्रमाण के सम्बन्ध में भी बतायें, हृदय वत्सले।

इसे तो आप ही बताने की कृपा करें, देव स्वरूप।

अनुमान-प्रमाण की कल्पना न्याय-दर्शन ने तीन प्रकार से की है—पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतो दृष्ट। अनुमान प्रमाण के दो और भेद है—स्वार्थानुमान और परार्थानुमान। प्रतिज्ञा, हेतु, दृष्टान्त उपनय और निगमन—परार्थानुमान इन पांच वाक्यों की आधार शिला है।

पाश्चात्य न्याय-दर्शन में अनुमान-प्रमाण को साध्यवाक्य, पक्षवाक्य और फलवाक्य, केवल इन तीन आधार शिलाओं पर खड़ा किया है।

हेत्वाभास पांच अधिकारों को लेकर चलता है—पक्षेसत्ता, सपक्षेसत्ता, विपक्षाद् व्यावृत्ति, असत्प्रतिपक्षत्व और अबाधित विषयत्व।

सव्यभिचार, विरुद्ध, प्रकरण सम, साध्य सम और कालातीत यह पांच नाम रूप हेत्वाभास को ही अलंकृत करते हैं।

उपमान प्रमाण—किसी अनुकूल वस्तु के साथ सादृश्य होकर नई वस्तु ज्ञान को उपमान प्रमाण के नाम से कहा जाता है।

शब्द प्रमाण—न्याय सूत्र में 'आप्तोपदेश: शब्द:' कहा जाता है। अर्थात् किसी आप्त विभूति के उपदेश रूपी वचनों को 'शब्द' माना है। वह विद्वान जो वाक्य प्रमाण से किसी वस्तु स्थिति को सिद्ध करने की क्षमता रखता है उसे 'आप्त' कहा गया है। न्याय-दर्शन वस्तुत मानव मात्र के लिये कल्याण प्रद है।

प्रदीप हम दोनों ने विद्यार्थी जीवन में साथ साथ दर्शन—शास्त्र का ही अध्ययन किया और उसी को अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न तो कर रहे हैं पर विषय की गहनता तो इतनी है कि कभी कभी मन उलझ जाता है, देवि।

उषा : यथार्थ है, देव। पर यदि हमारा यह अनुराग का विषय बन जाय तो हमें उतना ही आनन्द मिलेगा।

प्रदीप : सत्य कहती हो, देवि। किसी विषय में मानव जब तक अनुराग—रञ्जित नहीं हो जाता तब तक उसका मन कभी कभी इसी प्रकार थकित हो जाता है। विद्यार्थी जीवन के पश्चात आज की अर्ध निशा में यह प्रथम शुभ वेला है जब हम दोनो साधना युक्त एक आसन से बैठकर सभी दर्शनों की चर्चा कर रहे हैं।

उषा स्मित मुख हो बोली अन्त में हमें अपने जीवन—दर्शन में उतरना ही होगा, इसलिये उसे ज्ञान की कसौटी पर कस कर परखते रहें।

प्रदीप : अब गीता-दर्शन की कुछ चर्चा हो जाय। महर्षि वेदव्यास द्वारा लिखित महाभारत की सारभूत आत्म स्वरूप श्री मद् भगवद्गीता केवल सात सौ श्लोकों से युक्त कल्प वृक्ष के समान सभी धर्मों एवं दार्शनिक सिद्धान्तों का समन्वय स्थापित करती हुई विश्व के कोने कोने में छा गई। आत्मानुभूति का प्रतिपादक उपनिषद् मोक्ष साधना का उपदेशक सांख्य: समाज, धर्म, राजनीति आदि कर्म क्षेत्र का प्रतिपादक-कर्म मीमांसा, कैवल्य की प्राप्ति कराने वाला योग, रागात्मिक बुद्धि को भक्ति में लगा कर आत्म समर्पण के सिद्धान्त का प्रतिपादक पांच रात्र ऐसे मर्मस्पर्शी एवं दार्शनिक तत्वों का रसमय सामञ्जस्य स्थापित कर श्री गीता ने मानव जाति को अक्षुण्ण निधि दी है।

गीता ने ब्रह्म तत्व की सुन्दर मीमांसा की है। सगुण और निर्गुण ब्रह्म दोनों को एक ही अभिन्न तत्व बतलाया है। गीता भगवान के ब्रह्म स्वरूप दो भावों को अभिव्यक्त करती है। पर भाव और अपर भाव। इसी प्रकार गीता ने दो प्रकृतियों का वर्णन किया है जो परा और अपरा कही जाती हैं। आत्मा की अभिव्यक्ति गीता में सर्वोत्कृष्ट ढङ्ग से की गई है। गीता ने जगत् तत्व के सम्बन्ध में दृष्टान्त देते

हुये समझाया है कि त्रैलोक्य की उत्पत्ति, स्थिति और लय का कारण भगवान है। भगवान बीज स्वरूप है। बीज से वृक्ष पल्लवित हो पुन बीज मे ही जिस प्रकार लीन हो जाता है, उसी प्रकार यह विश्व है। गीता प्रकृति का आधिपति ईश्वर मानती है। प्रकृति समस्त संसार की जननी है। गीता की दृष्टि मे यह जगत् सत्य स्वरूप तथा यथार्थ है। चेतन वृक्ष और सचेतन तत्व को "अक्षर ब्रह्म" कहा गया है।

श्री शंकराचार्य ने ज्ञान-मार्ग और निवृत्ति-मार्ग से ही गीता को अपने अन्तर्जगत मे उतारा। श्री रामानुजाचार्य ने भक्ति मार्ग से अपने में गीता को उतारा, बाल गंगाधर तिलक ने प्रवृत्ति मार्ग तथा कर्मयोग के अन्तर्गत गीता को उतारा यह तो अपने अपने ज्ञान चक्षु से अपने अपने अन्तर्दर्पण मे देखने की बातें हैं। परन्तु सर्व धर्म एवं दर्शनो की कसौटी पर कसकर तथा गीता द्वारा प्रतिपादित श्लोको के तथ्यो का अध्ययन कर सुस्पष्ट विदित होता है कि गीता ने कर्म मार्ग, ज्ञान मार्ग ध्यान मार्ग और भक्ति मार्ग इन्हीं चार मार्गों का दिग्दर्शन कराया। गीता ने कर्म योग पर विशेषबल दिया। कर्म का प्रयोजन यागादि कर्मों से है।

यज्ञ कई प्रकार के माने गये है। ज्ञान-यज्ञ, तपो-यज्ञ, द्रव्य-यज्ञ आदि-यज्ञ की कोटि में आते हैं। गीता ने उपदेश देते हुये कहा है कि—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्म फलं हेतुर्भूर्माते संगोस्त्व कर्मणि॥

अर्थात् कर्म करने का अधिकार आपको है पर फल की आकांक्षा से नही। कर्मो के फल की वासना वाला भी मत हो और तेरी कर्म न करने मे प्रीति न हो।

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः।
सर्व कर्म फलं त्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः॥

इस श्लोक मे श्री कृष्ण भगवान ने अर्जुन से कहा ' पण्डित वर्ग तो काम्य कर्मो के त्याग को सन्यास समझते है और कितने ही विचार शील पुरुष सब कर्मों के त्याग को त्याग कहते हैं। इस भाव से कर्तृत्व का अभिमान ही त्याज्य है। सारांश मे सबसे सुखद बात यह है कि श्री भगवान के चरणारविन्द मे फल को समर्पण कर काम्यकर्म करना उचित है। इस दृष्टि से गीता ज्ञान का भक्ति योग अमृत रूपी फल को स्वतः देने वाला है।

गीता में प्रेम-रस-पूरित भक्ति-तत्त्व को उदाहरण देकर समझाया है कि—

मत्कर्मकृन् मत्परमो मद्भक्तः संगः वर्जितः ।
निर्वैरः सर्वो भूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥

हे अर्जुन ! जो मानव केवल मेरे ही लिये (सब कुछ मेरा समझता हुआ) यज्ञ, दान और तप आदि सम्पूर्ण कर्त्तव्य कर्मों को करने वाला है (और) मेरे परायण है अर्थात् मेरे को परम आश्रय और परम गति मानकर मेरी प्राप्ति के लिये तत्पर है तथा मेरा भक्त है अर्थात मेरे नाम, गुण, प्रभाव और रहस्य के श्रवण, कीर्त्तन, मनन, ध्यान और पठन पाठन का प्रेम सहित निष्काम भाव से निरन्तर अभ्यास करने वाला है और आसक्ति रहित है अर्थात् स्त्री, पुत्र और धनादि सम्पूर्ण सासारिक पदार्थों से स्नेह नहीं करता है और सम्पूर्ण प्राणियों में वैर भाव से रहित है ऐसा वह अनन्य भक्ति वाला मानव मुझे ही प्राप्त होता है ।

अत. भक्ति मार्ग ही एक ऐसा साधन है जिससे भगवत् प्राप्ति होती है ।

गीता-ज्ञान-सकाम और निष्काम उपासना का द्योतक है । यह निर्गुण उपासना की अपेक्षा सगुण उपासना पर विशेष बल देता है ।

गीता का मार्मिक तत्व-ज्ञान उसके नवें अध्याय के चौंतीसवें श्लोक से प्रतिपादित होता है—

मन्मना भव मद् भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामे वैष्यसि युक्तैव मात्मानं मत्परायणः ॥

अर्थात्—हे अर्जुन ! केवल परमात्मा मे ही अनन्य प्रेम से नित्य निरन्तर अचल मनवाला हो और मुझ परमेश्वर को ही श्रद्धा प्रेम सहित निष्काम भाव से नाम, गुण और प्रभाव को श्रवण, कीर्तन, मनन और पठन पाठन द्वारा निरन्तर भजने वाला हो तथा मेरा (शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और किरीट-कुण्डल आदि भूषणो से युक्त पीताम्बर, वन माला और कौस्तुभमणि धारी) विष्णु का मन, वाणी और शरीर के द्वारा सर्वस्व अर्पण करके अतिशय श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से विह्वलतापूर्वक पूजन करने वाला हो और मुझ सर्वशक्तिमान विभूति बल, ऐश्वर्य, माधुर्य गम्भीरता, उदारता, वात्सल्य और सुहृदयता आदि गुणो से सम्पन्न सबके आश्रय रूप वासुदेव को विनम्रभाव पूर्वक भक्ति सहित साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर इस प्रकार भवि

मेरे शरण हुआ तो वह आत्मा तो मरे मे एक ही भाव करके मुझे ही प्राप्त होगा ।

इस श्लोक के सार-गर्भित शब्दों मे गीता ने मानव के जीवन की सभी गुत्थियों को सुलझा कर उसका हृदय निर्मल कर दिया जिससे माया का मोहान्धकार ओझल हो गया ।

गीता–मानव को राग, द्वेष, क्लेश, भय, क्रोध आदि से मुक्त कराकर जीवन-ज्योति जगाती है । अन्त में मानव की गति स्थित प्रज्ञ की हो जाती है । गीता मुक्ति प्रदायनी है । सब उपनिषदों मे गीता का उत्कृष्ट स्थान है । अत. गीता का पाठ घर घर नित्य होना चाहिये ।

प्रदीप— वैशेषिक दर्शन पर अब तुम्हें ही कुछ प्रकाश डालना है ।

उषा . आपकी आज्ञा शिरोधार्य है; देव ।

वैशेषिक शब्द का अर्थ इन्द्रियों के ग्रहण करने से है । वैशेषिक संसार में उत्पन्न वस्तुओं को "पदार्थ" शब्द का प्रयोग करते हैं ।

पदार्थ के दो भेद वैशेषिक-दर्शन मे प्रतिपादित किये गये हैं । पहला भाव-पदार्थ और दूसरा अभाव-पदार्थ ।

भाव-पदार्थ को भी छै रूपों में अभिव्यक्त किया है–द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय ।

अभाव पदार्थ को चार रूप में माना है—प्राग भाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव और अन्योन्याभाव ।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन यह नौ द्रव्य पदार्थ वैशेषिकों ने माने हैं ।

पृथ्वी के दो रूप—नित्य और अनित्य बतलाये हैं । अनित्य पृथ्वी की तीन अन्तरकोटियां हैं—शरीर, इन्द्रिय और विषय ।

वैशेषिक दर्शन आत्मा को नित्य द्रव्य मानता है । वह मन को आत्मा नही मानता ।

वैशेषिक ने गुण की प्रधानता दी है और कर्म को वह क्षणिक मानता है । गुण सत्रह प्रकार के होते है – रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथकत्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दु:ख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न ।

प्रशस्त पाद ने छै अन्य गुणों का वर्णन किया है—गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, अदृष्ट और शब्द ।

अदृष्ट गुण दो प्रकार का होता है—धर्म और अधर्म ।

इस प्रकार गुणों की कुल संख्या चौबीस हो जाती है । इन २४ गुणों मे संख्या, परिमाण, पृथकत्व, संयोग, विभाव, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व गुरुत्व और वेग यह दस सामान्य गुण कहे जाते है और शेष चौदह गुण विशेष माने जाते हैं ।

नैयायिको और वैशेषिको में इन गुणों के सम्बन्ध मे परस्पर मतभेद है ।

वैशेषिको ने कर्म पाच प्रकार का माना है—उत्क्षेपण, अपक्षेपण, आकुंचन, प्रसारण और गमन ।

वैशेषिक भी परमाणु को जगत् का उपादान बताता है । परमाणु की संख्या चार है—पार्थिव, जलीय, तैजस और वायवीय ।

वैशेषिक–ज्ञान को दो प्रकार का मानता है–विद्या और अविद्या ।

अविद्या के चार भेद हैं— संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय और स्वप्न ।

संशय भी दो प्रकार का होता है—अन्तःकरण और बाह्य ।

वैशेषिक दर्शन की कर्त्तव्य मीमांसा मे महर्षि कणाद ने धर्म की व्याख्या कर कहा है कि—

"यतोऽभ्युदय निःश्रेय स सिद्धिः स धर्म."

यहा अभ्युदय का अर्थ तत्व ज्ञान और निःश्रेयस का प्रयोजन मोक्ष से है । अर्थात् धर्म उसे कहते हैं जो तत्वज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति करा सके ।

धर्म-साधना दो प्रकार से की जाती है—सामान्य और विशेष ।

सामान्य धर्मों में—श्रद्धा, अहिंसा, प्राणिहित-साधन, सत्य वचन, अस्तेय (चोरी न करना,) ब्रह्मचर्य, अनुपधा, (भावशुद्धि) अक्रोध, स्नान, पवित्र द्रव्य सेवन, अभीष्ट देव. भक्ति, उपवास और अप्रमाद ।

विशेष धर्म का वर्णन स्मृतियों मे किया गया है जो सकाम कर्मों की परिधि में आता है ।

वैशेषिक ज्ञानवाद का पोषक है । यह ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करता है या नहीं । इसमे सिद्धान्तिक दार्शनिको का मतभेद है ।

वैशेषिक आदि जाति की केवल मानस-सत्ता स्वीकार करते हैं और बौद्ध दर्शन जाति की कल्पना भी नहीं करता।

वैशेषिक आदि भी जाति नाम से स्वीकार करता है पर वह वस्तुतः उसे जन्म से स्वीकार नहीं करता।

प्रदीप—आपने वैशेषिक दर्शन का कितना सुन्दर वर्णन किया, देवि। अब कुछ सांख्य-दर्शन के विषय में प्रकाश डालने की कृपा करें।

उषा : सांख्य-दर्शन में मुझे अपने अध्ययन काल में भी बडी अभिरुचि रही। इसी से मैं प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई थी।

सांख्य दर्शन के प्रणेता कपिल मुनि हैं। उनके लिखे हुये दो उत्कृष्ट ग्रन्थ तत्व समास और सांख्य सूत्र हैं।

सांख्य दर्शन जीवों का उत्कृष्ट दर्शन ग्रन्थ है। ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थ आश्रम और सन्यस्थ आश्रम इन तीनों में कल्याण का सूचक सांख्य दर्शन है।

सांख्य-दर्शन में तत्वों का विभाजन चार प्रकार से किया गया है और पचीस तत्वों को पृथक पृथक माना है।

प्रथम तत्व प्रकृति स्वरूप को प्रकृति या अव्यक्त के नाम से पुकारा है। विकृति में सोलह तत्व आते हैं—ज्ञानेन्द्रिय पांच, कर्मेन्द्रिय पांच, महाभूत पांच और सोलहवां मन।

प्रकृति-विकृति में कुल सात तत्व माने गये हैं—महत्तत्व, अहंकार, तन्मात्रा (शब्द तन्मात्रा, स्पर्श तन्मात्रा, रूप तन्मात्रा, रस तन्मात्रा और गन्ध तन्मात्रा।

सांख्य दर्शन द्वैत सिद्धान्त का पोषक है। इसने प्रकृति और पुरुष को दो प्रकार के मूल तत्व माने हैं जिनके संयोग से जगत् की उत्पत्ति हुई है। स्थूल-सूक्ष्म आदि समस्त प्राणियों एवं पदार्थों की उत्पादिका प्रकृति को ही माना है।

सांख्य दर्शन तीन प्रमाणों को स्वीकार करता है—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द प्रमाण।

सांख्य दर्शन में अहिंसा को विशेष स्थान दिया है। सांख्य दर्शन इसी जन्म में मुक्ति प्राप्ति की सिद्धि स्वीकार करता है।

इसने मुक्ति के दो रूप बतलाये हैं–प्रथम जीवन्मुक्ति और दूसरा विदेह मुक्ति। जीवन्मुक्ति प्राणी प्रारब्ध कर्म पर विश्वास करता है। ज्ञान, सत्य स्वरूप ज्ञान की उपलब्धि हो जाने पर मानव इसी जन्म में जीवन्मुक्ति पा लेता है।

सांख्य दर्शन ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करता। सांख्य, चैतन्य की सत्ता पुरुष रूप में स्वीकृत करता है, इसने प्रकृति और पुरुष को ही एकमात्र तत्व अङ्गीकार किया है। इस दृष्टि से सांख्य दर्शन भौतिक जगत में उतर कर सांसारिक सुखों का उपभोग कराता है।

प्रदीप : मुझे स्मरण है कि मीमांसा-दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान आचार्य श्री ब्रह्मानन्द जी ने एम० ए० के प्रथम वर्ष में मुझे मीमांसा-दर्शन पढ़ाया था। उन्होंने प्रामाणिकता के साथ सिद्ध किया था कि मीमांसा-दर्शन समस्त दर्शनों से प्राचीन है। यह धर्म की महान निधि है।

इस दर्शन से हवन एवं यज्ञादि का सर्वाङ्ग ज्ञान होता है। श्रौत कर्मों का सम्पूर्ण ज्ञान मीमांसा दर्शन कराता है। प्राचीन काल में इसे 'न्याय' के नाम से पुकारते थे। यह दर्शन परिहारों का भण्डार है कर्मकाण्ड से सम्बन्धित समस्त विषयों पर परिहारों द्वारा प्रतिपादन किया गया है–

मीमांसा-दर्शन के सूत्रधार जैमिनि माने जाते है। उप वर्ष, शबर स्वामी, कुमारिल, मण्डन मिश्र, पार्थसारथि मिश्र, माधवाचार्य, खण्ड देव मिश्र और प्रभाकर मिश्र यह आठ आचार्य प्रमुख हैं जिन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना कर मीमांसा दर्शन को सींचा और पल्लवित किया।

मीमांसा दर्शन ने सत्य एवं अज्ञात पदार्थ के ज्ञान को 'प्रभा'' कहा है। प्रभा को प्रमाण की संज्ञा दी है।

प्रमाण को छै रूपों मे माना है–प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, और छठा अनुपलब्धि। मीमांसा वास्तविक स्वरूप को स्वीकार करता है।

प्रत्यक्ष के दो भेद हैं—निर्विकल्पक और सविकल्प।

पाच अवयवों मे प्रतीज्ञा, हेतु और दृष्टान्त तीन ही को मीमांसा स्वीकार करता है।

किसी शब्द के अर्थ का बोध होना उसे "शाब्दी" प्रमा कहते है।

वाक्य के दो रूप है–पौरुषेय और अपौरुषेय।

आप्त पुरुष द्वारा व्यवहृत वाक्य को पौरुषेय और अपौरुषेय वाक्य को तो श्रुति ही कहते हैं।

वाक्यों की मान्यता दो प्रकार से की जाती है–सिद्धार्थ वाक्य और विधायक वाक्य। किसी वस्तुस्थिति का बोध कराने वाले–सिद्धार्थ वाक्य और यज्ञानुष्ठानादि की प्रेरणा देने वाले वाक्य को विधायक वाक्य कहा गया है।

मीमांसा में वेद को अपौरुषेय माना है। अतः वेद विहित विषयों का विवेचन इसमें अनुसन्धानात्मक दृष्टि से किया गया है।

वेद के पाँच विषय मुख्य माने गये हैं–विधि, मन्त्र, नामधेय, निषेध और अर्थवाद।

विधि के चार रूप हैं–उत्पत्ति, विनियोग, अधिकार और प्रयोग विधि।

मीमांसक–आत्मा को कर्ता और भोक्ता दोनों मानता है और कर्म को दो रूप में विभाजित करता है–स्पन्दन और परिणाम।

मीमांसक मुख्य रूप से धर्म ही का प्रतिपादन करता है। जैमिनि ने धर्म का लक्षण बताते हुए कहा है कि–"चोदना लक्षणोऽर्थो धर्मः" वेद के विधि वाक्य को प्रमाणित करता है। अतः वेदविहित वाक्य लक्षणों के अर्थों का प्रतिपादक धर्म होता है।

मीमांसा–दर्शन का स्वरूप "भावना" है और मोक्ष के सम्बन्ध में मीमांसकों ने सूक्ष्म विवेचन किया है। 'शब्द' की मीमांसा जिस शास्त्रीय एवं व्याख्यात्मक दृष्टि से मीमांसा दर्शन में की गई है वह अतुल्य है। वाक्यों का सम्पूर्ण ज्ञान मीमांसा दर्शन से ही होता है। अतः यह दर्शन वैदिक धर्म और ज्ञान-विज्ञान क्षेत्र में अपनी विलक्षणता रखता है।

तथा: अद्वैत वेदान्त-दर्शन आध्यात्मिक उत्कर्ष का मूल स्रोत विन्दु माना जाता है। बादरायण व्यास ने इसी पर साढ़े पाँच सौ सूत्रों का 'स्वल्पकलेवर' नामक ब्रह्म सूत्रों के एक ग्रन्थ का प्रणयन किया जिसे "भिक्षु सूत्र" भी कहा जाता है–

ब्रह्म सूत्र चार अध्यायों में है–समन्वयाध्याय, अविरोधाध्याय, साधनाध्याय और फलाध्याय।

समन्वयाध्याय–समस्त वेदान्त वाक्यों का प्रत्यक्ष एवं परम्परानुगत अद्वितीय ब्रह्म में तात्पर्य बताया है।

अविरोधाध्याय–स्मृति, तर्कादि का परिहारात्मक दृष्टि से समझाकर ब्रह्म की सत्ता स्थापित की है।

साधनाध्याय–सगुण-निर्गुण ब्रह्म को स्वरूप, धर्म, यज्ञानुष्ठानादि, शम, दम, निदिध्यासन आदि की साधना का प्रतिपादक है।

फलाध्याय–सगुण-निर्गुण के फलों का निरूपण एवं विवेचन इस अध्याय मे किया गया है।

अद्वैत वेदान्त के मुख्य आचार्य आठ है। आत्रेय, आस्मरथ्य, औडुलोमि, कार्ष्णाजिनि, काशकृत्स्न, जैमिनि, बादरि और आचार्य कश्यप।

अद्वैत-वेदान्त के प्रतिपादक एवं वैदिक-धर्म के उद्धारक श्री शङ्कराचार्य का जन्म ७८८ ई० अर्थात सवत् ८४५ विक्रमीय मे हुआ था और ८२० ईसवी इनका निर्वाण समय बताया जाता है। इस प्रकार केवल बत्तीस वर्ष की आयु मे ही आपने अपनी असाधारण प्रतिभा, पाण्डित्य, तर्क पटुता तथा ज्ञान के तेज पुंज से मानव जगत को प्रभावित कर लिया।

प्रस्थानत्रयी का भाष्य लिखकर आपने अद्वैतवाद की धाक जमा दी। जिसके फलस्वरूप यह भगवान शङ्कराचार्य के नाम से पूजित हुये। आपका जन्म मालावार प्रान्तर्गत नम्बूद्री ब्राह्मण के घर मे हुआ था पर इनका अध्ययन और कर्म क्षेत्र काशी रहा।

अद्वैतवाद के प्रवर्त्तकाचार्य गौडपाद के प्रमुख शिष्य श्री गोविन्द भगवत्पाद से इन्होने दीक्षा ली थी। आठ वर्ष की आयु मे भगवान शंकराचार्य ने चारों वेदों का अध्ययन किया, बारह वर्ष की आयु मे सर्वशास्त्रों के ज्ञाता हो गये, सोलह वर्ष की आयु मे कर्म क्षेत्र मे उतर गये और संसार मे ख्याति प्राप्त की।

अद्वैतवाद ब्रह्म की एकरूपता और जगत् की अनेकात्मकता मानता है। आत्मा को ज्ञानरूप और ज्ञाता दोनो मानता है। इसलिये आत्मा की अद्वैतता यह सिद्ध करता है।

ब्रह्म को अद्वैत सिद्धान्त ने निर्विकल्पक और निर्विकार माना है। स्वरूप लक्षण और तटस्थ लक्षण-ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप का निरूपण करने के लिये इन दो लक्षणों को अद्वैतवाद ने बताया है।

माया को सत-असत् भिन्न अभिन्न आदि से परे बताकर उसे अनिर्वचनीय शब्द से विभूषित किया है।

आवरण और विक्षेप माया की यह दो शक्तियां बताई हैं।

अद्वैत-दर्शन ईश्वर को जगत् का उपादान कारण बतलाता है। माया द्वारा आच्छादित निर्विशेष ब्रह्म जब सगुण भाव को अपने मे धारण करता है तब उसे ईश्वर कहा जाता है।

अन्तःकरण में प्रतिबिम्बित चैतन्य को जीव कहते हैं। किसी अद्वैतवादी ने ईश्वर चैतन्य माना है और किसी ने जीव चैतन्य। इस प्रकार अद्वैत-दर्शन मे भी मत-मतान्तर प्रचलित हुए हैं।

अद्वैत सिद्धान्तानुसार श्री शंकराचार्य ने जगत् को मिथ्या माना है। क्योंकि यह परिवर्तनशील है।

भगवान शंकराचार्य ने ब्रह्म मात्र को सत्य माना है। ब्रह्म से पृथक जगत को कुछ लोगों ने भ्रमवश जगत को मिथ्या बता दिया है, पर ऐसा नहीं। वेदान्त मे मिथ्या का अर्थ अनिर्वचनीय है, असत्य नहीं।

वेदान्त-दर्शन तीन प्रकार की सत्ता मानता है—प्रातिभासिक, व्यावहारिक और पारमार्थिक।

जगत के पदार्थों में पाँच के पाँच रूप माने हैं—अस्ति, भाति, प्रिय, रूप और नाम इनमें आदि के तीन रूप ब्रह्म के और दो अन्त के रूप जगत् के हैं। जगत की अनिर्वचनीय कल्पना को वेदान्त ने विवर्त्तवाद कहा है।

कारण को सत्य और कार्य को अनिर्वचनीय वेदान्त दर्शन बताता है। वेदान्ती आत्मा को स्वभाव से नित्य मुक्त मानता है। वेदान्त दर्शन ने "अध्यास" पर विशेष बल दिया है। 'अध्यास' का अर्थ किसी पदार्थ में उससे भिन्न पदार्थ को उसमें संयुक्त करना।

वेदान्त दर्शन ने सकाम कर्मों के अनुष्ठानों को असुरों की संज्ञा दी है। अद्वैत सिद्धान्त आत्मा और ब्रह्म का एकत्व मानता है। यह एक जीववाद के सिद्धान्त का प्रतिपादक है। वस्तुतः अद्वैत वेदान्त दर्शन समस्त दर्शनों मे अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

प्रदीप : भारत में वैष्णव-दर्शन की भी प्रतिष्ठा कुछ कम नहीं। अतः इस सम्बन्ध में भी कुछ प्रकाश डालें।

उषा : वैष्णव-दर्शन-ज्ञान और भक्ति मार्ग का प्रतीक है। वैष्णव-दर्शन के अन्तर्गत चार मुख्य सम्प्रदायों ने जन्म लिया—श्री वैष्णव सम्प्रदाय, ब्रह्म सम्प्रदाय,

रुद्र सम्प्रदाय और सनक सम्प्रदाय। वैष्णव सम्प्रदाय की प्रवर्त्तिका लक्ष्मी, ब्रह्म सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक ब्रह्मा; रुद्र सम्प्रदाय के प्रवर्तक रुद्र और सनत्कुमार सनक सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक माने जाते है। विशिष्टा द्वैत सिद्धान्त के मुख्य आचार्य रामानुज श्री वैष्णव सम्प्रदाय के पक्षपाती द्वैत सिद्धान्त (मध्व) ब्रह्म सम्प्रदाय के पोषक, आचार्य आनन्द तीर्थ, शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक एवं रुद्र सम्प्रदाय के अनुयायी आचार्य विष्णु स्वामी एवं वल्लभाचार्य द्वैताद्वैत सिद्धान्त के प्रतिपादक तथा सनक सम्प्रदाय के अनुयायी निम्बार्काचार्य माने गये हैं।

पांच रात्र को सभी सम्प्रदायो ने अपनाया है पर वैष्णव सम्प्रदाय इससे विशेष प्रभावित है।

पुराणो की ओर दृष्टि डालने पर पता चलता है कि रामानुज सम्प्रदाय ने विष्णु पुराण को अपनाया है। ब्रह्म सम्प्रदाय और वल्लभ सम्प्रदाय दोनो ने श्रीमद्भागवत को विशेष महत्व दिया है।

रामानुज सम्प्रदाय की छाप दक्षिण भारत पर व्यापक पड़ी। भक्ति रस की सरस वृष्टि कर भक्तजनों के हृदयों को आत्म विभोर कर दिया। इस प्रकार तामिल प्रान्त मे वैष्णव धर्म दशवीं शताब्दी में उत्कर्ष पर पहुंच गया था।

रामानुज सम्प्रदाय ने तीन पदार्थ माने है—चित्, अचित् और ईश्वर।

चित् का अर्थ जीव से अचित का जगत् से और ईश्वर को सर्वान्तर्यामी बताया है। इस सम्प्रदाय ने ब्रह्म ही को ईश्वर माना है। जीव को ब्रह्म का अंश माना है।

ब्रह्म सम्प्रदाय जिसे माध्व मत कहते हैं इसकी प्रतिष्ठा दक्षिण प्रदेश मे "उडुपी" नामक ग्राम के निकट आनन्द तीर्थ ने की थी। आचार्य आनन्द तीर्थ का जन्म उसी स्थान पर सन् ११९९ मे हुआ था और सन १३०३ ई० मे उनके निधन का उल्लेख किया गया है।

यह द्वैत सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक थे। अपने गम्भीर अध्ययन, स्वाध्याय और प्रभावशाली व्यक्तित्व से आपने भारत के समस्त तीर्थ स्थानों मे भ्रमण कर अपने सिद्धान्त का व्यापक प्रचार और प्रसार किया।

माध्वमत के उद्भट् विद्वान श्री जयतीर्थ ने अपने मत की विजय-वैजयन्ती पताका फहरा दी।

माध्व दर्शन ने दस पदार्थों को स्वीकार किया है—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, विशिष्ट, अंशी, शक्ति, सादृश्य और अभाव।

द्रव्य पदार्थ की बीस कोटियां इन्होंने की हैं—परमात्मा, लक्ष्मी, जीव, अव्याकृत, आकाश, प्रकृति, गुणत्रय, महत् तत्त्व, अहंकार तत्त्व, बुद्धि, मन, इन्द्रिय, मात्रा, भूत, ब्रह्माण्ड, अविद्या, वर्ण, अन्धकार, वासना, काल और बीसवां प्रतिबिम्ब।

गुण के यद्यपि अनेक प्रकार बतलाये हैं पर शम, दम, कृपा, तितिक्षा, सौन्दर्य आदि इसमें सन्निहित हैं। वैशेषिक गुणों को भी इन्होंने स्वीकार किया है।

कर्म इन्होंने तीन प्रकार का माना है—विहित, निषिद्ध और उदासीन। शक्तियां चार प्रकार की मानी हैं—अचिन्त्य, आधेय, सहज और पदशक्ति।

परमात्मा को साक्षात् विष्णु माना है और लक्ष्मी को उनकी शक्ति। जीव को अज्ञान, मोह, दुःख, भय आदि विकारों से युक्त बताया है।

जीव के तीन रूप बताये हैं—मुक्ति, नित्य और तम।

माध्व सिद्धान्त ने ज्ञान के पांच भेद बताये हैं—ईश्वर का जीव से भेद, ईश्वर का जड़ से भेद, जीव का जड़ से भेद, जीव का दूसरे जीव से भेद और पांचवां एक जड़ पदार्थ से दूसरे जड़ पदार्थ से भेद इसे मुक्ति-प्रदायक कहा है।

उपासना के भी दो मार्ग बताये हैं—सन्तत शास्त्राभ्यास रूपा और ध्यान रूपा।

मोक्ष प्राप्ति के चार सोपान बताये हैं—कर्मक्षय, उत्क्रान्ति, अर्चिरादि मार्ग और भोग।

भोग को चार रूपों में व्यक्त किया है—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, और सायुज्य।

इस प्रकार माध्वमत ने परमात्मा को जगत् के जन्म-मरणादि का केवल निमित्त कारण बतलाया है और प्रकृति को उपादान कारण कहा है। इसने वैष्णव मतानुसार शुद्ध सत्त्व के सत्ता की प्रतिष्ठा स्थापित की है।

उषा मधुरिमा बिखेरती हुई बोली : आज की निशा समस्त दर्शनों का पारायण करा देगी, देव।

प्रदीप : लक्ष्य की पूर्ति पारायण से ही होती है, मधुरिमे।

उषा : आप कुछ थक न गये हों इसलिये निम्बार्क-दर्शन पर मुझे ही कुछ कहने दें।

प्रदीप : आपके स्नेह का संबल पाकर भला थकान कहां। शेष सभी दर्शनों पर मुझे अपने अध्ययन की पुनरावृत्ति करने दें।

निम्बार्क मत की उत्पत्ति त्रेता युग में हुई। सनत् कुमार के प्रमुख शिष्य उच्च कोटि के प्रेम-भक्ति-रस के उपदेशक श्री नारद जी थे जिन्होंने प्रेम-भक्ति-रस के महत्त्व को निम्बार्क के अन्तर्जगत में भरा।

निम्बार्क-जाति के तैलङ्ग ब्राह्मण थे। पुराणों और इतिहासों में इनका बाल-काल का नाम नियमानन्द था। निम्ब वृक्ष पर अर्ध निशा में सूर्य का साक्षात्कार होने से इनकी ख्याति कीर्ति निम्बार्क नाम से हुई।

निम्बार्क मत ब्रह्म और जीव के भेदाभेद अर्थात् द्वैताद्वैत सिद्धान्त का प्रतिष्ठापक है। यह भी रामानुज सम्प्रदाय का प्रतिरूप है। जीव को इसने कर्त्ता माना है और ब्रह्म को सगुण रूप माना है। शेष सभी रामानुज मत के अनुरूप है।

इसके पश्चात् वल्लभ मत आया। इसने शुद्धाद्वैत पुष्टि मार्ग प्रतिष्ठापित किया। इस मत ने ब्रह्म को सर्व धर्म विशिष्ट स्वीकार किया है।

इन्होंने ब्रह्म के तीन रूप माने हैं—आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक। वल्लभ ने भक्ति रूपी पुष्टि मार्ग को अपनाया है।

वल्लभ सम्प्रदाय ने भक्ति के दो रूप बताये हैं—मर्यादा भक्ति और पुष्टि भक्ति। यद्यपि भक्ति फलाकांक्षी है पर पुष्टि भक्ति की भावना फल रहित होती है।

वैष्णव धर्म के अन्तर्गत एक चैतन्य-दर्शन का भी विकास हुआ। चैतन्य-दर्शन के प्रवर्त्तक महाप्रभु चैतन्य देव का जन्म नवद्वीप में हुआ था। कीर्तन-कला निधि की अक्षुण्ण रस धार प्रवाहित कर आपने समस्त बङ्ग प्रदेश को भक्ति रस सागर में अवगाहित कर दिया।

चैतन्य-दर्शन भगवान को अचिन्त्याकार अनन्त शक्तियों के आगर मानता है।

चैतन्य ने तीन शक्तियां मानी हैं—स्वरूप शक्ति, तटस्थ शक्ति, और माया शक्ति।

चैतन्य मत जगत को सत्य एवं [illegible] मानता है। भक्ति मार्ग से भगवान की साधना इस मत में अधिकारी है। चित्त को ज्ञान द्वारा शोधित कर भक्ति के द्वार पर पहुंचाना यह मत स्वीकार करता है।

ज्ञान को दो प्रकार का माना है— केवल ज्ञान और विज्ञान।

चैतन्य ने भक्ति के दो मार्ग बताये हैं - विधि भक्ति और रुचि भक्ति।

विधि भक्ति में शास्त्र निर्दिष्ट उपायों का अवलम्बन अपेक्षित है। रुचि भक्ति में साधक प्रेम-रस-राग पूरित तथा अनुराग रञ्जित अलौकिक आनन्द-रस का पान करता है।

वस्तुतः समस्त वैष्णव दर्शनों में मोक्ष साधना के लिये ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को अधिक महत्व दिया है।

इन सब दर्शनों के अतिरिक्त शैवमत के अन्तर्गत एक रसेश्वर-दर्शन का भी अभ्युदय हुआ। इसका उद्गम स्थान काश्मीर माना जाता है।

रसेश्वर-दर्शन का सिद्धान्त विभिन्न दिव्य पदार्थों द्वारा शरीर को स्वस्थ और निरोग रखना। यह दर्शन स्वस्थ शरीर को जीवन मुक्ति का साधन बताता है। इसका सिद्धान्त है कि बिना स्वस्थ शरीर के ब्रह्म का साक्षात्कार कोरी कल्पना है। निरोग शरीर द्वारा ध्यान-ज्ञान किस प्रकार सम्भव है। यह तो तभी सम्भव है जब कि शरीर स्वस्थ और स्थिर चित्त हो।

शरीर को स्वस्थ और पुष्ट बनाने के लिये पारद-भस्म सेवन करने की व्यवस्था दी है। पारद शक्ति की अलौकिकता का उल्लेख करते हुये कहा गया है कि—

"संसारस्य परं पारं दत्तेऽसौ पारदः स्मृतः"

इसे शंकर भगवान का वीर्य और पार्वती का रज अभ्रक माना गया है।

आयुर्वेद में पारा और अभ्रक को मिला कर रस-भस्म के गुणों की महत्वपूर्ण प्रशंसा की गई है।

पारद की अवस्थाओं का वर्णन करते हुये कहा गया है कि— मूर्छित, मृत और बद्ध इसके तीन रूप हैं—

मूर्छितो हरति व्याधीन् मृतो जीवयति स्वयम्।
बद्धः खेचरतां कुर्यात् रसो वायुश्च भैरवि॥

अर्थात् मूर्छित पारद सर्व व्याधियों का हरण करता है, मृत अर्थात्–भस्म युक्त पारद मरणासन्न प्राणी को जीवित कर देता है। बद्ध अर्थात् जो पारद रस बद्ध हो गया वह वायु और भैरव के समान मानव को आकाश की ओर उड़ा ले जाता है। मृत पारद आर्द्रता, गौरव और स्थिरता देता है।

लोह धातु पर पारद के निर्घषण करने से जैसे पारद लोह को भी स्वर्ण बना देता है उसी प्रकार मानव अपने शरीर को दिव्य कञ्चन कर देता है। इसी दृष्टि से इस दर्शन को रसेश्वर–दर्शन कहा जाता है।

रसेश्वर–दर्शन ने योग-साधना पर ही विशेष बल दिया है। उनका कथन है कि योगाभ्यास द्वारा मानव अपने शरीर को स्वस्थ और स्थिर कर आत्मा का साक्षात्कार कर सकता है।

रसेश्वर–दर्शन तान्त्रिक पूजा-उपासना स्वीकार करता है। काश्मीर मे इसीलिये तन्त्र का भण्डार मिलता है। केरल और बङ्गाल प्रान्त में भी तन्त्र की व्यापकता हुई। परन्तु केरल ने दक्षिण मार्ग को अपनाया। दक्षिण मार्ग में पञ्च-मकार-मांस, मदिरा, मीन, मुद्रा और मैथुन का उपयोग भावनाओं द्वारा कुण्डलिनी-शक्ति के आधार पर शुद्ध सात्विक आहार-विहार मे किया जाता है। काश्मीर में केवल भावनाओं से और बङ्गाल में प्रत्यक्ष प्रयोग से वाम मार्ग पद्धति द्वारा तन्त्र की साधना की जाती है।

शक्ति संगम तन्त्र के काली खण्ड मे लिखा है कि—

दुग्धेन केरले पूजा कास्मीरे भावना मता।
गौड़े प्रत्यक्ष दानं स्यात् त्रितय कीर्तितंमया ॥

इस प्रकार रसेश्वर–दर्शन-स्वस्थता के विविध साधनों द्वारा ध्यान-ज्ञान और आत्मस्वरूप परमात्मा को समझकर अपनी मुक्ति स्वीकार करता है।

व्याकरण-दर्शन भी अपना विशेष स्थान रखता है— महर्षि पतञ्जलि ने व्याकरण-दर्शन की सुन्दर झांकी दिखलायी है परन्तु भर्तृहरि ने 'वाक्य पदीय' ग्रन्थ की रचना कर इस दर्शन का सर्वोत्कृष्ट विकास किया है।

भर्तृहरि ने शब्दाद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन कर शब्द ही को मूल पदार्थ माना है। शब्द ही निखिल विश्व में व्याप्त है अर्थात शब्द ही ब्रह्म है।

शब्द रूपी वाक्य पदार्थ को 'सर्वभूत हितेरत:' कहा है।

शब्द अर्थात् वाक् के चार रूप माने हैं—परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। पश्यन्ती वाक को ही ब्रह्म स्वरूप एवं मोक्ष प्रदायनी कहा है।

पश्यन्ती वाक् मुख में [illegible] आदि को स्पर्श करता हुआ वैखरी वाक् का उदय करता है।

व्याकरण-दर्शन की पदार्थ मीमांसा में द्रव्य, गुण, कर्म आदि पदार्थों की कल्पना की गई है।

व्याकरण-दर्शन ही अक्षर-बोध कराता है अतः मानव जगत मे इसका विशिष्ट स्थान है।

उषा : प्राच्य दर्शनों के विनोद में आज की निशा जीवन के अन्तिम क्षणो तक भुलाई नहीं जा सकती।

प्रदीप : अभी पाश्चात्य दर्शन का विषय शेष रह गया।

उषा : पाश्चात्य दर्शन का मनोविनोद कल प्रदोष काल में उत्तम रहेगा।

सन्ध्या सुन्दरी अपने अम्बरान्चल को समेटती हुई पश्चिम दिशा में विलीन हो रही थी और राकेश क्षितिज के छोर से अपनी स्वर्ण रश्मियां बिखेरता हुआ वसुधा को प्रेम रस से सिंचित करने लगा था प्रकृति के ऐसे सुखद मिलन पर उषा और प्रदीप अपने भवन के मनोरम कक्ष में पड़ी हुई रत्न आसन्दियों पर बैठकर पाश्चात्य दर्शन की चर्चा करने लगे।

उषा : पाश्चात्य दर्शन जिसे अङ्ग्रेजी में फिलासफी कहा जाता है, भारतीय दर्शनों से सिद्धान्ततः भिन्नता रखता है। पाश्चात्य दर्शन बिना ज्ञान के अन्तर्निहित ज्ञान की अनुभूति को स्वीकार नहीं करता। पाश्चात्य दार्शनिक मुख्यतया मन और आत्मा के तादात्म्य को स्वीकार कर चलते हैं। आवागमन बन्धनों के सिद्धान्तो को यह मान्यता नहीं देते।

पाश्चात्य दर्शन का आदि स्रोत आयोनिया नामक स्थान यूनान है। भारतीय दर्शन के इतिहास में जिस प्रकार 'ऋत' की कल्पना वैदिक काल मे हुई है उसी प्रकार 'निमेसिस' नामक देवी की कल्पना पाश्चात्य दर्शन में की गई है। यह निमेसिस देवी पाश्चात्य जगत् की व्यवस्थापिका मानी जाती थी। इनके साथ ही 'पैन' नाम के एक शक्तिशाली देवता भी थे जिनके पैर बकरे के समान थे और बुद्धि भी बकरे कीसी थी। अर्थात् इनके कृत्य असुर के समान थे। पाश्चात्य दर्शन ने सृष्टि तत्त्व की सुन्दर मीमांसा की है जगत् को विभिन्न आकारों से युक्त माना है।

यूनान में सर्व प्रथम दार्शनिक 'थेल्स' हुये जिन्होंने तत्वों का विवेचन करते हुये कहा : इस असार संसार में सर्व प्रथम जल ही एक मात्र तत्व था। इसी तत्व से समस्त सृष्टि का सृजन हुआ।

'थेल्स' दार्शनिक के पश्चात एनैक्सिमैण्डर मतानुसार एनैक्सिमैनीज दार्शनिक ने किसी एक अपरिच्छिन्न द्रव्य पदार्थ के विद्यमान का सिद्धान्त माना। जिसके द्वारा जल, अग्नि, वायु तत्वों की उत्पत्ति हुई और इन्हीं में लीन हुई। इन्होंने जगत् की उत्पत्ति चेतन पदार्थ से मानी है, प्रकृति से नहीं।

यूनान के महान् तत्व दार्शनिक पाइथोगोरस ने सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में आकार को पदार्थ का मूल तत्व माना है।

इटली में भी दर्शन का अभ्युदय हुआ और 'एलिया' नाम का एक नगर दार्शनिकों का गढ़ बन गया। 'जिनोफेन्स' नाम के एक दार्शनिक ने अच्छी ख्याति प्राप्ति की। इनका सिद्धान्त भारतीय अद्वैतवाद का पोषक है। इस सिद्धान्त ने समस्त जगत् को एक ब्रह्म स्वरूप माना है।

एलियावासी दार्शनिक विद्वानों के सैद्धान्तिक अद्वैतवाद के विरोध में अनेकवाद की मान्यता देने वाला दूसरे सम्प्रदाय का जन्म हो गया। हिरैक्लिटस नामक दार्शनिक ने जगत् को परिवर्तनशील माना और उनमें अनेकता मानी। इन्होंने अग्नि तत्व को ही जगत् का मूल तत्व माना है।

अनेकवाद सृष्टि के उत्पादन में अग्नि वायु, जल और पृथ्वी इन चार तत्वों को स्वीकार करता है। इन तत्वों के संकर्षण विकर्षण से सृष्टि की रचना और प्रलय का होना अनेकवाद सिद्ध करता है।

अनेकवाद ने 'परमाणु' को सृष्टि का मूल हेतु बताया है। इस अनेकवाद के सिद्धान्त ने वैज्ञानिक युग का अभ्युदय किया। ज्ञान-विज्ञान के विकास एवम् उसके मूल्याङ्कन पर पाश्चात्य दार्शनिक परम्पर उलझ पड़ा। प्राचीन विश्वासों की अपेक्षा विज्ञान की ओर मानव की जिज्ञासा जागरूक हो उठी। इसमें सोफिस्ट लोगों ने जन्म लिया और धार्मिक आस्थाओं मान्य-मान्यताओं और विश्वासों पर गम्भीर मन्थन किया। प्रोटोगोरस के इस मत ने जब मानव को उनके मूल तत्वों से भटकाना आरम्भ किया तो उनके विरुद्ध विद्रोह खड़ा हो गया। कुछ समय पश्चात् सुकरात नाम के सुप्रसिद्ध दार्शनिक का जन्म हुआ।

सुकरात दार्शनिक ने धर्म क्षेत्र में ज्ञान पर अधिक बल दिया। सुकरात के प्रमुख शिष्य 'प्लेटो' ने पाश्चात्य-दर्शन मे विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त की। प्लेटो ने व्यावहारिक सत्ता और वास्तविक सत्ता इन दो सत्ताओं के आधार पर अनेक दार्शनिक ग्रन्थों का कथोपकथन शैली में प्रणयन कर पाश्चात्य जगत मे ख्याति प्राप्त की।

प्लेटो ने आत्मा को तीन रूपो मे देखा—प्रज्ञा, इच्छा और विषयवासना। ज्ञान, शौर्य, आत्म-संयम तथा न्याय परायणता इन चार को मूल तत्व गुण स्वीकार किया है। प्लेटो के परम शिष्य अरस्तू ने भी अपने गुरू के सिद्धान्तो का विकास किया। अरस्तू ने हेतु चतुष्टय की कल्पना मे चार मुख्य कारण बतलाये गये है—

उपादान, असमवायी, निमित्त और लक्ष्य।

अरस्तू ने दर्शन के साथ साथ विज्ञान का भी समान अध्ययन किया था। अतः वैज्ञानिक क्षेत्र में उतर कर उसने जो ज्ञान का प्रतिपादन किया वह स्तुत्य है।

अरस्तू के कुछ वर्षों के पश्चात् पाश्चात्य-दर्शन का वह युग ईसाई मत के अभ्युदय से धूमिल हो गया।

प्रदीप : दर्शनो का वह युग स्वप्न वत् सा गया है। पाश्चात्य जगत् में दर्शन की अपेक्षा आज विज्ञान अपने उत्कर्ष की ओर जा रहा है। जिसे हम विज्ञान-प्रधान- युग की संज्ञा दें तो अनुपयुक्त न होगा।

उषा : वैज्ञानिक वस्तुतः सत्य की खोज करता है और मानव जगत को सम्भाव्य विधि पर उतार कर चलता है। वह चिरन्तर सत्य के सिद्धान्त का पोषक नहीं।

प्रदीप : परन्तु तत्त्व-रूपी ज्ञान-विज्ञान की आधारभित्ति पर आज दिन भी मानव नित्य नये अनुसन्धान कर रहा है।

उषा : आज की बीसवीं शताब्दी का पाश्चात्य दार्शनिक बर्ट्रेन्ड रसल बुद्धिवाद का दृढ़ पोषक है। इनके अपने स्वतन्त्र विचार है और अपनी स्वतन्त्र विचारधारा है। यह अनेकान्तवाद और वस्तुवाद के कट्टर अनुयायी है। समस्त विज्ञानों की जननी गणित विज्ञान के उत्कृष्ट विद्वान है। इन्होने दर्शन और विज्ञान मे न तो परस्पर कोई विरोध माना और न कोई सामञ्जस्य।

प्रदीप : धर्म, दर्शन और विज्ञान यदि परस्पर स्नेह-सूत्र में बंध जायें तो तुम्हारे विचार से कैसा रहे।

उषा मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुंची कि दर्शन और विज्ञान का उद्गम धर्म ही है। धर्म और दर्शन का अविच्छिन्न सम्बन्ध प्रकृति-जन्य है।

प्रदीप : इतनी गहनता होते हुये फिर आज का मानव-चरित्र इतना क्यों गिरता जा रहा?

उषा : मानव-चरित्र के पतन का मूल कारण धर्म का बाह्य आडम्बर है। यदि धर्म के दस लक्षणों को मानव-जगत अपने मे उतार ले तो उसका चरित्र स्वत निर्मल हो जाय।

प्रदीप : तो क्या मानव-जाति अपने धर्म के बाह्य आडम्बरों से धर्म को धोखा देकर धर्म का अन्त करने में स्वयं लगी है?

उषा . धर्म रूपी बाह्य आडम्बरों से मानव धर्म को धोखा नहीं देता अपितु अपने को धोखा देकर अपना ही अन्त करता है।

प्रदीप : मेरी दृष्टि में इसका बहुत कुछ उत्तरदायित्व इस युग के धर्म गुरू, धर्माचार्यो एवं धर्म सम्प्रदायो पर है।

प्रदीप : युग धर्म ने काल की गतिविधि के अनुसार भारतीय धर्म-दर्शनों से प्रश्रवित सुधा-रस मे अब कुछ विष की मिलावट कर दी है।

उषा : युग परिवर्त्तनशील है। उसी क्रम से मानव की विचारधारायें भी परिवर्तनशील हैं। काल से नियन्त्रित त्रैलोक्य की सत्ता है। इसीलिये हमें धैर्य को धारण कर काल का स्वागत करना है।

एकादश पराग

अपरान्ह काल था, तारक मण्डल प्रभा हीन हो रहे थे, पूर्ण चन्द्र पश्चिम की ओर क्षितिज मे विलीन हो रहा था, कलिकायें प्रस्फुटित हो रही थी, हरीतिमा पर ओस बिन्दु चमक रहे थे, उपवन के किसी वृक्ष पर बैठी कोकिला अपने मधुर कण्ठ से कुहकी और कुलदीप सिंह जी ने अपने शयन-कक्ष का पूर्वीय वातायन खोला तथा अपनी पत्नी सूर्य भानु कुंवरि की ओर सम्बोन्धित करते हुये बोले। आगामी माघ मास का दिन अधिक दूर नहीं। प्रदीप के विवाह का प्रबन्ध अभी से आरम्भ करना उचित होगा।

हमें अभी से क्या चिन्ता, हाँ। कन्या पक्ष वालों को अवश्य दुनिया भर का सामान जुटाना पड़ता है। श्रृंगार के लिये वस्त्राभूषण मन पसन्द बाजार मे मिल ही जाते हैं।

उषा की ओर से भी सारा प्रबन्ध हमें ही तो करना होगा, देवि।

जब हमें दोनों ओर का विवाह करना है फिर उषा के परिवार से क्या। नवरात्रों में उसकी गात्र शुद्धि करा दी जायगी।

हमारी धर्म पत्नी बड़ी सूझ बूझ की है। नारी के बुद्धि की कुशाग्रता का अनुभव मुझे इस क्षण हुआ। विशेष कर ऐसे ग्रामीण की जहाँ केवल गृहस्थ और धार्मिक शिक्षा दीक्षा के अतिरिक्त और कुछ अधिक ज्ञान उपलब्ध न हो सका। इससे यह सिद्ध होता है कि बुद्धि की कुशाग्रता एक ईश्वर प्रदत्त है जो कभी सर्वोत्कृष्ट शिक्षा प्राप्त किये प्राणियो मे भी नही मिलती और कदाचित् एक अशिक्षित प्राणी के मस्तिष्क से भी झलकती है।

चार उच्च कोटि के वैदिको को बुलाकर नवरात्रो की पुण्यमयी तिथियो मे अन्त्यज जाति की भावनाओं का शोधन करवाना है।

कुलदीप सिंह ने नगर के वयोवृद्ध वैदिक श्री मंगलेश्वर पद्मनाभम् को दूसरे दिन प्रातःकाल बुलवाया। वैदिक जी के आते ही कुलदीप सिंह ने प्रणाम कर कहा। प्रदीप का विवाह निकट भविष्य मे सम्भावित है।

वैदिक जी ने आशीर्वाद देते हुये पूछा ! कहां निश्चित हुआ है, श्रीमान जी।

संयोग वश "उषा" नाम की एक कन्या से, जिसकी जाति का कुछ पता नहीं।

वैदिक जी चकित होकर बोले : आप तो ऐसे कुलीन क्षत्री।

परिस्थिति सब कुछ कराती है। बड़े २ ऋषि मुनियों ने परिस्थितिवश सब कुछ किया। वशिष्ठ मुनि ऐसे ब्रह्मर्षि का अन्त्यज की कन्या अरुन्धती से पाणिग्रहण संस्कार हुआ। विधि के विधान को कौन मेट सका।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा है कि 'समरथ को नहिं दोष गुसाईं'। मेरे लिये जो आज्ञा ?

कुलदीप प्रायश्चित विधान के अनुसार सुयोग्य वैदिकों द्वारा "उषा की गात्र शुद्धि और आत्म शुद्धि दोनों अपेक्षित है।

वैदिक जी : सर्वांग शुद्धि करने में नौ दिवस लगेंगे। अत: शिवरात्रि के पूर्व ही समस्त पूजन सामग्री संग्रहीत करना होगा। नवरात्र प्रारम्भ होते ही शुद्धि कर्म का समारम्भ हो जायगा।

कुलदीप सिंह ने शीघ्र ही अपने दीवान भानु प्रताप को बुलाकर वैदिक जी से समस्त पूजन सामग्री की सूची बनवाकर यथा शीघ्र लाने का आदेश दिया। इस प्रकार चार ही दिन में समस्त पूजन सामग्री एकत्र हो गई।

प्रदीप और उषा अपने प्रचार क्षेत्र में गये थे। कुलदीप सिंह का पत्र पाते ही दोनो यथा समय आ पहुंचे।

नवरात्र आरम्भ होते ही पांच सुयोग्य वैदिको ने प्रात:काल से वेदियों की रचना आरम्भ कर दी। रजत की पाँच चौकियों पर सुन्दर रंग बिरंगी वेदियो की रचना एवं उनके ऊपर स्थापित दीपक युक्त रजत कलश आकर्षण का केन्द्र बन गये। वेदियो की रचना के पश्चात निर्णीत मुहूर्त पर मन्त्रों द्वारा वेदियों की प्रतिष्ठा हुई। देव पुत्री उषा पीताम्बर धारण कर ज्यों ही वेदी पर पहुंची गगनभेदी वेद मन्त्रों से आकाश मण्डल गूंज उठा। उषा के सस्वर वेद पाठ से समस्त उपस्थित वैदिक चकित एवं मन्त्र मुग्ध हो गये।

प्रधान वैदिक ऋत्वक ने उषा से पूछा : आपका अध्ययन काल कहाँ बीता, विदुषी ?

उषा : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में दर्शन शास्त्र में एम० ए० किया तत्पश्चात वेद वेदांगों तथा उपनिषदों का सांगोपांग अध्ययन उत्तराञ्चल के एक प्रसिद्ध महात्मा योगिराज श्री प्रभुआनन्द महाराज के श्री चरणों में बैठ कर किया।

उत्तराञ्चल में वेद का ऐसे सस्वर पाठ करने वाले विद्वान महात्मा आज दिन भी दर्शनीय हैं। काशी में ऐसे वैदिकों का दिन २ ह्रास होता जा रहा है। जबकि काशी विद्या-भूमि सदा से रही।

आज की काशी धर्म के नाम से पुजती है। कलियुग में नाम की ही महिमा है।

वैदिकाचार्य ने कुलदीप सिंह की ओर संबोधित करते हुए कहा : उषा का ऐसे अल्पवयस्क में इतना ऊंचा ज्ञान और अध्ययन अवश्य कोई दैवी शक्ति का द्योतक है।

भारत में बड़े २ अनमोल रत्न-मणि निकलते हैं। अपवित्र स्थान में पड़ा कञ्चन कौन नहीं उठाता।

उषा की तुलना किसी रत्न-मणि से नहीं आंकी जा सकती। इस मणि का मूल्यांकन करना हमारी बुद्धि से परे है।

उषा : वैदकाचार्य जी की यह महत्ता है जो मुझ ऐसी अधमा को इतना महत्व दे रहे हैं जिसे दक्षिण भारत में वेदाध्ययन की अपेक्षा वेद श्रवण करने का अधिकार आज दिन भी नहीं है।

वैदिकाचार्य : हिन्दू धर्म शास्त्र ने नारी जाति को वेद के पठन पाठन का अधिकार नहीं दिया।

उषा : वैदिक धर्म में शास्त्रकारों ने स्वार्थ भाव से स्वेच्छानुसार नारी जाति को गृहस्थ धर्म के बन्धनों में जकड़ कर सीमित अधिकार दिये थे। पर आज के युग में जबकि विश्व की परिस्थिति और उसका स्वरूप ही तीव्र गति से परिवर्तित होता जा रहा है ऐसी स्थिति में काल की गति मानव विचारों को स्वरूपानुसार ढालती जाती है।

उषा का कथन सत्य है। काल की गति के अनुसार यदि हम अपने को नहीं ले चलते तो यह काल हमारी सारी संस्कृति को खा जायेगा।

प्रायश्चित और शुद्धि कर्म के अन्तिम दिन उषा की मुख-कान्ति-रमणीयता तेजोमय हो गई। वेदी से उठकर गम्भीर मुद्रा में उषा प्रथम प्रधानाचार्य के चरण

स्पर्श करती, पश्चात् मण्डपान्तर्गत उपस्थित सभी वैदिकों के चरण स्पर्श करती हुई यज्ञ मण्डप का परिभ्रमण एवं प्रदक्षिणा समाप्त कर कुलदीप सिंह एवं उनकी धर्म पत्नी तथा नके समस्त परिवार का चरण स्पर्श करती। उषा ज्यों ही प्रदीप के चरणों पर पूर्वानुराग रस से पूरित अपने शीश को नवाती, आकाश से पुष्पों की वर्षा हुई और अप्सरायें मंगलगान करती हुई अवतरित होती।

इस अलौकिक दृश्य को देखकर कुलदीप सिंह तथा उसका परिवार हर्ष से प्रफुल्लित हो उठा।

जिस प्रकार प्रकृति की अरुण शिखा प्रभात का, चकोरी चन्द्रमा का और पपीहा नील मेघ का स्वागताभिनन्दन करते हैं उसी भाव से कुलदीप सिंह के परिवार मे उषा का हृदयाभिनन्दन आन्दोलित होने लगा।

प्रधानाचार्य : यह तो देव-कन्या प्रतीत होती है।

कुलदीप सिंह चकित होकर बोले। मुझे भी ऐसा आभासित होता है।

इतने में मञ्जुला ज्यों ही उषा के निकट गई और सस्नेह उसका आलिङ्गन किया तो उसे उषा के शरीर से भीनी-भीनी कमल-सुगन्ध का आभास हुआ।

उषा बोली : मञ्जुला की भावना मेरे मन मे समा गई।

हमारी भावी आशाओं में 'ममता' ने जन्म लिया।

उषा क्या, मानो गृह लक्ष्मी आ गई, बेटी।

सूर्य भानु कुंवरि : केवल गृह लक्ष्मी ही नहीं धर्म-पुत्री भी है, पतिदेव। इसी के द्वारा धर्म की ज्योति पुनः जगेगी।

हमारी धर्म पत्नी ने कितनी गूढ़ बात कही। इस लोक में हमारी उषा साक्षात देवी के रूप मे अवतरित हुई। ससार की सारी विषमतायें, जातीय एवम् साम्प्रदायिक सघर्ष, साम्यवाद और पूंजीवाद के बीच की खाई आदि सभी को यह पाटकर मानवता में चेतना लायेगी।

सूर्यभानु कुंवरि : विवाह के अब कुछ ही दिन शेष हैं। दोनों ओर का प्रबन्ध करना साधारण बात नही। समय जाते देर नहीं लगती।

विवाह सम्बन्धी एक सूची बैठकर बना लेने से सब कार्य सुगम हो जायगा।

प्रथम तो हमे यह विचार करना है कि उषा की ओर से कन्या-दान, बारात का स्वागत, देवी देवताओं की मान्य मान्यतायें आदि का सारा कार्य व्यवहार कौन करेगा?

ऐसी परिस्थिति में प्राचीन परम्परा की लीक पीटना व्यर्थ है। विशेष जब कि उषा साक्षात् देवी तुल्य है।

लोकाचार और शास्त्र दोनों मर्यादाओं का पालन करने से समाज में अगुल्या-निर्देशन नहीं होता।

कुलदीप : हमारे एक पुराने स्नेही ठाकुर जयन्तीबख्श सिंह संतान विहीन हैं। उनकी धर्मपत्नी हंसकुंवरि एक राज घराने की पुत्री है। स्वभाव की बडी सुशीला और मधुर भाषिणी है। सन्तानाभाव में कभी २ उनका मन समाज से खिन्न हो जाता है। सम्भव है वह कन्या दान देने के लिये उत्सुक हो जाये।

यदि वह स्वीकार कर लें तो इससे उत्तम और क्या।

आज ही सायंकाल उसका निर्णय हो जायगा।

इतना कहकर भोजन कक्ष में गये। कुछ विश्राम कर मध्याह्नोत्तर कुलदीप सिंह अपने परम मित्र ठाकुर जयन्ती बख्श सिंह के यहां जाने के लिये तैयार हुये।

सूर्य भानु कुंवरि : मुंह मीठा करके जाना शुभ सूचक है।

कुलदीप : बस यही दही बताशा या बर्फी।

इतना सुनते ही सूर्य भानु कुंवरि झट अन्दर गई और रजत पात्रों में घर का ताजा दही और ताजी बनी बर्फी लाकर कुलदीप सिंह को अपने हाथों खिलाती। कुलदीप सिंह ने दही बर्फी खाकर सउत्साह अपनी कार द्वारा प्रस्थान किया। ठाकुर जयन्ती बख्श सिंह की कोठी पर पहुंचकर द्वार का कालबेल ज्यों ही बजाया, ठाकुर साहब अपनी धर्म पत्नी श्रीमती हंस कुंवरि सहित बाहर आये और कुलदीप सिंह को पाकर हर्षोत्फुल्ल होकर बोले इतने दिन कहां रहे, मित्र।

कुछ ऐसे ही विशेष उलझनों में रहा।

हंस कुंवरि ने कहा : दीर्घ जीवी हो। हम दोनों अभी आपका स्मरण कर रहे थे। इधर कई दिनों से आपका कोई समाचार तक न मिला था।

सबसे बड़ी समस्या प्रदीप के विवाह की उलझा रही है, मित्र।

जयन्ती बख्श : विवाह की और समस्या, ऐसी क्या बात, हमारे योग्य सेवा।

उषा नाम की परम सुन्दरी से प्रदीप का प्रेम हो गया है। पर उसके परिवार में कोई नहीं है। उद्धार करने की भावना से तथा लोकाचार और शास्त्रीय विवाह सम्बन्धी रीतियों एवं कृत्यों की पूर्ति के लिये किसी कन्या पक्ष का सारा कृत्य करना

आवश्यक है। इसलिये आप दोनों यदि कन्या दान लेकर पुण्य के भागी बनना चाहें तो सर्वोत्तम है।

हंसकुंवरि नेत्र में अश्रु बिन्दु छलकाती हुई भाव भरे शब्दों में बोली। क्या पता, इसी बहाने हमको सन्तान का मुंह देखने को मिले।

जयन्ती बख्श सिंह : उषा कहां मिलेगी ?

कुलदीप : मेरे आवास पर, सुहृद !

हंस कुंवरि ने कुलदीप सिंह से कहा : जलपान कर लीजिये। हम दोनों अभी आपके निवास पर चलेंगे वहीं सब निर्णय कर लिया जायगा।

इतने में सब लोग एक साथ जलपान कर गाड़ी में बैठ कुलदीप सिंह के द्वार पर पहुंचे। कार का हार्न सुनते ही उषा और प्रदीप पोर्टिको पर आ गये। कार से उतरते ही दोनों ने सबके चरण स्पर्श किये। उषा की मुख कान्ति, छवि और शील-सौजन्य ने रानी हंस कुंवरि के मन को हर लिया। उषा को स्नेह से आलिङ्गन करती हुई बोली : बेटी ! क्या तेरा ही नाम उषा है ? इतने दिन कहां खोई रही। इधर जयन्ती बख्श सिंह का हृदय भी उषा के सौन्दर्य से आल्हादित हो गया।

जयन्ती बख्श सिंह ने गद्‌गद् कण्ठ से कहा : सौजन्य की मूर्ति उषा को पाकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूं।

रानी हंस कुंवरि भाव विभोर हो बोली : मुझे तो मानो अपने कोख की ही जन्मी मिल गई।

दोनों के हृदय में अगाध ममता उमड़ पड़ी जो उषा को क्षण भर के लिये भी पलक से ओझल नहीं होने देती। इसी बीच बादल ऐसे गड़गड़ाये कि मानो कोई हर्षनाद के डमरू निनादित कर रहा हो।

कुलदीप सिंह ने कहा : आज से उषा आपकी धर्म-पुत्री हो गई।

यह कल्पना हमारे मन में पहले ही घर कर चुकी है। अब अपनी उषा को शीघ्र घर ले जाकर धूमधाम से विवाह करेंगे। प्रदीप तो मेरा पुत्रवत् पहले से ही है। जब आता है अपनी चाची से चीजों के लिये झगड़ता है।

सूर्यभानु कुंवरि बोली : मैंने मंजुला का कन्यादान ले ही लिया। अब आप उषा का कन्यादान लेकर पुण्य के भागी बनें। सम्भवतः यही आपके लिये फलीभूत हो।

आप तो हमारी बड़ी बहिन के समान हैं। यह आप ही की कृपा से हुआ।

अभी आपकी आयु चालीस की भी पूरी नहीं है। ठाकुर साहब भी इसी तरपटक में हैं। पता नहीं भगवान ने क्या रहस्य रचा है।

सब उसी एक महाप्रभु की लीला है। नहीं तो 'उषा' कैसे मिलती।

इतना कहकर हंस कुंवरि ने चलने के लिये आज्ञा मांगी।

कुलदीप सिंह ने कहा : भोजन करके जाइये।

अभी तक हम दोनों सदा आपके यहां जब कभी आये बिना भोजन किये नहीं गये। पर अब हम कन्या पक्ष के हो गये। धर्मानुशासन आदेश नहीं देता।

न हो उसका मूल्य चुका दीजियेगा।

जलपान तो करके ही चले थे।

क्या ठाकुर साहब को भी कुछ संकोच है।

जयन्ती बख्श सिंह : जब उषा हमारी धर्म पुत्री हो गई तब कैसे सम्भव है।

सूर्यभानु कुंवरि : पर यह सब विवाह के बाद ही शोभा देता है।

हंस कुंवरि : जिस भाव में जिस क्षण जिनको अपनाया उसी भाव से वह हृदय में समा गया। केवल लोकाचार की आन अब शेष रह गई है।

जयन्ती बख्श सिंह : आपके आग्रह से भावनाओं में ठेस पहुंचती है।

कुलदीप : उषा और प्रदीप की कुण्डली के आधार पर विवाह की तिथि माघ शुक्ल पंचमी निश्चित हुई।

हंस कुंवरि : बसन्त पंचमी तिथि सर्वोत्तम है। आदेशानुसार सारा प्रबन्ध कर दिया जायगा।

सन्ध्या सुन्दरी के अवगुण्ठन में दिनमणि छिप रहा था, तारे टिमटिमाते जा रहे थे और पक्षीगण रैन बसेरों के लिये उत्सुक थे। हंसकुंवरि और जयन्तीबख्शसिंह ने अपने आवास की ओर जाने के लिए कुलदीप सिंह से आग्रह किया।

भारतीय संस्कृति की प्रतीक उषा ने सबके चरण स्पर्श किये। इस प्रकार सबने एक दूसरे का अभिवादन किया।

उषा को हृदय से लगाये हंसकुंवरि बाहर आई, द्वार पर खड़ी कार में उसे बैठाला और सीधे अपने भवन की ओर चली।

रात्रि के समय कुलदीप सपरिवार जब भोजन पर बैठे तो परस्पर विचार विमर्श करने लगे।

कुलदीप जिसकी कल्पना भी न थी वह हो गया, प्रिये।

सूर्यभानु कुंवरि उषा का भाग्य, कहां से कहां ले गया।

इसीलिये कहावत है कि शुभ घड़ी की लड़की भली और अशुभ घड़ी का लड़का नहीं।

भार से कुछ हलके भी हो जायेंगे।

ठाकुर जयन्तीबख्शसिंह गाँठ के पोढे हैं। ससुराल भी ऊंचे राज घराने की है। हंस कुंवरि अपने माता पिता की एक मात्र पुत्री है। इसलिये उषा का विवाह विशेष उत्साह के साथ होगा।

चढ़ावे के लिये सौ तोले सोना, नव रत्न के आभूषण किसी स्वर्णकार को घर मे बैठाकर इच्छानुसार बनवा लिये जायेंगे। लहगा दुपट्टा और साड़ियां बनारस और बम्बई से कारचोबी की मंगवा ली जायेंगी। शेष सम्बन्धियों के लिये बाजार खुला है। बस एक मञ्जुला और उसके बच्चो की मांगें पूरी करनी पड़ेगी।

कल ही एक कुशल स्वर्णकार को बुलवा दूंगा। बनारस बम्बई के लिये आदमी भेज दूंगा। पचास साड़िया उषा के लिये और शेष सौ साड़ियां मेली जोली एव सम्बन्धियो के लिये साधारण मेल की आजायेंगी। विवाह के पश्चात् इष्ट मित्रो सहित प्रीतिभोज और कुछ सगीत, बस यही मुख्य २ आयोजन है।

इधर यह सब प्रसंग था उधर उषा जैसे ही ठाकुर जयन्ती बख्श सिंह के द्वार पर पहुंची समस्त दास दासियां स्वागत करती। कोठी के भव्य कक्ष मे हंस कुंवरि उषा को ले गई और परस्पर वार्तालाप हुआ।

हंस कुंवरि ने पूछा पुत्री! भोजन के व्यजनो मे तुम्हारी कैसी रुचि है।

उषा : वही सात्विक आहार जो माता पिता को प्रिय हो।

ठाकुर जयन्ती बख्श सिंह ने कहा : हमारी उषा को सात्विक आहार के अतिरिक्त और क्या भाये।

हंस कुंवरि ने भोजन परिचालिका को बुलाकर कहा : जैसा पुत्री आदेश दे वैसा भोजन बनेगा।

गाय भैंस का मिलाकर बीस सेर दूध प्रतिदिन घर में हो ही जाता है अपनी उषा को घी दूध से परितुष्ट कर देंगे ।

इतना कहकर जयन्ती बख्श सिंह कुछ देर लिखने पढने में लग गये और हंस कुंवरि उषा के लिये उसकी रुचि के अनुसार सात्विक वातावरण के एक मनोरम कक्ष मे शयन के लिये ले गई ।

उषा प्रातः उठकर नैमित्तिक कर्मों से निवृत्त होकर वेद मन्त्रो एवं स्तुतियो से भवन को पवित्र करने लगी । ठाकुर जयन्ती बख्श सिंह और हंस कुंवरि का संसार ही बदल गया । उषा, माता पिता को प्रात उठकर प्रणाम करने के पश्चात् गृहस्थ से सम्बन्धित सभी कार्यों का संचालन करती हुई अपनी सेवाओ से दोनो को परितुष्ट करती ।

हंस कुंवरि : आज हमारे जीवन की कैसी सुखद वेला है इतना कहकर उषा को प्यार से अपने अंक मे भर लेती ।

जयन्ती बख्श सिंह : न होगा प्रदीप को भी पास रख लेंगे । कुलदीप सिंह के एक और छोटा पुत्र प्राप्त है ही ।

हंस कुंवरि : अभी दत्तक-पुत्री का विशिष्ट संस्कार शेष है जिसके लिये शीघ्र ही नगर के प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य से मुहूर्त निकलवाना है ।

जयन्ती बख्श सिंह ने शीघ्र ही दीवान भानु प्रताप को बुलाकर कहा : ज्योतिषाचार्य श्री पद्म-भूषण-मणि को शीघ्र ही आने के लिये निवेदन कर दें ।

आचार्य जी के आते ही दोनो ने अभिवादन कर आसन दिया और कहा ।

कुमारी उषा को 'दत्तक-पुत्री' संस्कार का कोई शुभ मुहूर्त निकालने की कृपा करें, आचार्य जी ।

श्रीमान जी के प्रश्न लग्न पर विचार करने से ग्रहो के योगायोग, सम्बन्ध, होरा, नवांश, द्रेष्काण आदि से 'उषा' नाम की कन्या को धर्म पुत्री के रूप मे मान्यता देकर समस्त कृत्य किये जायें तो उचित होगा जिसके द्वारा जन्म-जन्मान्तर का सारा संचित पाप धुल जायगा । इस प्रकार सारा प्रायश्चित विधान भी हो जायगा । इसे दत्तक पुत्री के भाव से अंगीकार करना शुभ नही ।

हंस कुंवरि विस्मित हो बोली : इसमें क्या अपराध ।

आचार्य : यह देव-कन्या है इसलिये शास्त्र सम्मति नहीं देता ।

जयन्ती बख्श सिंह आश्चर्य चकित हो बोले : देव कन्या और मेरे घर ।

देवज्ञ पुण्य क्षीण हो जाने से इस लोक में अवतरित हुई है ।

जयन्ती बख्श सिंह : जो आज्ञा, आचार्यवर्य ।

त्रिकालज्ञ ने परम विदुषी कुमारी उषा का संस्कार 'धर्म-पुत्री' का रूप देकर शास्त्रीय विधि से कार्य सम्पादन का मुहूर्त ज्योतिष की गणनानुसार कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा बताया ।

जयन्ती बख्श सिंह ने उक्त संस्कार से सम्बन्धित कार्य की विस्तृत सूची के लिये आग्रह किया ।

उक्त विद्वान ने निमन्त्रण पत्र का प्रकाशन वितरण आदि से लेकर अन्त तक सभी कृत्यों का लेखा-जोखा तथा उनके मूल्य बताये ।

ज्योतिषाचार्य जी को यथेष्ट सम्मानित कर विदा किया गया ।

जयन्ती बख्श सिंह ने अपनी धर्म पत्नी से कहा : आज हम दोनों सभी इष्ट मित्रों एवं सम्बन्धियों की सूची तैय्यार कर लें । उषा सबके नाम लिखती जायगी ।

हंस कुंवरि उषा भी अपनी सहेलियों को आमन्त्रित कर दे ।

जो उसके मन को भाये ।

उषा : मुख्य दस निमन्त्रण भेज दूंगी, शेष बचने पर ।

कुल संख्या दो सहस्त्र हैं । पचास शेष बचने पर उषा को दे दिये जायेंगे ।

इस प्रकार शुभ मुहूर्त पर सारे निमन्त्रण पत्र वितरित हो गये ।

कई दिन बीत गये प्रदीप अत्यधिक व्यस्त रहे इस कारण उषा से उधर मिलन न हो सका । उषा भी वैसी व्यस्त रही ।

कार्तिक का महीना था, निर्मल शरद् की चन्द्रिका से धरा स्नान हो चुकी थी शुक्ल पक्ष की पञ्चमी तिथि थी, वायु में शीतलता व्याप्त हो चुकी थी और सन्ध्या की बेला थी । प्रदीप सनबीम कार का हार्न दूर से बजाते हुये ज्यों ही उषा के बगले में प्रवेश करते कि उषा धवल परिधान युक्त मरालिनी की भांति बाहर निकल कर अपने मानस मराल को निहारने लगी । कार का द्वार खोल कर प्रदीप के चरण स्पर्श करती हुई बोली : इतने दिन कहां लगा दिये, प्रियवर ?

तुम्हारी प्रेम-परीक्षा में स्नेहमयी ।

उषा : प्रेम परीक्षा या प्रेम दीक्षा में, मेरे हृदयेश ।

प्रदीप ने मन्द मुस्कान से उषा के करों को दबाते हुये कहा : क्या विरह के एक ही निश्वास ने प्रणय-निकुंज में दावानल दहका दिया ।

उषा ने प्रदीप के मुख चन्द्र की ओर प्रेम पूरित नयनों से निहारा और अपने दोनों करों को उनके स्कन्धों पर रखती हुई बोली : एक अर्ध निशा में जब सुधांशु अपनी स्निग्ध ज्योत्स्ना से भूमण्डल को पुलकित कर रहा था, चपल पवन जब लताओं की अर्ध विकसित कलियों को छेड़ रहा था, और मेरे भवन पर बैठा हुआ कपोत, कपोती से प्रेमालाप कर रहा था उसी समय तुम मेरे स्वप्नों से नजाने किधर से आये और अपने बाहुओं से मुझे गाढ़ में भर तब मेरे कपोलों ने तुम्हारे सरस अधरों का स्पर्श अनुभव किया और फिर यह नयन जो खुले तो अंशमाली के उदय होने तक बन्द न हुये ।

प्रदीप : तुम तो सिद्धियों की स्वामिनी हो । मानव को धरातल के किसी छोर में उतार कर उसमें आशा कुछ भरती हो और उसे अपनी भावनाओं की सीढियों पर चढ़ाकर अपने अन्तस्तल में उतारने के लिये सक्षम हो, देवि !

यह सब तुम्हारे ही आकर्षण-विकर्षण से है, देव । मधुमास के मधुमय भरे अङ्क में प्रकृति सुन्दरी अपना सौन्दर्य बिखेर कर जिस प्रकार शान्ति पाती है उसी प्रकार मैं तुम्हारे अङ्क में हिलोरें मार कर आत्मिक शान्ति पाती हू ।

इतने में हंस कुंवरि और जयन्ती बक्श सिंह को बाहर आते देखकर प्रदीप कार से उतरे और दोनों के चरण स्पर्श करने ।

हंस कुंवरि प्रदीप को गले लगाकर बोली : क्या, कुछ रुष्ट हो गये जो इतने दिन नहीं आये ?

कार्य में अधिक व्यस्त था ।

जयन्ती बक्श सिंह : कुलदीप सिंह के ज्येष्ठ पुत्र होने से काम काज का सारा भार इन्हीं पर होना स्वाभाविक है ।

पिता जी ने मेरे नाम से एक नया लघु उद्योग प्रतिष्ठान खोला है । सम्भवतः मशीनें लाने शीघ्र ही विदेश जाना पड़े ।

बड़ी प्रसन्नता की बात है बेटा । उषा के "धर्म-पुत्री" सस्कार का मूहूर्त कार्तिक शुक्ल की पूर्णिमा तिथि निश्चित हुई है । इसलिये तुमको अभी से यहीं रहकर काम काज मे हाथ बटाना होगा ।

प्रदीप आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।

दूसरे दिन हंस कुंवरि ने अपने पति से कहा धर्म-पुत्री संस्कार महोत्सव के निमित्त कुलदीप सिंह जी को भी आमन्त्रित कर दिया जाय। इतना कहकर दोनो मिष्ठान्न और फल लिये उनके द्वार पर पहुंचे।

कुलदीप सिंह ने स्वागत करते हुये पूंछा, सब कुशल तो है।

आपकी सब कृपा है।

हंस कुंवरि आपको आमन्त्रित करने और कुछ आवश्यक परामर्श करने आये हैं।

जो सेवा कार्य हो बतायें।

उषा के धर्म-पुत्री संस्कार का उत्तम मुहूर्त कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा निश्चित हुआ है। समय कम है इसलिये आपको सपरिवार अभी से कहता हूं।

कुछ आवश्यक कार्य से निवृत्त होकर उक्त मुहूर्त के चार दिन पूर्व सपरिवार उपस्थित हो जाऊंगा।

हंस कुंवरि बोली: बहिन जी को तो साथ में अभी भेज ही दें। देवी-देवता का पूजन करना कराना उनके बिना सम्भव नहीं।

सूर्य भानु कुंवरि अपने द्वितीय पुत्र प्रताप को लेकर चलने के लिये तैयार हुई और कुछ ही देर में कार द्वारा हंस कुंवरि के निवास स्थान पर पहुंच गई। उषा ने सूर्यभानु कुंवरि को साष्टांग प्रणाम किया तत्पश्चात सभी को अभिवादन कर प्रताप को प्यार से गले लगाया। इस प्रकार ममता का संसार बनाती हुई उषा ने सबके मन को जीत लिया।

इधर कुलदीप सिंह मंजुला को लेकर चौथे दिन पहुंच गये।

ठाकुर जयन्ती बख्श के जीवन में यह प्रथम महत्व पूर्ण कार्य था। उनके सभी इष्ट मित्र, सम्बन्धी लोगों का आना आरम्भ हो गया। लगभग दो सौ पारिवारिक वितान गृह निर्मित किये गये। उषा और प्रदीप के मुख्य अनुयायी देश-विदेश से आये। जिनकी संख्या पचास थी। उनके लिये विशेष प्रबन्ध आवास आदि का था। सारा समारोह एक विशाल मण्डप मे आयोजित किया गया था। मण्डप की भूमि पर सुन्दर विशाल दरियां, चाँदनी, और मखमली कालीन बिछे थे। मण्डप के मध्य वेदियां रचीं थीं। वेदियों के चारों ओर बन्दनवार एवं सुगन्धित फूलों की झालरें

लटक रही थीं । अपूर्व श्री आनन्द था । धान खेतों में कनक पीत बालियां पक रही थीं । [illegible] लटक रहे थे । प्रशान्त सरिता सरोवर लबालब भरे थे, देव मन्दिर में आरती होने जा रही थी, डमरू डिंडिमनाद करने के लिये आतुर थे और नीरव समीर कुञ्ज में सामवेद का गान करने बैठे थे, सारा पिण्डाल नर नारियों से भर चुका था। बीच में छः फुट की चौड़ी लाल रंग की एक पट्टी बिछी थी जिस पर ठाकुर जगपति बख्श सिंह सपत्नीक मुख्य वेदी के निकट बैठे थे । उषा मानवी सहेलियों के साथ इन्द्र धनुषी साड़ी पहिने आई । मुख्य वेदी पर उषा के बैठते ही वेद पाठी सस्वर वेद मन्त्रों का उच्चारण करने लगे । प्रदीप भी उषा के समीप थे । इसलिये उषा और प्रदीप भी साथ २ वेद मन्त्रोच्चारण करने लगे । उषा की मधुर सस्वर वेद ध्वनि श्रोताओं के मन को मुग्ध कर देती और सब उसके कमनीय शान्त कलेवर तथा कोमल कण्ठ की प्रशंसा करने लगे । उपस्थित नर नारियों में एक विचित्र उल्लास का वातावरण पैदा हुआ । ठाकुर जगपति सिंह और उनकी पत्नी उषा के सौन्दर्य सौरभ, शील-सौजन्य एवं [illegible] अत्यन्त प्रभावित हुये । सतत एक घंटे तक वेद मन्त्रों द्वारा पूर्णाहुति [illegible] की गई । दो घंटे निरन्तर कर्म काण्ड का सारा क्रम चलता रहा । [illegible] एवं शिष्टाचार हुआ । समस्त कृत्य समाप्त होने के पश्चात् नर नारी विशाल भोज में सम्मिलित हुये । सायंकाल पांच बजे पुनः जलपान का आयोजन हुआ और स्थानीय देश के प्रमुख कलाकारों द्वारा नृत्य संगीत समारोह आयोजित किया गया । अन्त में लगभग दस बजे पुन सब रात्रि भोजन पर आमन्त्रित हुये । इस प्रकार उत्सव का क्रम तीन दिन तक चलता रहा ।

समारोह में आमन्त्रित कई रईस और रानियां भी थीं । हंस कुंवरि के निकट सम्बन्धी राजस्थान के राज कुमार श्री विभूति नारायण सिंह भी थे । जिनकी आयु बाईस वर्ष की थी । देखने में गौर वर्ण, रूपवान, कमल के सदृश नेत्र और व्यक्तित्व प्रभावशाली था । कई भाषाओं का ज्ञान था और संस्कृति के साहित्य में विशेष अभिरुचि थी । पाश्चात्य और प्राच्य दर्शन का गंभीर अध्ययन था, पाश्चात्य वेष-भूषा, संस्कृति एवं व्यवहार के उपासक थे । उषा के शील सौजन्य, तेजोमय स्वरूप, एवं ज्ञान गरिमा से वह विशेष प्रभावित हुये । समारोह समाप्त होने के पश्चात सभी अतिथि गण अपने २ आवास स्थानों पर श्री विभूति नारायण सिंह का मन उषा की ओर केन्द्रित हो गया । उनके स्वप्नों में प्रवाल अधरों के बीच उषा के श्वेत दशनों की हीरक रश्मियां, नवल नेत्रों के बीच घूमती हुई श्याम पुतलियां मानो श्वेत कमल

दल पर कोई भ्रमरी थिरक रही हो, खराद पर चढ़ा हुआ सुडौल शरीर, श्रोणी-विचुम्बित श्यामल वेणि तथा वक्ष पर अँगिका में कसे हुये दो कनक कन्दुक जिन्हें हीरे का हार थिरक थिरक कर सहलाया करता, ऐसे चित्र आने और मन में किसी आकांक्षा को जन्म देते। प्रदीप और उषा नित्य उनकी सुविधाओं का ध्यान रखते तथा जलपान और भोजन के समय देश-विदेश की प्रमुख घटनाओं धर्म, राजनीति, साहित्य एवं कला आदि विषयों पर वार्तालाप भी होता। सभी के विचार तथा आहार और विहार की साम्यता होने से प्रेम में प्रगाढ़ता होती गई। इस प्रकार इतना समय बीत गया कि पूर्णिमा का चन्द्र नवयौवन ग्रहण कर द्वितीया में पुनः उदय हुआ। अचानक एक टेलीग्राम आ जाने से राजकुमार का जाना आवश्यक हो गया चलते समय राजकुमार ने जयन्ती बख्श सिंह जी से सपरिवार बम्बई आकर कुछ दिन वास करने के लिये वचन बद्ध कर दिया। उषा और प्रदीप को विशेष रूप से आमन्त्रित किया।

द्वादश पराग

मार्गशीर्ष [illegible] की [illegible] तिथि थी। शीत की लहरियों ने प्राणियों को प्रकम्पित [illegible] किया था। रूप कुँवरि और उषा ने बम्बई के लिये प्रस्थान किया। [illegible] कार्यों में अत्यधिक व्यस्त होने से और प्रदीप के [illegible] न जा सके। चलने के पूर्व राजकुमार को पहुँचने की सूचना [illegible] थी। नियत समय पर प्रातः ब्लू [illegible] प्लेटफार्म नं० १ पर पहुँची। राजकुमार अपने इष्ट मित्रों सहित [illegible] उपस्थित थे। ट्रेन के रुकते ही वाता-नुकूलित [illegible] पलकों पर माधुर्य की मदिरा छिड़कते [illegible] हाथों को जोड़ कर राजकुमार का अभिवादन किया। [illegible] राजकुमार ने [illegible] प्रवेश कर उषा के हाथों में सुगन्धित पुष्पों का [illegible] समर्पित किया और रूप कुँवरि को पुष्पों के गुच्छे अर्पित कर [illegible] किया। रूप कुँवरि ने आशीष देकर राजकुमार को अपने हृदय से लगा लिया। राजकुमार के सभी इष्ट मित्रों ने दोनों का अभिवादन किया। प्लेट फार्म के निकट [illegible] पर राजकुमार ने दोनों को ले जाकर बैठाया और [illegible] रोजविला राज-भवन पहुँचे।

रोजविला के पश्चिम दिशा की ओर नील [illegible] अरब महासागर अपनी उत्ताल तरङ्गों [illegible]। कभी आवेश में आकर उदधि अपने घन गंभीर [illegible] दिग् दिगन्त को कम्पित करता, कभी पूर्ण शान्ति [illegible] अपनी तरङ्ग [illegible] भवन को इस प्रकार आलिङ्गित करता मानो कोई [illegible] प्रिया के [illegible] को अपनी बाहुओं में भरना चाहता हो, कभी [illegible] की लहरों पर [illegible] हुई समीर की चपल हिलोरें राज-भवन की वाटिका के [illegible] कुसुमों का [illegible] करती हुई वातायन और गवाक्ष मार्ग से समस्त भवन में अपनी शीतलता [illegible] देती। सागर की तरङ्गों पर जलयान में बैठे हुये प्राणी निशा में विद्युत आलोक से मण्डित रोजविला को इस रूप में देखते कि

मानो रत्नाकर के किनारे सजी धजी कोई नायिका झुक झुक उसकी लहरों का पूजन कर रही हो। इसी भवन के पोर्टिको के नीचे पैकार्ड कार जाकर रुकी। सशस्त्र सैनिक प्रहरी ने अभिवादन किया तथा श्वेत परिधान में इन्द्र की अप्सरा सी आगे बढ़ती हुई एक गौर वर्ण महिला ने कार का द्वार खोलते हुए विनम्र भाव से कहा शुभे, आपका स्वागत है।

राजकुमार ने परिचय देते हुए कहा, यह कुमारी सौदामिनी राज हंस हमारी वैयक्तिक सचिव और भवन की प्रधान स्वागतकर्त्री हैं।

हंस कुंवरि को इसके पूर्व कभी बम्बई जाने का अवसर नहीं मिला था। बम्बई नगर की रमणीयता और राज महल के वैभव मंडित कोमल स्वरूप को देखकर बड़ी प्रभावित हुई। महल के अन्दर बाहर की सज धज अत्यन्त सादगी और सुरम्य थी। कुछ देर राजमहल में बैठ कर राजकुमार से महल की शोभा वर्णन करने लगी। नित्य कर्म से निवृत्त होकर मध्यान्ह में आहार दीर्घा में अनेक प्रकार के व्यञ्जन रजत पात्रों में सजोकर सेविकाओं ने उपस्थित किया। सब एक साथ भोजन करते हुये परस्पर बातें करने लगे।

राजकुमार : मार्ग में कोई कष्ट तो नहीं हुआ।

उषा : पूरी बोगी सुरक्षित करा ली गई थी।

हंस कुंवरि : स्टेशन पर प्रतीक्षा में आपको अवश्य कष्ट हुआ होगा।

राजकुमार : प्रतीक्षा में मुझे विशेष आनन्द आता है। यदि वह काल नियन्त्रित हो।

उषा : काल ही क्षण २ का निर्णायक है, राजकुमार।

हंसकुंवरि : हमारी उषा अनेक विषयों की विदुषी है।

राजकुमार : उषा की मधुर वाणी मन को हर लेती है। विधाता ने न जाने कौन सा अमृत उसके नयनों में भर दिया है जो उसे देखता उसी का वह हो जाता है।

इतने में उषा ने राजकुमार की ओर प्रेम पूरित नयन कोरों से एक झलक देखा। वह क्षण राजकुमार के जीवन को एक नवीन सन्देश वाहक हुआ।

राजकुमार : भोजन कर कुछ देर विश्राम कर लें। मध्यान्होत्तर जलपान के पश्चात् समुद्र के किनारे चौपाटी चलेंगे। इतना कह कर सभी अपने २ विश्राम कक्ष में गये।

बिलम्बित [illegible] पश्चिम समुद्र में विलीन हो रहा था। निशा अपना आँचल पसार रही थी। [illegible] मौन हो [illegible] आराधना कर रहे थे। देव मन्दिरों में [illegible] गम्भीर सा आकाश की ओर देख रहा था जिस पर [illegible] एक ओर [illegible] और दूसरी ओर रजत वर्णीय अपनी तूलिकायें फेर रही थीं। [illegible] शुभ्र मयङ्क वसुधा पर नव रस सिंचन की भावना से आतुर हो आकाश में जितना ऊपर उठ रहा था उतना ही रत्नेश की तरङ्गों पर [illegible] का भी स्पर्श कर रहा था, मधु मालती [illegible] स्नात हो [illegible] रही थी और कलिकायें नव पल्लवों को ठेलते हुये ऐसी [illegible] रही थीं मानो किसी मुग्धा नायिका का उरोज मण्डल कंचुकी की पाशबद्धता से मुक्त [illegible] अपूर्व [illegible] नयन भर कर अपने रूप लावण्य को [illegible] रही थी, ऐसी मधुमय बेला पर राजकुमार अपने स्वप्निल कल्पनाओं का [illegible] लिये राजविला से निकले और समुद्र के किनारे [illegible] की सुन्दर शिला पर बैठ गये। थोड़ी देर [illegible] सौरभमयी प्रकृति बेला विषयक वार्तालाप करते हुये उषा ने राजकुमार से कहा [illegible] बड़े भाग्यशाली हैं। श्री एवं सरस्वती आपकी [illegible] हैं। [illegible] वैभव के हिंडोले पर झूलने एवं रमणीय प्रकृति के [illegible] दर्शनों का सुअवसर मिला।

राजकुमार ने [illegible] भरे स्वर में उषा के निकट कुछ खिसकते हुये कहा।

मैं आकांक्षा सागर की उत्ताल लहरों, अभिलाषा के ज्वार-भाटों, आशा सरिता के [illegible] भवरों और जीवन-नद के विषम चढ़ते-उतरते ज्वारों का एकाकी सा अभी तक सामना करता रहा पर आशा है कोई [illegible] हो मेरे इस एकाकीपन को अपने मे आत्मसात कर लेगा।

उषा के [illegible] कपोलों पर [illegible] की रेखायें उभर आईं और वह कुछ उत्तर देती कि [illegible] पर बैठी पुष्प बेचने वाली गोआनिन [illegible] बोली [illegible] मन के भावों को परख लेती है। इतना कह कर हाथ में लिये हुये सुन्दर पुष्पों को उसे देती हुई बोली लो बेटी, इन्हें ही तुम चाहती हो न।

उषा ने [illegible] के गुच्छों को लिया और राजकुमार की ओर घूम कर कहा : श्रीमान्, हमारी [illegible] के प्रतीक, कृतज्ञता एवं आदर के संबोधक, इन

प्रसूनों को आप ग्रहण करने की कृपा करें। अपनी पुष्पाञ्जलि में कुसुमों को भर कर जब राजकुमार को भेंट करने लगी तो झलझलाने सी लगी। कोमल अंगुलियां राजकुमार की अंगुलियों का स्पर्श कर उठीं। उसका सारा शरीर न जाने कौन सी मदिरा के झोंके से अनुरंजित और रोमांचित हो उठा।

राजकुमार ने कहा : स्नेह देवि, धन्यवाद ! मैं इस अभ्यर्थना के योग्य तो नहीं हूं फिर भी आज मैं भाग्यशाली हूं। पुष्प स्वयं सौरभमय तो हैं ही परन्तु तुम्हारे करों के स्पर्श से उनकी सौरभता में आज और अधिक मादकता उत्पन्न हो गई है। इन्हें मैं अपनी पिटारी में सञ्चित कर लूंगा, देवि।

राजकुमार, जिनके वस्त्रों में गुलाब की भीनी सुगन्ध निकल रही थी, दाहिनी अनामिका में अंगूठी पर जड़ा हुआ हीरा प्रकाश के किरणों से जगमगा उठता था और बाईं कलाई पर नव रत्न जटित बाजूबन्ध सी सुशोभित थी, ने बड़े ही भाव भरे मृदु मुस्कान के साथ प्रथम बार अपने नयनों को उषा के नयनों से मिलाकर कहा—रसिक जन लहरों और सामने क्षितिज पर सुधाकर को चुम्बन करने वाली, उठती हुई तरल तरंगों में अपने यौवन मद का आनन्द लेते हैं।

उषा ने नेह भरे नयन कोरों से राजकुमार को निरख करते हुये कहा : सागर के वक्ष पर खेलती हुई इन तरङ्गों से रसिक जनों का संसार हिलोरें लेता होगा।

राजकुमार : भावुक के हृदय में ही भावना उदय होती है।

हंस कुंवरि : हमारी उषा के पास भावना परिमल है।

राजकुमार : भावना परिमल की परिभाषा बताने की कृपा करेंगी ?

हंस कुंवरि : वह भावना जिसमें सुगन्ध हो अर्थात जो दैवी शक्तियों से ओत-प्रोत सात्विक तत्वों का विकास करती हो, तरुण।

उषा के नेह ने मेरे मन मुकुर पर प्रकाश की ऐसी किरणें डाली जिनकी प्रखरता से मैं आलोकित हो गया। मानो वह कुम-कुमा-परिमल सी सर्वत्र अपने सुधारस बिन्दु बिखेर रही हो।

आप से उषा बहुत प्रभावित है। पता नहीं आपने क्या मन्त्र फेर दिया, राजकुमार !

उषा के [illegible] में [illegible] अंकुर सिहर उठा और वह धीरे २ पल्लवित हो रहा है।

तुम्हारी स्नेहमयी [illegible] और हृदय की सरलता से भला कौन प्रभावित न होगा, वत्स !

राजकुमार ने मन्द मुस्कान में पूछा : हमारे अग्रज नवलगढ़ नरेश का आप से क्या संबन्ध है ?

हमारी ममेरी बहिन के वह जामाता है उस नाते तुम भी मेरे पुत्र सदृश हो।

फिर तो उषा देवि [illegible] से भारी होती है। हास और व्यङ्ग का अधिकार भी सुरक्षित हो जाता है। इसी सम्बन्ध ने प्रेम को जन्म दिया।

परन्तु सीमा [illegible]।

अधिकार [illegible] की सीमित है। भावना एक मन की कल्पना है जो इधर उधर पड़ी फिरती है।

उषा ने [illegible] कहा : हमारे राजकुमार की बातें कितनी मर्म स्पर्शी है।

राजकुमार : पूर्व [illegible] के मर्मज्ञ, गम्भीर विचारक और दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान, भला मुझ [illegible]।

उषा : अभी तो [illegible] प्रेम [illegible] जा रहा है।

राजकुमार ने विनम्र भाव से कहा : मेरी यह इच्छा है कि देश सेवा के लिये आध्यात्मिक क्षेत्र में तुम्हारे साथ २ रहूं, उषा।

यहाँ मैं भी कल्पना करती थी कि कितना सुन्दर होता यदि आप आध्यात्मिक जागृति कर भगवान तथागत की भांति संसार को नया संदेश देते।

राजकुमार ने मुस्कराते हुये कहा : देवि ! लो फिर एक कशाय चीवर और भिक्षा पात्र का प्रबन्ध कर दो। मैं आज ही रात्रि की अर्ध वेला में महा अभिनिष्क्रमण कर दूं।

उषा : इसकी [illegible] की आवश्यकता नहीं, सौम्य पहले किसी यशोधरा की कोमल [illegible] इस राज प्रासाद में गूंजने दो और किसी राहुल के रुदन से इसे पवित्र होने दो।

तुम्हारी [illegible] मुख पर गम्भीर [illegible] भला किसके मन को आकर्षित नहीं करती, [illegible]।

उषा : हमारे प्रदीप जी ने लोकोपकारार्थ धर्म की भावना जगाने के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय धर्म संसद और दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय धर्म विश्व विद्यालय स्थापित किये है। जिनकी समस्त विश्व में शाखायें और केन्द्र स्थापित किये जा रहे है। मुझे भी ऐसे कार्यों में अनुराग है आप भी यदि काम मे सहयोग देते तो कितना सुन्दर होता।

यह भावना मेरे मन मे आरम्भ ही से अंकुरित हुई थी, उषे।

आप की प्रतिभा सूर्य के सदृश आलोकित है। मै तो उस तेज की सदेश वाहिनी हूं, भद्र।

हंस कुंवरि ने मन्द मुस्कान से कहा : उषा शीतल और शान्त सतोगुणी और सूर्य रजोगुणी। इसलिये सत और रज का विमिश्रण संसार को एक नई देन दे सकता है।

राजकुमार ने विहंस कर कहा : सतोगुण अपनी दैवी शक्ति से रज को वशीभूत कर सकता है।

रज कभी सत और कभी तम में मिश्रित हो जाता है और कभी इसकी कि-कर्तव्य विमूढ़ सी गति हो जाती है।

तुम्हारे सामने मेरा ज्ञान, ध्यान नहीं के समान है, विदुषी।

हंस कुंवरि के अधर पर हंसी खिलती और मधुर व्यङ्ग से बोली : उषा में तेज कैसे विलीन हो गया।

उषा ने ही संसार को सदा अपने अंचल में लेकर कर्त्तव्य और ज्ञान का मार्ग इङ्गित किया।

हंस कुंवरि : राजकमार को साहित्यिक चर्चा अधिक प्रिय है।

उषा : नीरस जीवन ही किस काम का। आज के युग मे ऐसे विचारको की आवश्यकता है।

राजकुमार ने कहा। आज आप को यात्रा की थकान होगी; न हो चलकर विश्राम करें और कल पर्यटन का कार्य क्रम बनाया जाय।

सब रोज विला मे आये और भोजन के पश्चात् अपने २ शयन कक्ष में गये।

हंस कुंवरि पूजनादि से निवृत हो उसे जो कक्ष मिला था उसमें शयन करने लगी। उसी कक्ष से मिला दूसरा कक्ष उषा के लिये था। सौदामिनी राजहंस को स्वागत सुप्रबन्ध के लिये धन्यवाद देती हुई उषा जब अपने कक्ष में पहुंची तो दीवार पर लगी घड़ी ने साढे नौ का घंटा बजाया। कक्ष के पश्चिम की ओर उषा ने जैसे

ही मालायन [illegible] नक्षत्रों को साथ मे लिये शीतल समीर के [illegible] सेमार्ष्ति होने लगा। अपने वस्त्रों को बदलकर [illegible] पर लेट गई। कक्ष बड़े कलात्मक ढङ्ग से सजा था। [illegible] सामने की दीवार पर दो बड़े २ तैलचित्र लगे थे जो किसी प्रसिद्ध [illegible] थे। [illegible] मे सहकार वृक्ष पर फैली हुई माधवी लता [illegible] याचना कर रहा था तथा दूसरे चित्र में [illegible] मन-मादन वन का दृश्य अंकित था। [illegible] उर्वशी [illegible] पकड़ने के लिये हाथ पसारे विक्षिप्त सा [illegible] और भावों की अभिव्यक्ति को [illegible] पर उसकी दृष्टि पड़ी।

[illegible] उषा के मन मे भी किसी प्रकार [illegible] कभी नेत्रों को बन्द करती और कभी [illegible] लगी।

इधर राजकुमार [illegible] में कुछ विक्षिप्त से टहल रहे थे। कभी [illegible] मण्डल की ओर, कभी नीचे [illegible] की ओर, कभी सागर की [illegible] की ओर देखते। जब [illegible] पर पड़ गये।

राजकुमार को कभी [illegible] और कभी प्रमीला। उसीमें बार बार इधर उधर [illegible] ऐसा आयोजन बनाते–जिससे किसी तरह उषा उसे ही [illegible]।

दूसरे दिन [illegible] और हंस कुंवरि उठी और शीघ्र ही नित्य कर्म से निवृत्त हो गईं। राजकुमार स्वभाव से ही सात बजे प्रात. उठने के अभ्यस्थ थे। [illegible] बनाते रहे और अपने कल्पना की कूची से हृदय-[illegible] चित्रित करते गये। अनायास बादलों की गड़गड़ाहट ने उनकी आँखें खोल दीं। [illegible] और निहारा तो आठ बजकर तीस मिनट थे। शीघ्र [illegible] हंस कुंवरि और उषा को अभिवादन किया।

उषा [illegible] : आपकी आकृति पर कुछ चिन्ता की रेखाये झलकती हैं।

हंस कुंवरि . मन ही तो है। अनेक स्थानों में भटकाता फिरता है।

राजकुमार क्षणिक चौंककर बोले : रात्रि में निद्रा माता के अंक से रहित रहा।

हंस कुंवरि ने उपहास भरे शब्दों में कहा : असुरों ने घेर लिया होगा।

जी हां। कुछ ऐसा ही देवासुर संग्राम बुद्धि में प्रवेश कर गया था।

तदनन्तर परिचारिका विविध व्यञ्जनों को एक रजत थाल में सजोके आ पहुंची। सबने एक साथ जलपान किया और भावी कार्यक्रम पर विचार हुआ।

राजकुमार : आज का कार्यक्रम एलिफेन्टा केव देखने का है। वहीं पर पिकनिक करेंगे।

हंस कुंवरि : यहां से कितनी दूर है?

कुछ ही घड़ियों में पहुंच जायेंगे।

एलिफेन्टा केव की रमणीयता विश्व ख्यात सुनी जाती है राजकुमार।

हंस कुंवरि ने भाव भरे शब्दों में कहा। यह सब मुझे केवल राजकुमार के और कौन दिखाता। इतनी आयु बीत गई पर देखने का अवसर न मिला था।

इतने में उषा का दक्षिण नेत्र स्फुरित होने लगा और हृदय धड़कने लगा। वह घबड़ा कर बोली 'यह क्या हो रहा है। इसी बीच पोस्टमैन ने ज्यों ही द्वार की घंटी बजाई, राजकुमार बाहर आये और तार खोल कर पढ़ा। लिखा था "गम्भीर रुग्णावस्था" तुम्हारा प्रदीप। राजकुमार ने तार को छिपा लिया और मन ही मन सोचते हुये राज महल के नीचे भाग में उतर गये। राजकुमार को यह पता न था कि प्रदीप उषा का भावी पति है। इस विचार से कि तार को पढ़कर उषा तत्क्षण चलने के लिये उतारु न हो जाये उसने तार के टुकड़े कर दिये और आकर देखा तो उषा के मुख की कान्ति कुछ मलीन थी। चिन्ता और व्यग्रता की रेखायें ललाट पर उभर रहीं थीं।

राजकुमार ने उषा को सान्त्वना देते हुये कहा बम्बई की जलवायु कभी किसी को वायु विकार पैदा कर देती है। सम्भवत हृदय की धड़कन कुछ ही क्षण में स्वत शान्त हो जायगी।

इतना कहना था कि हृदय की धड़कन और उषा का मन स्वत. शान्त हो गया।

राजकुमार ने विनम्र भाव से कहा. थोड़ी ही देर में एलिफेन्टा केव देखने चलना है। वहां पहुंचकर भोजन करेंगे।

हंस कुंवरि : मार्ग में कुछ फल, मिष्ठान लेना उचित होगा।

गगन चुम्बित विशाल भवनों के तट पर लहराता हुआ अगाध जल से पुष्पित

सागर [illegible] । इण्डिया गेट पर देश-विदेश के [illegible] थे । विविध रङ्गो से अलकृत [illegible] गेट के किनारे २ उदधि पर तैर रही थी । [illegible] उनके साथ एक सुन्दर बोट में बैठाया [illegible] पहुंच गये ।

[illegible] उद्यान मे पडी आसन्दियों पर बैठ गये और [illegible] ।

राजकुमार [illegible] ?

उषा [illegible] किनने दिन अपने कोमल [illegible] का जीवित रूप प्रदान किया है । [illegible] भ्रम होता है कि मानो एक घटी [illegible] ध्यानमें रमी रहूं ।

[illegible] होने पर ही संयोग बनता है, राजकुमार ।

[illegible] सम्बन्धो द्वारा होता है । [illegible] संस्कार-वश ही तो है ।

[illegible] आप में स्वभाव की सरलता और आत्मीयता है ।

[illegible] ने उषा की ओर [illegible] हुये कहा , बेटी बात तो यथार्थ है । पर [illegible] है ।

राजकुमार [illegible] राजकुमार हूं पर मन एक सेवक के समान है । उतना [illegible] राजकुमार का हृदय [illegible] धड़कने लगा और बात करते वह मूर्छित हो गये । [illegible] और वह अचेत मे भूमि पर पड गये । उषा [illegible] देखकर विह्वल हो उठी । उषा ने ध्यान लगाकर [illegible] अपना हाथ उसके हृदय पर ज्यों ही रखा, राजकुमार की हृदय [illegible] शान्त हो गई । हृदय पर धरे हुये उषा के हाथ को [illegible] राजकुमार ने कहा : मेरे जीवन की किरण !

उषा ने [illegible] शब्दो मे कहा मैं सदा आपके पास ही रहने वाली हू, कुमार ।

इन शब्दों से राजकुमार के हृदय में कुछ गुद गुदी भी हुई। उनकी आकृति में सुखद मिलन की आभा झलकी और प्रसन्न होकर बोले . मेरी कामना पूरी हुई।

कुछ देर विश्राम के पश्चात पुन गुफा की ओर चले। गुफाओं का मनोरम दृश्य देखने के पश्चात मध्याह्नोत्तर बम्बई नगर की ओर प्रस्थान किया। घूमते फिरते सन्ध्याकाल राजविला पहुंचे और स्वच्छ होकर वस्त्र बदले। तदनन्तर भोजन के समय गुफाओं के दृश्य का वर्णन करके अपने शयन कक्ष मे चले गये।

प्रात नित्य कर्म से निवृत्त होकर घूमने चले। निरन्तर चार घंटे भ्रमण कर बम्बई नगरी का बहुत कुछ रम्य दृश्य उषा को दिखाया। मध्याह्न कुछ विश्राम कर फलों का रसपान किया, तत्पश्चात हाट की ओर चढ़े। बम्बई के एक सुप्रसिद्ध जौहरी की दुकान पर राजकुमार ज्यों ही पहुंचे, जौहरी ने उनका स्वागत किया और अन्दर के एक भव्य कक्ष में ले जाकर बैठाया।

राजकुमार ने उषा की ओर संकेत करते हुये कहा : आप मन पसन्द की वस्तुयें ले लें।

हंस कुंवरि—क्या प्रेम के उपहार मे दे रहे हैं ?

राजकुमार—आप जो भी समझें।

उषा ने स्मित मुख हो कहा . इन अलङ्कारों से विशेषता क्या होगी, राजन् ?

आप को रत्नाभूषणों से अलंकृत कर मुझे परम सुख मिलेगा, उषे।

हंस कुंवरि बोली। जिस भावना मे यूं ही प्राकृतिक सुगन्ध हो उसे कृत्रिम सुगन्ध की क्या आवश्यकता है, राजकुमार। हमारी उषा इन आभूषणों का क्या करेगी। उसका जीवन तो धार्मिक धरातल पर ढला है। शील और मर्यादा ही उसके भूषण हैं। आचरण की कान्ति से ही उसका शरीर कान्तिमान है। धातु और पाषाणों से निर्मित इन आभूषणों का बोझ ढोकर वह क्या करेगी। इतना कहकर कुछ रुकी और बोली · अपनी उषा को देखकर कालिदास का यह श्लोक स्मृति-पटल पर उतर आया।

"सरसिज मनुविद्धं शैवलेनापिरम्यम्,
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मी तनोति।
इयमधिक मनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी,
किमविहि मधुराणां मंडनां नाकृतीनाम्॥"

अर्थात् तुम्हारी उषा [illegible] के समान है सुन्दर जिसका सौन्दर्य कमल से लिपटे हुये [illegible] के मलिन प्रकाश को फीका करके अपनी शोभा [illegible] है और [illegible] स्निग्ध सौन्दर्य को बिखेरने वाला है।

राजकुमार: संसार में [illegible] और आध्यात्मिक दोनो सुखों का उपभोग गृहस्थ के लिये [illegible] माने गये है। अब मुझे अपने कर्तव्य का पालन करने दे। इतना कहकर हीरे, मोती [illegible], [illegible] की जड़ित एक कटिबन्ध आदि विविध [illegible] के आभूषण लिये। इसके पश्चात एक प्रसिद्ध वस्त्र इम्पोरियम मे जाकर सुन्दर [illegible] साड़ियाँ लीं और राजमहल आकर सब लोग भोजन पर बैठ गये

उषा ने भाव भीने शब्दों में कहा। आप के इस उपहार का मैं क्या मूल्य चुकाऊं, राजन्?

राजकुमार: इन [illegible] का मूल्य ही क्या, उषे।

हंस कुंवरि: [illegible] में विचार कर ऐसे कार्य पर पग धरना चाहिए, राजन्।

उषा ने अपने [illegible] की ओर सलज्ज निहारते हुये कहा: सौन्दर्य [illegible] है, राजन्।

राजकुमार: प्रत्येक मानव अपनी [illegible] की कसौटी पर कस कर कर्म करता है उषे।

हंस कुंवरि ने [illegible] भाव से कहा: चूनरी तो होगी ही, राजन्।

राजकुमार ने इम्पोरियम को टेलीफून कर सभी प्रकार की चुनरियाँ लाने का आदेश दिया। भोजन समाप्त होते ही, इम्पोरियम का एक कर्मचारी विविध रंगों की चुनरियाँ लेकर राजमहल आ पहुँचा। राजकुमार ने सभी चुनरियां रख ली और गद् गद् कण्ठ से बोले। [illegible] उपहार है।

उषा प्रसन्न मुद्रा में बोली: आपका मन रखना ही है।

राजकुमार: आप मन की बात कैसे पहचान गईं।

हंस कुंवरि: सभी रत्नाभूषण बेटी को पहनाकर मन्दिर मे प्रथम लक्ष्मी नारायण के दर्शन करायेंगे।

राजकुमार हां। प्रेरणा का तो यही द्वार है।

इतने में सब अपने २ शयन कक्ष में सो गये।

प्रातःकाल हंसकुमारि ने उषा को समस्त रत्नाभूषण पहनाकर तथा एक हल्की गुलाबी साड़ी पर झीनी मलयवासिनी चुनरी उढ़ाई और देव मन्दिर के लिये तैयार हुई। उषा के प्राकृतिक सौन्दर्य पर रत्नाभूषणों का चमत्कार देखकर राजकुमार मुग्ध हो बोले, संसार में मैंने न जाने कितनी रानियां महारानियां एवं रूपवती युवतियां देखी, पर उषा के सौन्दर्य की सहज छटा किसी में भी न पाई।

इतना कहकर साथ २ सीढ़ी उतरे और सीधे देव मन्दिर की ओर चले। मार्ग में राजकुमार ने सवा मन मिष्टान्न, एक स्वर्ण माला, एक हीरक स्वर्ण हार तथा एक अशर्फी और एक सौ एक चांदी के सिक्के चढ़ाने के लिये लिये। देव मन्दिर में यद्यपि प्रातःकाल अपार भीड़ थी पर ज्यों ही वे द्वार पर पहुंचे कि भारी भीड़ स्वतः एक ओर हो गई और दोनों प्राणी मूर्ति के सन्निकट पहुंच गये। राजकुमार ने समस्त सामग्री देव मन्दिर के पुजारी को चढ़ाने के लिये दी। पुजारी ने देवी देवताओं को वस्त्राभूषणों से अलंकृत किया, तदनन्तर तिलक लगाया। वेद मन्त्रोच्चारण के साथ नगाड़े बजने लगे। राजकुमार, उषा और हंसकुमारि अवनत ध्यान मुद्रा में खड़े रहे। उषा के मुख पर साक्षात लक्ष्मी का तेज झलकने लगा। मूर्ति में मन्द मुस्कान की मधुरिमा आभासित हुई। राजकुमार उस अलौकिक दृश्य को देखकर चकित हो उठे। उपस्थित नर नारी इस विलक्षण चमत्कार से प्रभावित हुये। कुछ ही क्षण में उषा जब अपने स्वाभाविक रूप में आई हंस कुमारि ने उसे हृदय लगाकर कहा, मेरी उषा साक्षात् देवी स्वरूपा है।

राजकुमार ने विस्मित होकर कहा—क्या देवशक्ति को आज भी प्राणी अपने में उतार कर साक्षात्कार कर सकता है!

उषा ने भावाभिव्यञ्जना करते हुये कहा, जैसी रही भावना जाकी प्रभु मूरति देखी तिन ताकी। इस सिद्धान्त से सब कुछ भावना पर आधारित है। ज्योतिष में भी शुभाशुभ फलादेश का वर्णन करते हुये लिखा है कि—

यद्यत् भाव गतौ वापि यद्यत् भावेश संयुतौ
तत्तत् फलानि प्रबलौ प्रदिशेतां तमो ग्रहौ।

अर्थात जिस भाव की गति से जिस भाव का स्वामी जिस भाव को देखता हो उसी के अनुसार उस भाव की ग्रह द्वारा फल वृद्धि होती है। इस प्रकार योग और

दृष्टि सम्बन्ध के आधार पर अनुमान है। ऐसे शास्त्र ने शुभाशुभ फल का निर्देशन किया है।

राजकुमार : आज मैं पुनः [illegible] को समस्त [illegible] नमस्कार करता है।

इस प्रकार [illegible] में चारों ओर से "महारानी की जय" के नारों से वातावरण गूंज उठा। [illegible] कामना भाव से हाथ पसारे दौड़ पड़े। राजकुमार [illegible] विचरण करते हुये राज महल पहुंचे और प्रधान [illegible] आसन कुर्सियों पर सब बैठ गये।

राजकुमार ने उषा से पूछा : आपको इतना ध्यान ज्ञान कहाँ से कैसे मिला है, देवि।

दोनों का [illegible] ज्ञान है राजन्।

राजकुमार : [illegible] कहाँ से मिला ज्ञान?

उषा : धर्म की [illegible] से ध्यान और धर्म गुरु से ज्ञान।

राजकुमार ने [illegible] कहा : आपसे मुझे शक्ति और ज्ञान मिलेगा ही।

आपके पास भी दोनों ही हैं। केवल उसकी ज्योति को प्रज्वलित करना है, राजन्।

इतने में सामने दीवाल पर [illegible] एक घंटा बजाया। उपचारिका ने भोजन कक्ष में चलने की प्रार्थना की। भोजन तथा कुछ विश्राम के पश्चात सन्ध्योपरान्त उषा ने [illegible] शृंगार कर राजकुमार के कक्ष में प्रथम बार एकान्त में ज्यों ही प्रवेश किया राजकुमार स्वागत करते हुये बोले 'कैसी तेजोमय हो' कल्याणि। मानो भगवान ने तुम्हें अपने हाथों से [illegible] बनाया हो।

उषा : तेज से [illegible] हो जाती है राजन्। आप तेज स्वरूप है अतः उषा आप ही से तेजोमय हुई।

देवि ! तुम कवियों की [illegible] हो। मेरे नव [illegible] में प्राणों को प्रणय-वारिधि में डूबो [illegible] मानो [illegible] उठी हो। राजकुमार ने करो को आगे पसार कर कहा : तुम्हारे बिना विश्व का अनूठा सौन्दर्य मेरे लिये अलोना है, प्रिये! आज जी चाहता है कि केवल हम दोनों घूमने के लिये चलें।

उषा : माता जी का स्वास्थ्य भी कुछ ठीक नहीं है।

राजकुमार ! उनसे पूछना तो धर्म है । राजकुमार ने हंस कुंवरि के पास जाकर पूछा चलें, घूम आइये ।

हंस कुंवरि इस समय कुछ अस्वस्थ सी हूं । उषा को ही घुमा लाइये ।

राजकुमार और उषा गोशनिवास से बाहर आये । पोर्टिको से कार निकाली और उषा को कार में अपने साथ बैठाया तथा स्वयं कार को ड्राइव करते कुछ दूर बम्बई के एक भव्य होटल में गये । जहां फलों के रस में घुला उच्च कोटि की गन्ध रहित मदिरा पान किया और होटल के एक सजे सजाये कक्ष को सुरक्षित कराकर उसमें प्रवेश किया जिसमें रखे हुये रेडियो पर प्रेम गीतों का आलाप हो रहा था । राजकुमार मदिरापान के अभ्यस्त थे पर उषा का जीवन इससे नितान्त रहित था । मदिरा का मद धीरे से उषा पर चढ़ा ।

उषा बोली तुम्हारे इस अन्तर में तो रति-रङ्ग के राग छिपे हैं, कुमार । मेरा जीवन तो इससे परे है ।

राजकुमार ने प्रेम पूरित नयनों से देखते हुए कहा । तुम मेरे हृदय तन्त्री को झंकृत करने वाली रागिनियों की वीणा हो, तुम्हारे यौवन में चैतन्य, सौन्दर्य में आकर्षण, नेत्रों में विमोहन, अधरों में मदिरा, आलिंगन में रस कलश, आत्मा में महामिलन के स्वप्न और तुम्हारे प्रेम में पारिजातों का परिमल है । यह सब तुम्हारी ही तो लीला है ।

आप तो इस नश्वर देह तक ही प्रेम को सीमित समझते हैं पर मैं तो शाश्वत प्रेम की पुजारिन हूं, रसिक ।

हृदय सुन्दरी ! कुमार सम्भव के पांचवें सर्ग का एक श्लोक मेरे मानस पटल में उतर आया—

मनीषिता सन्ति गृहे स्वदेवता स्तपः क्व वत्से क्वचलावकं वपुः ।
पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीष पुष्पं न पुनः पतत्रिणः ।।

अर्थात तुम्हारा तो हृदय उस शिरीष पुष्प के समान सुकोमल है जो भ्रमर के पद-चाप को भी सहन नहीं कर सकता । इसलिये तुम्हारा यह प्रथम वयस तप और ध्यान ज्ञान का नहीं । तुम्हारे यौवन की प्रभात किरण मानस में प्राण डाल रही है और तुम्हारे प्रवाल अधरों से प्रेम का स्रोत बह रहा है । शाश्वत प्रेम की डोर अभी से क्यों ।

कुहक ! [illegible] क्षितिज में उतरो तो तुम्हें वास्तविक आनन्द [illegible] कुसुमों को नाहक रौंद रहे हो।

मक्षी ! [illegible] सृष्टि की रचना की। तुम किस कल्पना के [illegible] सुहागी [illegible] सोया है। ऋषि मुनि [illegible]।

कलियों ! [illegible] और रंगीली सुहाग-रात की उत्कण्ठा [illegible] अनधिकार चेष्टा अच्छी नहीं। चंचल चित्त [illegible] की दृढ़ता से नियन्त्रित करो। कहीं [illegible] पर प्रहार कर दे।

रश्मि ! [illegible] प्रेम-कमल की जिस नइया पर [illegible] तुम क्यों धूमिल कर रही हो ! [illegible] का पर्दा [illegible] और आओ हम दोनों अपना संसार बसायें !

भावना [illegible] ऊषा को आलिङ्गन करना चाहा [illegible] दुर्गा उस पर अवतरित हुई। [illegible] हुई और आकाश रक्त रंजित सा हो गया।

राजकुमार [illegible] कोमल कण्ठ से बोले : देवि, शक्तिमयी ! क्षमा करो, अपराध क्षमा करो। [illegible] रेखायें उनकी आकृति पर दौड़ गईं, कुछ [illegible] भावना का उभार, अन्तराल का कोलाहल [illegible]।

उधर [illegible] राजकुमार की ओर निहारती रही। [illegible] देवी अन्तर्धान हो गई। उषा के मुख पर [illegible] कुछ देर तक टिकी रही। उसका शरीर [illegible] से धीरे २ उतरी और [illegible] राजकुमार [illegible] जाते।

राजकुमार के [illegible] पर उषा कार में बैठी। राजकुमार धीरे २ ड्राइव करते हुये होटल से निकले और कुछ दूर कार को रोककर करबद्ध बोले : अब तो क्षमा कर दें, देवि।

उषा गंभीर निश्वास भर कर बोली : क्षमा तो मेरे प्रदीप के पास है।

मैं दया की भिक्षा मांगता हूं, देवि।

सत्य ने दया को अपनाया राजकुमार इसलिये दया अपनी सद्भावना अभिव्यक्त करती है।

राजकुमार की विगत चेतना जाग्रत हुई और द्वार से सीधे राज महल पहुंचे।

हंस कुंवरि ने पूंछा : आज आप का विचार तो मध्य रात्रि बाद आने का था।

उषा अचानक कुछ अस्वस्थ हो गई।

हंस कुंवरि कुछ व्याकुल सी उषा से बोली : बेटी तो क्या हो गया था।

कोई विशेष बात नही, माँ।

इतने में सब अपने २ शयन कक्ष चले गये।

राजकुमार के नेत्रो मे निद्रा कहां। मन-शान्ति के अम्बर मे भरे हुये विलास के प्रासादो मे बैठे थे। कभी क्षोभ और पश्चाताप की भावनायें उनके मानस मे जन्म लेकर व्यथित करती। मन ही मन कहते कि यह मन्द बुद्धि ही क्षण मे क्या से क्या हो गया था। इसी अन्तर्भेद को अभी तक समझ न सका। क्या सचमुच एक देवी नारी पर साकार अवतरित हो सकती है। क्या यह यथार्थ है कि इन दैवी शक्तियों को मानव अपनी साधना से आज के युग मे भी अपने भीतर उतार सकता है ? क्या हमारे देवी देवता ऐसे सरल हैं कि सहज ही में मानव के मानस पिजडे मे वन्दी बन जाते हैं। नहीं, नहीं। यह सर्वथा कल्पना और भ्रम जाल है जो काल से नियन्त्रित होकर मानस पटल पर बिछ जाता है। यह मानव की अपनी दुर्बलता है। इस प्रकार मन मन्थन करते हुये राजकुमार इस निष्कर्ष पर पहुचे कि जो युवती अपनी सब कुछ भावनाओ को समर्पित कर वासना से रहित हो उसमें अवश्य कोई गूढ रहस्य छिपा है।

प्रात हुई। उषा कुछ देर राजकुमार की प्रतीक्षा कर स्वयं उसके कक्ष में गई। राजकुमार को चिन्तित पाकर बोली : यदि मुझसे कोई अपराध बन पड़ा हो तो क्षमा करें।

अपराध तो मेरा है देवि। पर मैं इस रहस्य को अभी तक समझ न सका।

भारतीय नारी सदा परतन्त्र रही, राजकुमार।

तो क्या आप किसी की परतन्त्रता में हैं ?

यह प्राण [illegible] प्रदीप [illegible] में आत्म समर्पण कर चुकी ।

इससे [illegible] कि आप [illegible] आपने सौन्दर्य और मधुर शब्दों द्वारा [illegible] हैं ।

[illegible] मन, वचन, कर्म से शुद्ध प्राणी को इस प्रकार [illegible] । आपकी भावना से स्वयं ही आपको [illegible] लिया ।

[illegible] आये हुये की रक्षा कर ही सकती है । [illegible] किया ।

[illegible] राजकुमार । कलि काल मे रज को [illegible] में समय लगता है । क्योंकि सत् [illegible] ।

देवि । [illegible] की वीथिका मे कंटको का [illegible] देखकर मानव धोखे मे मोहित हो जाता है और [illegible] मन-भ्रमर को आकर्षित कर लेती हो ।

[illegible] अपने अन्तर्चक्षु से अपने को देखकर [illegible] हो जाओगे । पर मैं किसी स्थिति का हेतु [illegible] कुमार ।

[illegible] स्वीकार करता है । तुम [illegible] जलपान आया, इसे अनुग्रहीत करें ।

[illegible] कुमार । मेरा हृदय भर कर पसीज रहा है, रोम [illegible] भावनाओं का हनन किया और तुम्हारी [illegible] में तुम्हें दूर रखा । ऐसे महान अपराधी [illegible] है । आइये जलपान में हमारे [illegible] ।

राजकुमार और [illegible] किया और एकान्त पास के कक्ष मे बैठकर वार्तालाप करने लगे ।

राजकुमार । [illegible] पूर्व जन्म में किये हुये कृत्यो के फल [illegible] भाग्य की दुहाई देता है । [illegible] परस्पर दोषारोपण या छिद्रान्वेषण कर

पश्चात्ताप करना व्यर्थ है। लोकाचार की दृष्टि से हम इसे यदि भूल कहें तो उपयुक्त है।

आप साक्षात देवी का प्रतिनिधित्व करती हुई मानव को सद्मार्ग में लगाने की क्षमता रखती हैं। आपको मैं कोटि कोटि प्रणाम करता हूँ। आज के युग में जबकि पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति भारत पर सर्वथा व्याप्त हो गई तो भारतीय नारी का चरित्र इतना उत्कृष्ट हो सकता है इसकी मुझे कल्पना भी न थी।

पाश्चात्य दर्शन उसकी सभ्यता और संस्कृति आध्यात्मिक जगत से कोसों दूर रही। पाश्चात्य दर्शन में प्रेम एक मात्र विलासिता को जन्म देता हुआ पल्लवित होता है। कहानियां, उपन्यास, कवि और लेखक वहां पर प्रतिशत विलासिता के ही केन्द्र बने। धर्म को उन लोगों ने जीवन का बाह्य आडम्बर मात्र माना।

भारत में आजदिन भी धर्म के भय से विलासिता विदेशों की अपेक्षा अधिक नहीं पनपी।

अतः धर्म वस्तुतः मानवता का रक्षक है। धर्म की मर्यादा मानस-पटल से हट जाने पर माता, पिता, भ्रातृ, भगिनी, पुत्र, पुत्री आदि सभी विलासिता की कोटि में आ जाते हैं। वह धर्म विहीन वर्ग या समाज विविध प्रकार के मानसिक और शारीरिक व्याधियों से ग्रस्त होकर सदा के लिये विलीन हो जाता है।

नारी सदा से भोग और विलास की मूर्ति है। पर धर्म को न्याय के मेरु दण्ड पर रखकर जब तक नहीं तौला जाता तब तक धर्म के अस्तित्व का भी पता नहीं चलता। इसलिये कोरे धर्म की दुहाई देने से कुछ सार निकलना कठिन है।

न्याय धर्म ही का एक अंग है। धर्म ही न्याय की आधारशिला है।

मैं संस्कार को सर्वोत्कृष्ट मानता हूं: कौन, कहां जाता किसने, किसका, मिलन और वियोग होता। प्रत्येक कण-कण, पग-पग और दाने दाने पर मोहर है। त्रैलोक्य की सुन्दरी भी यदि किसी की भावनाओं की हत्या कर सकती है तो उसका सौन्दर्य उस मानव के लिये विष के समान है।

सौन्दर्य अपने अपने भावनाओं पर परखा जाता है। प्राणी स्वयं उसी के अनुसार जीता और मरता है।

भावनाओं का हनन करने वाला सौन्दर्य ही है। इसलिये सौन्दर्य कभी भयकर हिंसक बनकर देह की हत्या करा देता है। भावनाओं की हिंसा से सौन्दर्य अधिक भयानक है। यह पग-पग पर मारती है।

भावना प्राणियो मे सम्मिलित होती रहती है जिसे प्राणी स्वयं मारता और जिलाता रहता है। सभी भावनायें सत, रज और तम इन्ही तीन गुणो के अन्तर्गत निहित है। सतोगुणी भावना पर हिंसा का अधिकार नही हो पाता। शेष दोनो गुणों मे हिंसा अवश्य होती रहती है।

मेरी दृष्टि मे सतोगुणी प्राणी भयंकर हिंसक है। वह प्राणी की भावनाओ को धीरे धीरे हलाल कर मारता है। जब कि राजसी और तामसी स्वभाव का प्राणी इस नश्वर शरीर का ही तत्काल वध करता है। धर्म के साक्षात अवतार मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जिन्हें भारत का एक वर्ग भगवान के रूप मे पूजता है जो सतोगुणी भावनाओं के सिन्धु माने जाते है उन्होंने स्वय युद्धकर कितने प्राणियो की हिंसा की। धर्म के साक्षात अवतार तथा सतोगुणी भावनाओं के उद्गम भगवान श्री कृष्ण ने कौरव और पाण्डवो का युद्ध करा कर क्या हिंसा नही की ? इसी प्रकार देवासुर संग्राम भी प्रसिद्ध ही है। सतोगुण की दुहाई देने वाले प्राणी अधिकाश आज के धर्म ढोंगी बनकर संसार को ठग रहे हैं। इसका तात्पर्य यह नही कि यह सब लोग अपना उद्धार कर लें। आप जैसी सीता सावित्री नारियां आज दिन हमारे देश मे अधिक नहीं, ढूंढने से भी मिलना दुस्तर है। धर्म का वास्तविक स्वरूप तीनो गुणो से सम्मिश्रित है। जिस प्रकार शरीर का पोषण करने के लिये जल, अग्नि और वायु तत्वों का होना अपेक्षित है उसी प्रकार धर्म मे सत, रज, और तम का होना अनिवार्य है। शरीर मे किसी एक तत्व का अभाव उस देह को निष्प्राणकर राख का ढेर बना देता है ठीक यही दशा धर्म की है। फल स्वरूप शरीर को स्वस्थ रखने के लिए जिस प्रकार जल वायु, अग्नि का संतुलन आवश्यक है उसी प्रकार धर्म में सत रज, तम. का संतुलन भाव अनिवार्य है। इसी वार्तालाप के अन्तर्गत कुमारी सौदामिनी कक्ष के द्वार पर संकेत करती हुई अन्दर प्रवेश करती और एक तार का लिफाफा राजकुमार के हाथों में देकर सामने पड़ी हुई एक आसन्दी पर उत्तर की प्रतीक्षा मे बैठ गई।

राजकुमार ने लिफाफे मे उषा का नाम देख कर तार को उषा के हांथ मे दे दिया।

उषा तार को खोल कर पढ़ते ही अधीर हो बोली मेरे प्रदीप।

राजकुमार : क्या हो गया, उषा।

उषा कुछ बोल न सकी। इतने में राजकुमार ने उषा के हांथ से तार को लेकर पढ़ा।

लिखा था 'भयंकर रुग्ण, दशा गम्भीर, प्रदीप' उषा अविलम्ब चर्म पादुका रहित भागती हुई मुम्बा देवी मन्दिर पहुंची। उसकी सारी अभिन्नता एक मात्र प्रदीप की ओर केन्द्रित हो गई। मध्याह्न में मन्दिर के पट बन्द हो चुके थे। कुछ एक भक्त बाहर पड़े थे। देव द्वार पर पहुंचते ही ज्यों ही ध्यान किया द्वार पट स्वत: खुल गये। उषा अपने प्रदीप के स्वास्थ्य की भावना से ध्यान में समा गई और ज्यों ही भावनाओं का संचार करती उसे आभासित हुआ कि प्रदीप विकार से मुक्त होकर एक स्वस्थ प्राणी की तरह हो गया। ध्यान से निवृत्त होकर जैसे ही देवद्वार से उषा निकली राजकुमार अपनी कार लेकर वहां पहुंचे और उषा से कार पर बैठने के लिए आग्रह किया।

मुझे यूँ ही चलना उचित होगा; राजकुमार।

इसका अर्थ मैं भी....

प्रत्येक प्राणी अपने अपने कर्मों का फल भोगता है। आप उसके भागी क्यों बनें।

मेरा भी प्रायश्चित हो जायगा, देवि।

प्रायश्चित तो मुझे करना है, राजकुमार।

ऋग्वेदीय संवाद में जैसे उर्वशी ने पुरूरवा के ज्ञान-चक्षु खोल दिये थे वैसे ही आपने मुझे धरातल से उठा कर देवत्व की उच्च भूमि पर पहुंचा दिया, देवि। आपके ऐसे आदर्श प्रेम से मानवता जाग उठी है। कोई भी समझदार व्यक्ति ऐसे प्रेम का अनादर नहीं कर सकता। वह प्रेम जिसमें कांटे हों, जो क्षणिक विलास का केन्द्र हो और बाद में काले सर्प की तरह बार बार डसने के लिये तैय्यार हो ऐसा प्रेम किसी को फूटी आंखों भी नहीं सुहाता। आपके ऐसे पुनीत जीवन में यदि मैं कुछ योग दे सका तो अपने को धन्य समझूंगा। मैं आपके साथ आत्मीयता का प्रेम जीवन भर निभाऊंगा।

उषा का हृदय हुलसा और अधरों पर हंसी बिखरी। मन्द मुस्कान के साथ बोली, ऐसा भान होता है कि मार्ग में भटक गये थे।

मार्गानुगामी ही मार्ग में भटकते हैं परन्तु सद्गुरु मिलने से सत्य-पथ पर आजाते हैं, देवि।

अब यह पथानुगामी किस पथ पर चलेगा।

जिधर देवी जी की आज्ञा।

तो क्या मुझे अब आपकी कार में चलना ही होगा?

आप ही की तो है ।

उषा कार में बैठकर राजकुमार के साथ महल पहुंची ।

हंस कुंवरि पति की द्वार पर प्रतीक्षा कर रही थी । कार से उतरते ही राजकुमार ने कहा . देवी जी की मान मानना के बाद कार पर बैठी ।

हंस कुंवरि उषा को हृदय से लगाकर गद् गद् कण्ठ से बोली बेटी क्या बात थी ?

प्रदीप की भयंकर रुग्णता, मां ।

आराधना से सान्त्वना मिली ।

स्वस्थता की झलक आई थी, मा ।

कल प्रातःकाल वापिस घर चलना ही है ।

अब मेरा मन नहीं लगता, मा ।

राजकुमार ने कहा : आपके प्रदीप तो स्वस्थ हो ही गये । कुछ दिन और इस रोजविला और बम्बई नगर को पवित्र कीजिये ।

माघ शुक्ल पंचमी तिथि को उषा का विवाह प्रदीप से निश्चित है । समयाभाव से विवशता है ।

तो क्या आपका जाना प्रातःकाल निश्चित ही है ?

ठाकुर साहब प्रतीक्षा में होंगे, कुमार ।

ट्रेन में अभी मैं बर्थ रिजर्व करा दूंगा ।

आप सभी बातों का कितना ध्यान रखते हैं ।

इतने में सब विश्राम करने चले गये । दीवार पर लगी सुनहली घडी ने चार की घंटी बजाई, उषा उठी और समस्त वस्त्राभूषणों को लेकर राजकुमार के मुख्य कक्ष में पहुंची ।

राजकुमार ने चौंककर कहा - यह सब क्या लाई हो देवि ?

तुम्हारे प्रणय-सूत्र का उपहार, राजकुमार ।

यह तो तुम्हारा प्रेमोपहार है, देवि !

इतने में हंस कुंवरि ने आकर कहा : उपहार मे इतनी सामग्री की क्या आवश्यकता ।

ऐसा न करो, देवि । मेरा मन कुण्ठित हो रहा है और मैं लज्जा के बोझ से दबा जा रहा हूँ ।

हंस कुंवरि : लोक व्यवहार से उतना ही ग्रहण करना चाहिये जितना पच सके और व्यवहार निभाया जा सके ।

त्रयोदश पराग

दिनमणि छिप रहा था और सन्ध्या अरुण कुंकुम की झोली भरे भाल पर शुभ्रमयङ्क की टीका धारण किये धरा पर स्वर्ण प्रिय मिलन का अञ्चल पसारे उभरती चली आ रही थी। जलधर अपनी उत्ताल तरङ्गों से दो अपरिचित प्राणियों के स्नेह का स्पन्दन कर रहे थे। रजनी गंधा स्वागताभिनन्दन करते अपनी कलियों के मुख सपुटों को धीरे २ खोल रही थी। ऐसी शुभ वेला में राजकुमार समुद्र के किनारे २ उषा को लेकर टहलने लगे। जगह २ मित्रों की टोलियों से राजकुमार उषा का परिचय कराते जाते। दक्षिणार्थ बम्बई के प्रसिद्ध ताज महल होटल-द्वार के सामने ज्यूं ही आये उषा के चिर परिचित रेवरेण्ड डा० रिचार्ड फिलिप सपरिवार अनायास होटल के द्वार पर दिखलाई पड़े।

उषा कुछ ठिठुरी और संकोच वश उनकी ओर देखते हुए बोली : क्या मुझे डा० रिचार्ड फिलिप जी से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है ?

डा० फिलिप ने कहा : आपका अनुमान ठीक है, सम्भवतः आप वही कुमारी उषा हैं जिन्होंने यज्ञ का संचालन किया था। डा० ने अपनी पत्नी एवं पुत्री की ओर संकेत कर कहा—यह मेरी धर्मपत्नी श्रीमती रिचार्ड फिलिप और यह कुमारी मार्गेट मेरी पुत्री है। उषा की ओर घूम कर प्रोफेसर ने श्री मती फिलिप से कहा : आप भारत की प्रकाण्ड विदुषी दर्शन शास्त्र की प्रकाण्ड पण्डिता कुमारी उषा हैं जिनकी ख्याति-कीर्ति से विश्व आलोकित हो रहा है। इतना कह कर उषा से ताज महल में चलने के लिये अनुरोध किया।

ताजमहल के सुन्दर कक्ष में मखमली कोचों पर आकर सब बैठ गये और परस्पर वार्ता में रत हो गये।

डा० रिचार्ड फिलिप एक चर्च के बिशप भी थे उनकी पुत्री इक्कीस वर्षीया कुमारी मार्गेट फिलिप, अंगरेजी साहित्य एवं दर्शन की ग्रेजुएट थी और भारतीय ललित कलाओं में उसकी विशेष अभिरुचि थी। सभी हिन्दी भाषा से परिचित थे। मार्गेट पाश्चात्य सौन्दर्य की प्रतीक थी। रूप की [illegible] गौरांगिनि शरीर, सुडौल

वस्त्र, पाश्चात्यदेशीय [illegible], [illegible], आभायुक्त श्वेत आकृति, स्फटिक दन्त, [illegible] उसे अलंकृत किये थी।

डा० फिलिप [illegible] में ममता रूपी प्रेम का बीज अंकुरित हुआ।

डा० फिलिप ने [illegible] हुये कहा : आपके इस अनायास दर्शन से मुझे परम आनन्द का अनुभव हुआ।

इस मिलन से भी [illegible] डॉक्टर।

डा० फिलिप ने [illegible] राजकुमार का परिचय जानने की जिज्ञासा प्रकट की।

आप राजस्थान के [illegible] श्री महाराजाधिराज श्री दिग्विजय सिंह जी के [illegible] है। आपको पाश्चात्य और प्राच्य दर्शन का उच्च ज्ञान है। [illegible] किया है।

[illegible] से पूर्ण शिष्टता के साथ प्रसन्नता अभिव्यक्त करते हुए [illegible] कुमारी मार्गेट से राजकुमार का हाथ मिलवाते [illegible]।

राजकुमार [illegible] प्रसन्नता हुई। आपके प्रेम वात्सल्य से मैं बहुत ही प्रभावित हुआ।

श्रीमती फिलिप : [illegible] को अनजाने पथिक का अनायास मिलन करा देती है।

आपमें आत्मीयता का [illegible] है। मुझे आपसे मिलकर अपनत्व का अनुभव हो रहा है।

मिस मार्गेट [illegible] हुई बोली ! आपने अपने हृदय-दर्पण में अपनत्व देखा होगा......

मिस मार्गेट के शब्दों ने राजकुमार के हृदय पर कुछ विशेष प्रभाव डाला। इसी बीच बैरे ने [illegible] उनके सम्मुख रख दी।

डा० फिलिप : आपकी बड़ी कृपा।

[illegible] ने डाक्टर से पूछा : क्या कुमारी मार्गेट ने किसी को अपना जीवन साथी चुना है ?

उसकी इच्छा किसी भारतीय दार्शनिक और कलाविद् को चुनने की है, किन्तु इसका निर्णय उसी के हाथ में है।

यह तो और भी प्रसन्नता की बात है, डाक्टर।

श्रीमती फिलिप : उसे भारतीय दर्शन प्रिय लगा इसलिये।

राजकुमार : क्या भारतीय दर्शन पाश्चात्य दार्शनिक का अधिक प्रिय है?

मिस मार्गेट : भारतीय दर्शन में आत्मा स्वयं बोलती है। जीव और प्राण की मीमांसा, आत्मा की अवस्थायें, आत्म तत्व की परिभाषा, योग की कूटस्थता आदि ऐसे गम्भीर आध्यात्मिक विषयों का अध्ययन कर मुझे परम आनन्द मिला।

उषा : कुमारी मार्गेट तो देवी स्वरूपा है। वह युवक धन्य होगा जो इसके कोमल करों को ग्रहण करेगा।

श्रीमती फिलिप : यह आपकी महानता है जो आपने हमारी मार्गेट की देवी से तुलना की।

डाक्टर ने उषा से पूछा : आप बम्बई में अभी कब तक निवास करेंगी?

मेरा तो विचार कल ही प्रातःकाल जाने का है।

मिस मार्गेट : मेरी प्रार्थना स्वीकार कर दो दिन और रुक जाइये।

हमारी माता पर निर्भर है।

श्रीमती फिलिप : क्या हम सब उनके दर्शन कर सकते हैं?

उन्हे मिल कर बड़ी प्रसन्नता होगी।

हम यथाशीघ्र उनके दर्शन करेंगे।

इतना कहकर सब उठे। एक ओर उधर राजकुमार डा० फिलिप तथा श्रीमती फिलिप परस्पर बातें करते और इधर उषा और कुमारी मार्गेट अलग टहलती हुई बातें करती।

उषा ने मार्गेट से पूछा। भारत में आये कितने दिन हुये?

केवल चार दिन।

आप की सूरत भोली और मन भी वैसा ही भोला है, कुमारी।

एक दार्शनिक अपने अन्तर्दर्शन में आनन्द लेता है।

आप भी अपने अन्तर्दर्शन के आनन्द का अनुभव कुछ बतायें।

मेरे आत्म दर्शन में अनेक चित्र आये और गये।

आप के [illegible] की महत्ता प्रकट हो रही है।

आप कुछ अपने जीवन का [illegible] निवेदन करें।

मेरे जीवन का [illegible] कुमारी। विद्यार्थी जीवन में ही हमारा मिलन [illegible] था। अब मैं यहाँ [illegible] में बसी हूँ।

आप भी [illegible] हैं।

मैं आप को [illegible] में आमंत्रित करती हूं।

[illegible] अपने भावी पति का कुछ परिचय दीजिये।

[illegible] भारत के प्रसिद्ध दार्शनिकों में उनकी गणना है।

[illegible] मैं सुपरिचित हूं।

[illegible] और दर्शन पर कई भाषण दिये।

[illegible] इस प्रकार की चर्चा और [illegible] हुआ करता है।

[illegible] वह एक प्रमुख धर्म गुरु भी है।

[illegible]

[illegible] पर है।

यदि आप [illegible] की कृपा करें तो मैं अवश्य आप के साथ चलूंगी।

[illegible] आप को मिल ही गया। पता नहीं आपका मन किस खोज में है।

मेरे मन में [illegible] हो रहा है। ऐसा कहते हुये मार्गेट के दीर्घ नील नयन चमक उठे।

क्या आप उनकी जीवन संगिनी बनना चाहेंगी?

उनके [illegible] मुझे मिली, परन्तु आपके प्रश्न का उत्तर [illegible] है।

फिर मुझे [illegible]।

आप को इसके लिये मेरी [illegible] स्वीकार कर रखना ही होगा।

यदि आप विवाह करने की भावना व्यक्त करें तब मैं कोई युक्ति निकालूं।

मैं उसी भावना को [illegible] हूं कि ऐसा ही कोई भारत का दार्शनिक हो जिस पर मैं अपना [illegible] कर दूं।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि आप राजकुमार को अपनी आत्मा के अनुरूप पायेंगी।

आप के इस आश्वासन पर मैं वचन देती हूँ कि राजकुमार यदि मुझसे विवाह करना उचित समझेंगे तो मैं अपने को भाग्य शीला समझूंगी।

उषा और मार्गेट ने अपनी स्नेह वार्ता समाप्त की। प्रसन्न मुद्रा में सब सम्मिलित होकर होटल के बाहर आये। राजकुमार के अनुरोध पर कारों मे बैठे और रोजविला की ओर चले। ताज-महल होटल से रोजविला- कई मील की दूरी पर था, मार्ग में दो मील का लम्बा एक विशाल जुलूस जगद्गुरु शंकराचार्य के शुभागमन पर निकल रहा था। धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो, प्राणियों मे सद्भावना हो और विश्व का कल्याण हो आदि के गगन भेदी ध्वनि से समस्त वातावरण गुञ्जरित हो रहा था। एक घंटे तक निरन्तर मार्गावरोध रहा। उषा और राजकुमार अपनी पेकार्डकार पर थे और रनवीम कार पर पिल्पि दम्पति अपनी पुत्री के साथ बैठे थे। इसी बीच सबको परस्पर विचार विनिमय का अवसर मिला। एक ओर उषा और राजकुमार का विचार विमर्श और दूसरी ओर कार में मिस मार्गेट अपने माता पिता से विचार विमर्श करती।

उषा ने राजकुमार से पूछा, आपको कुमारी मार्गेट कैसी लगी?

सम्भवतः उसे भारतीय दर्शन प्रिय है।

आप से प्रभावित है, राजकुमार।

प्रेम-स्पन्दन तो कुछ मुझे भी हुआ।

यदि आप उसे अपना लें तो अन्तर्राष्ट्रीय समस्यायें हल हो जायें।

पाश्चात्य महिला से वैवाहिक बन्धन हमारे धर्म, राष्ट्र, समाज आदि के कलंक का कारण न बन बैठे।

आप जैसे धर्म और दर्शन के विद्वान को धर्म के आधार पर ही मानव जगत की इस समस्या का समाधान कर तथा मानव को ऐसी संकुचित बेड़ियों से निकालकर उबारना होगा और धर्म के निर्मल स्वरूप को दर्शाना होगा। आत्म-तत्व-ज्ञानी इन संकीर्ण एवं संकुचित विचारों की दुर्गन्धि से सदा परे रहते हैं।

आप के यह शब्द हृदय पर छाप कर गये। इस प्रकार का विवाह अन्तर्राष्ट्रीय प्रेम बन्धन को सुदृढ़ कर विश्व बंधुत्व की भावना जगायेगा। पर एक समस्या, जो मुख्य रूप से बाधक बन कर खड़ी होगी वह हमारे परिवार की है। विशेषकर हमारे महाराजा और महारानी जिनका मैं आत्मज हूँ वे इस विवाह को कदापि उचित न समझेंगे।

उन्हें सान्त्वना देने अथवा समस्या का निराकरण करने के लिये कोई हल निकाला ही जायगा, राजकुमार !

परन्तु एक पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति में पली और उन सस्कारो में जन्मी महिला भारतीय नारी की उच्च आदर्शवादिता को क्या पा सकेगी ?

सभी एक समान नहीं होते । जब युग परिवर्तन होता रहता है तो उसी क्रम से विश्व की संस्कृति और समाज का स्वरूप युग धर्म को धारण करता है । मानव के विचार भी उसी गति के सांचे मे ढलते रहते है । आत्म-तत्व का दार्शनिक जीव मात्र को एक ही आत्म स्वरूप मानता है । उसके जीवन में इस प्रकार का बन्धन जन्म नहीं लेता । उसकी दृष्टि एक मात्र उस अज्ञात सर्वोच्च सत्ता पर ही केन्द्रित होती है । जिसे विभिन्न नामों से गुणानुवाद करते हुये पुकारा जाता है ।

तो क्या मार्गेट अपने विचार एक मात्र मुझसे विवाह करने का अभिव्यक्ति कर चुकी है ?

हां । उसका संकेत तो कुछ मिला ही है पर यदि आपका मन भरता हो । मन भरने की बात तभी कही जा सकती है जब प्रेम का सिंचन हो । अभी तो बीजांकुरित हुआ है ।

उषा : इसी बीज का सिंचन हो रहा है, राजकुमार ।

आपके द्वारा सींची हुई प्रेम बल्लरी सदैव पल्लवित और पुष्पित होगी ।

इन शब्दों के साथ दोनों की परस्पर वार्ता समाप्त हुई ।

उधर मिस मार्गेट अपनी भावनाओं का परस्पर आदान प्रदान माता पिता से करती जाती ।

मिस मार्गेट : राजकुमार हमें बडे अच्छे लगे, मां ।

क्योंकि तुम्हें भारतीय दर्शन ही प्रिय है ।

रिचार्ड फिलिप : राजकुमार की योग्यता, प्रखर मस्तिष्क, रूप का सौन्दर्य, वाणी की सहृदयता, व्यवहार की सहिष्णुता उनके सदगुणो को अलकृत करती है, बेटी ।

पता नहीं, भारत का एक दार्शनिक मुझ ऐसी पाश्चात्य महिला से विवाह करने में स्वतन्त्र है या नहीं, पिता जी ।

दार्शनिकों की दृष्टि में ऐसे बन्धन बाधक नही होते । वह सार्वभौम सह-अस्तित्व पर विश्वास करता है बेटी ।

हो सकता है मेरी कल्पना सफल हो ।

भारतीय दर्शन का विद्वान बात का धनी और विचार का दृढ होता है । उनके विचारों में उछृन्खलता नहीं होती । मेरा निजी अनुभव इसका साक्षी है, प्रिय बेटी ।

तब तो सम्भव है हम अपने लक्ष्य पर पहुँच सकें ।

उषा का तत्व-ज्ञान और मर्म स्पर्शी दार्शनिक विचारों की सुगन्धि मुझे उनके निकट दो दिन रह कर मिली। भारत के दार्शनिक, मार्मिक एवं सारगर्भित जिन तथ्यों को अनुभव में लाकर उषा ने अपने जीवन में उतारा है उस की झलक मैंने अपने उर अन्तर में देखी और उसी भावना को लेकर तुम अपनी माता के गर्भ में आईं।

श्रीमती फिलिप : वैज्ञानिक दृष्टि से इसीलिये मनोविज्ञान द्वारा जीव अपने संस्कारों को लेकर गर्भ में अवतरित होता है और उसी भावना में परिवर्तित होता या भूलोक में जन्म लेता है। भाव का प्रधानत्व ही मुख्य है।

डा० फिलिप : भाव ही में समस्त शक्तियां केन्द्रित होती हैं। परन्तु भावोत्पादकता का कौन बिन्दु आत्मा है जिसे हम धर्म कहते हैं।

सुना जाता है भारत में धर्म को सामाजिक बन्धनों की बेड़ियों में जकड़ दिया गया है। जिनपर समाज का पूर्ण नियन्त्रण है। कुल-गोत्र, जातीय-अपमान, इस प्रकार की मर्यादाओं का विशेष ध्यान दिया जाता है।

इस प्रकार के विकार विश्व व्याप्त पाये जाते हैं। जाति, वर्ग, रङ्ग-भेद, आदि का कोढ सर्वत्र है। पर युग-धर्म इस रोग को आमूल नष्ट कर देगा। आज के युग का उच्च विचारक एवं दार्शनिक इसी खाई को पाटने में लगा है। भारत का दर्शन एवं अध्यात्मवाद ही आत्म तत्व की ज्योति जगाकर आज के मानव को एक दूसरे के निकट लाकर प्रेम की बेलि विकसित कर सकता है।

हमारे देशों में आज भौतिकवाद का बोल बाला है। विश्व वैज्ञानिक युग में चल रहा है। अध्यात्मवाद को धर्म-जाल समझा जाता है। पूजा-पाठ, ध्यान, ज्ञान की चर्चा अधिक नहीं सुहाती। आज का वैज्ञानिक मानवता को विनाश की कगार पर ले जाकर बैठाल चुका है। जिसके एक क्षण की झोंक विश्व को तत्क्षण विध्वस कर सकती है। इस भौतिक एवं वैज्ञानिक कोलाहल ने मानव के अन्तर्निहित आत्म-तत्वरूपी ज्ञान को हर लिया है। यद्यपि इस सर्व विनाश का दुखद अन्त अध्यात्म-तत्व की ओर निहारता है और धर्म अपने अन्तिम परिणामों को लेकर पुनः सृष्टि का सृजन करता है।

इसी दूर दर्शिता को लेकर आज का दार्शनिक अन्तर्राष्ट्रीय तथ्यों की गहराई में बैठकर दार्शनिक सिद्धान्तों के आधार पर मानवता की रक्षा करने के लिये कटिबद्ध है।

अणु आयुधों के परीक्षणों में मानवता कलपती हुई धर्म से पनाह मांग रही है। ऐसे वैज्ञानिकों की विध्वंसात्मक प्रवृत्तियां दार्शनिक के मन, मस्तिष्क पर वज्र सा प्रहार करती हुई उसे स्वच्छन्द उभरने नहीं देतीं।

ज्ञान विज्ञान के घेरे में घिरा हुआ आज का जगत काल की ओर निहार रहा है। मेरी शुद्धात्मा कहती है कि काल सत्य की वेदी पर धर्म के अंकुश से विश्व को सद् प्रवृत्तियों की ओर मोड़ता हुआ वैज्ञानिकों को विध्वंसात्मक मार्ग से बहिर्मुख कर रचनात्मक प्रवृत्तियों की ओर ले जायेगा।

इस प्रकार ज्ञान-विज्ञान के वाद संवाद में उलझते मार्ग की भीड़ से अवकाश पाकर सब लोग रोजविला के प्रांगण में पहुंचे। राजकुमार अपनी कार से उतरे और सम्मानपूर्वक अभिवादन करते हुये कुमारी मार्गेट के कार का द्वार पट खोला, उसी बीच कुमारी सौदामिनी ने आकर सबका स्वागत किया और रोजविला के मुख्य कक्ष में लाकर बैठाया। कुछ ही क्षण में मानव कृत्य स्वर्ण पक्षी ने अपने मधुर स्वर में स्वागत वंदना का पद्य सुनाया। कुमारी मार्गेट का मन इन अनमोल शब्दों पर केन्द्रित हो गया और वह उस पक्षी की ओर निहार कर भाव भरे शब्दों में राजकुमार से बोली : मेरे प्रिय राजकुमार ! यह आपका स्वर्ण पक्षी कैसे मधुर सन्देश सुनाता हुआ प्राणी के मन को हर लेता है।

यह मानव धर्म के प्रेम का संदेश देता है, कुमारी।

इतने में परिचारिकायें रेशमी वस्त्र एवं आभूषणों से मण्डित रजत पात्रों में संजोये अनेक प्रकार के व्यञ्जन लाईं। तदनन्तर उषा ने अपनी माता हंसकुंवरि को अन्दर से बुलाकर सब से परिचय कराते हुये कहा : यह हमारे चिर परिचित डा० रिचार्ड फिलिप हैं यह इनकी धर्म पत्नी और यह कुमारी मार्गेट इनकी एक मात्र प्रिय पुत्री हैं।

हंसकुंवरि ने सस्नेह कहा—आप सबके दर्शनों से बड़ी प्रसन्नता हुई।

रिचार्ड फिलिप : हम लोग विशेष रूप से आपही के दर्शन करने आये हैं। सुना है आप कल प्रात अपने निवास स्थान वापिस जाना चाहती है।

जी हां। विचार तो कुछ ऐसा ही है।

श्रीमती फिलिप : हमारी बेटी आपसे कुछ विशेष निवेदन करना चाहती है।

बेटी। क्या चाहती हो ?

प्रार्थना यदि स्वीकार हो तो कहूँ ।

यदि कोई विशेष ऐसी अहम बात नहीं हुई तो अवश्य स्वीकार होगी ।

केवल चार दिन आप से यहाँ और विश्राम करने के लिये आग्रह है, पाँचवें दिन मैं भी प्रदीप के दर्शनार्थ आपके साथ चलूँगी ।

यद्यपि उषा के विवाह का समय अधिक निकट है फिर भी तुम्हारी इच्छा पूर्ति तो करना ही है ।

इन शब्दों मे कुमारी मार्गेट के प्रेम का अंकुर और पल्लवित हुआ ।

चाय से निवृत्त होकर उषा, हंसकुंवरि, डा० निर्मला तथा श्रीमती फिलिप एक कक्ष में बैठकर विचार विमर्श करते और इधर राजकुमार कुमारी मार्गेट को अपनी मनोरम वाटिका के दर्शन कराने ले गये और चमेली पुष्पों मे भीनी सुगन्धि के मध्य दोनों बैठ कर प्रेम को पल्लवित करने लगे ।

आपकी वाटिका मे कैसी भीनी सुगन्ध मन को अपनाये लेती है, राजकुमार ।

भारतीय दर्शन की प्रतीक, भावनाओं मे पगी आपने अपने प्रेम का बीज प्रथम मिलन मे ही बो दिया ।

उस बीज को आपने कितना पल्लवित किया ?

इसको दार्शनिक अपने आत्म तत्व की कसौटी पर परखे ।

इसकी क्षमता भारत के आत्म तत्व वेत्ता को है जिनके आकर्षण मे मैं इस भूमि मे आई हूं । जिसने जन्म से प्रेम का बीज बोकर मेरे अन्तर्गत के क्षेत्र को इतना उर्वरा कर दिया, कुमार ।

भारत के आत्म-तत्व का बीज आपके आन्तरिक भूमि को अपने सतोगुणी तत्वों से स्वतः सिंचन करता हुआ पल्लवित होगा । यह वह बीज है जो मानव की बंजर भूमि को भी हरा भरा कर देता है । पर साधिके ! चन्द्र की स्निग्धता अमृत से होती है । मेघो मे उत्साह मयूर नर्तन से भरता है, यौवन मे उन्मत्तता आत्मसमर्पण से उठती है और प्रणय की सफलता साधना से प्राप्त होती है ।

मार्गेट : आपने आध्यात्मिक तत्व का कैसा सुन्दर विवेचन किया । क्या मैं अपने लक्ष की पूर्ति मे सफल हो सकूंगी, प्रिय राजकुमार ?

किस लक्ष की कामना है, प्रिय कुमारी ?

जिसकी पूर्ति आपके जीवन की एक समस्या बन सकती है ।

जीवन तो यों ही समस्याओं का केन्द्र है कुमारिके ।

सम्भव है मेरे लक्ष की पूर्ति में आप बहुमुखी संकटों के घेरे मे घिर जायें, राजकुमार ।

उसी मे उबरना ही आत्म-तत्त्व की कसौटी है, कुमारी ।

यदि आप उषा के साथ निभाने का संकल्प लें तो........

आत्म-तत्त्व पर सींचा हुआ प्रेम सदैव अमरता का संदेश देता है। यह अजर, अभेद्य और अविनाशी है। यह कोटि कोटि योनियो की भावनाओं के अन्तर्जगत मे विचरता रहता है। केवल कर्मेन्द्रियों द्वारा भोग और मोह जाल के बन्धन मानव जीवन का बाह्य संघर्ष केन्द्र बनते हैं।

ऐहिक और पारलौकिक दोनों सुखों का उपभोग करने, जन्म-जन्मान्तर के आवागमन बन्धन पर मानव की गति कल्याणप्रद मानी गई है। पर बाह्य जगत के आवरण की पूर्ति हेतु वैवाहिक रूप में उतरना अपेक्षित है।

आत्मीयता के आधार पर प्रेम का आदर्श बाह्य आवरण से परे है। परन्तु वैवाहिक जीवन लोकाचार दृष्टि से मान्य है। इसलिये आप के लक्ष की पूर्ति सभी दृष्टि से हो सकती है।

आपकी भावाभिव्यञ्जना ने संकोच का पर्दा हटा दिया। अतः मैं अब आपको आत्म समर्पण करती हूं हृदयेश।

इतना कह कर कुमारी मार्गेट ने राजकुमार के दोनों कर कमलो को सप्रेम अपने प्रवाल अधरो मे चुंबन किया और उसके मुख लावण्य को अपने नेत्रों से पान करती हुई बोली : मैंने मन चाहा जीवन साथी पा लिया।

मैं अपनी प्रेयसी के लिये सर्वस्व त्याग कर दूंगा।

इन शब्दो के साथ राजकुमार ने मार्गेट का आलिङ्गन किया और उसके अरुण कपोलों का अपने उष्ण अधरों से स्पर्श किया। तत्पश्चात् एक दूसरे के कर को ग्रहण किये दोनो भवन के मुख्य कक्ष में पहुंचे।

उधर उषा ने डा० फिलिप से कहा : आपको यहां आने के लिये मार्ग में बड़ा कष्ट हुआ।

आपकी माता जी के दर्शन से बड़ी प्रसन्नता हुई।

हंस कुंवरि : आपकी शील सौजन्यता एवं विद्वत्ता से उषा बहुत ही प्रभावित है।

श्रीमती फिलिप . आपने बड़ी कृपा की जो चार दिन और रुकने की हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ली। आपसे हमारा उत्साह वर्धित हुआ। आशा है, आप हमारी बेटी की समस्या सुलझाने में सहायक होंगी।

मेरे योग्य जो भी सेवा हो बतायें।

मार्गेट का जीवन जन्म से ही दार्शनिक रहा। वह इसी वातावरण मे जन्मी, पली और पढ़ी। भारतीय दर्शन उसका एकमात्र प्रिय विषय रहा। इसी दर्शन के अनुराग में वह अपना वैवाहिक सम्बन्ध किसी भारत के ऐसे उच्च दार्शनिक से करना चाहती है।

यह उसके संयोग की बात है। जहाँ भी बदा हो।

आपकी बात उचित है। फिर भी मानव को धर्म के पथ पर कर्तव्य कर्म तो करना ही पड़ता है।

यह तो मानव का स्वाभाविक गुण है।

उषा : हमारी मार्गेट भारत भूमि को मुक्ति-प्रदायिनी कहती है।

श्रीमती फिलिप : राजकुमार भी एक दार्शनिक एवं होनहार युवक हैं। पता नहीं इनके वंशज, माता-पिता मार्गेट से विवाह करना उचित समझेंगे या नहीं।

हंसकुंवरि : राजकुमार सूर्यवंशी क्षत्री हैं। वह अयोध्या नरेश मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र के वंशज हैं जिनका परिचय रामायण से मिलता है और दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान हैं, अपने वचन पर दृढ़ रहते हैं।

उषा : उन्हें अपने माता-पिता की आज्ञा सदैव शिरोधार्य रही, मां। यदि भावी प्रबल है तो अवश्य होगा।

हंस कुंवरि उचित होगा दोनों का ज्योतिर्विज्ञान के आधार पर विचार करवा लिया जाय। यदि जन्मांग ठीक मिलते हों तब आगे की आशा की जाय।

मिसेस फिलिप : मेरी बेटी का जन्म २२ अक्तूबर सन् ४२ ई० को प्रातःकाल ८ बजकर १५ मिनट पर लन्दन में हुआ। इसी से आप जन्मांग बनवा लें।

उषा ने शीघ्र ही प्रदेश के प्रसिद्ध ज्योतिषी श्री शशिकान्त शास्त्री को बुलवाकर तत्काल मार्गेट का जन्मांग बनवाया और राजकुमार की कुन्डली से मिलान करवाया।

विद्वान ज्योतिषी ने कहा : गुण-गणना विचार से छत्तीस गुणों में अट्ठाइस गुण बनते हैं। गृह-मैत्री, बलाबल तथा ग्रहों का क्षेत्र-सम्बन्ध आदि उत्तम बनता है। इस प्रकार का विवाह-योग सर्वोत्कृष्ट माना जाता है।

हंसकुंवरि . ज्योतिर्विज्ञान की दृष्टि से आभासित हो गया कि यह सम्बन्ध सम्भाव्य-विधि की परिधि में आ गया ।

श्रीमती फिलिप : आपको बहुत २ धन्यवाद ।

हंस कुंवरि अब मुख्य समस्या उनके माता पिता की स्वीकृति है। जहाँ तक राजकुमार का सम्बन्ध है उन्हें तो हमारी उषा मना ही लेगी ।

उषा : राजकुमार स्वभाव से अत्यन्त सरल हैं। नारी जाति के प्रति उनका बड़ा आदर है। उनकी भूमिका तो बन चुकी है। सभवतः स्वीकृति भी हो चुकी होगी ।

श्रीमती फिलिप : राजकुमार के माता-पिता की स्वीकृति किस प्रकार सम्भव हो सकेगी ?

उषा : राजकुमार से परामर्श करने के बाद ही कोई मार्ग निकाला जा सकता है।

इसी प्रसंग के अन्तर्गत राजकुमार और कुमारी मार्गेट प्रेम-वाटिका से उठकर आ पहुंचे। दोनों के मुख पर प्रेम का सौन्दर्य छिटक रहा था। कुमारी मार्गेट भाव पूर्ण मुद्रा में अपनी माता के कान में चुपके से बोली : "लक्ष की पूर्ति हो गई" इन शब्दों को सुनते ही मां का हृदय फूला न समाया और वह अपनी पुत्री के मुख का बार-बार चुम्बन करती। डा० फिलिप ने भी साकेतिक भावनाओं से कुमारी मार्गेट की हथेलियों का चुम्बन किया ।

उषा ने उल्लसित होकर कहा। प्रतीत होता है कि मार्गेट की कामना सफल हुई ।

मार्गेट हृदय भर कर बोली : आप ही की कृपा है। मैं जन्म-जन्मान्तर आपके इस ऋण से उद्धार नहीं हो सकती ।

उषा : व्यर्थ लज्जित न करो, कुमारी। यह तो मानव धर्म है। नारी शक्ति है। अन्तर्राष्ट्रीय प्रेम की जाग्रति नारी जाति से ही हो सकती है।

आपकी भावना वसुधा में प्रेम की मधुरिमा बिखेरती हुई मानव जगत को प्रेम-मय कर देगी ।

यदि विश्व की नारियां इसी प्रकार प्रेम का परस्पर आदान-प्रदान करती रहें तो निश्चय ही मानव का कल्याण होगा ।

डा०फिलिप ने राजकुमार की ओर संबोधित करते हुए कहा आप ने जो कुछ भी भावना आदरणीय कुमारी उषा की माता के सम्बन्ध मे हम दोनो के मन मे भरी उनका तत्क्षण परिचय हमें मिल गया ।

श्रीमती फिलिप : आपने बड़ी कृपा की जो चार दिन और रुकने की हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ली। आपसे हमारा उत्साह वर्धित हुआ। आशा है आप हमारी बेटी की समस्या सुलझाने मे सहायक होंगी।

मेरे योग्य जो भी सेवा हो बतावें।

मार्गेट का जीवन जन्म से ही दार्शनिक रहा। वह इसी वातावरण मे जन्मी, पली और पढ़ी। भारतीय दर्शन उसका एकमात्र प्रिय विषय रहा। इसी दर्शन के अनुराग में वह अपना वैवाहिक सम्बन्ध किसी भारत के ऐसे उच्च दार्शनिक से करना चाहती है।

यह उसके संयोग की बात है। जहा भी बदा हो।

आपकी बात उचित है। फिर भी मानव को धर्म के पथ पर कर्तव्य कर्म तो करना ही पड़ता है।

यह तो मानव का स्वाभाविक गुण है।

उषा : हमारी मार्गेट भारत भूमि को मुक्त-प्रदायिनी कहती है।

श्रीमती फिलिप : राजकुमार भी एक दार्शनिक एवं होनहार युवक हैं। पता नहीं इनके वंशज, माता-पिता मार्गेट से विवाह करना उचित समझेंगे या नहीं।

हंसकुंवरि : राजकुमार सूर्यवंशी क्षत्री हैं। वह अयोध्या नरेश मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र के वंशज हैं जिनका परिचय रामायण से मिलता है और दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान हैं, अपने वचन पर दृढ़ रहते हैं।

उषा : उन्हें अपने माता-पिता की आज्ञा सदैव शिरोधार्य रही, मां। यदि भावी प्रबल है तो अवश्य होगा।

हंस कुंवरि : उचित होगा दोनों का ज्योतिर्विज्ञान के आधार पर विचार करवा लिया जाय। यदि जन्मांग ठीक मिलते हों तब आगे की आशा की जाय।

मिसेस फिलिप : मेरी बेटी का जन्म २२ अक्तूबर सन् ४२ ई० को प्रातःकाल ८ बजकर १५ मिनट पर लन्दन में हुआ। इसी से आप जन्मांग बनवा लें।

उषा ने शीघ्र ही प्रदेश के प्रसिद्ध ज्योतिषी श्री रजनीकान्त शास्त्री को बुलाकर तत्काल मार्गेट का जन्मांग बनवाया और राजकुमार की कुन्डली से मिलान करवाया।

विद्वान ज्योतिषी ने कहा : गुण-गणना विचार से छत्तीस गुणों में अट्ठाइस गुण बनते हैं। गृह-मैत्री वर्णबल तथा ग्रहों का क्षेम-सम्बन्ध आदि उत्तम बनता है। इस प्रकार का विवाह-योग सर्वोत्कृष्ट माना जाता है।

शील सौजन्य की मूर्ति, दर्शन की सुपरिइना, देवी-स्वरूपा कुमारी मार्गेट ऐसी सुनयनी दानव को भी आकर्षित कर मानव बना सकती है। विश्व की ऐसी देवियां प्रेम का संदेश लेकर समस्त संसार के मानव को प्रेम सूत्र में पिरोकर, विश्व की धधकती हुई समराग्नि को सदैव के लिए बुझा सकती हैं। नारी शक्ति का अन्तर्राष्ट्रीय संगठन इस युग की पुकार है। इस समय उन पर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है।

आप बड़े दूरदर्शी हैं, राजकुमार। युग की नाडी परख कर मानवता का संदेश देते हैं। यदि इसका बहुमुखी प्रचार कर नारी समाज को जागरूक किया जाय तो प्रेम के माध्यम से सभी संघर्षात्मक समस्यायें सुलझ सकती हैं।

श्रीमती फिलिप : उषा को कुमारी मार्गेट इस कार्य क्षेत्र में अधिक सहयोग दे सकेगी।

उषा : इसीलिए मुझे मार्गेट अति प्रिय है।

हंस कुंवरि ने मध्यस्थता करते हुए कहा : अब तो सब विचार विनिमय हो गया। अब हमें वह मार्ग अपनाना है जिससे भारतीय परम्परा के अनुसार राजकुमार और मार्गेट का विवाह संस्कार सम्पन्न हो सके।

राजकुमार ने अपने चिबुक को दबाकर कहा : हमारे माता पिता इस परिणय से सम्भवत. सहमत न होंगे। फिर भी प्रयत्न तो करना ही है।

मार्गेट के मुख पर कुछ उदासीनता की लहर झलकी और वह साय भरे शब्दों से बोली : मेरे प्रिय राजकुमार ! फिर कैसे क्या होगा ?

चिन्ता न करो रूपसि। विजय तुम्हारी ही होगी ?

मार्गेट कुछ उलझन में आखिर क्या होगा।

तुम इस हृदय और भवन दोनों की रानी होगी।

इन शब्दों ने मार्गेट की हृदय ज्योति जला दी। उसके मुख की कान्ति कमनीयता द्विगुणित हो उठी। सभी की आकृति पर आनन्द की लहर दौड़ गई।

उषा : न हो कल मैं स्वयं राजस्थान वायुयान से जाकर आप के माता-पिता से विचार-विमर्श कर लूं।

आप ऐसी महान आत्मा को राजस्थान के राज-महल में इस तुच्छ कार्य के लिए जाना मैं उचित नहीं समझता। मैं स्वयं उन्हें आज ही तार द्वारा यहां बुलाने का प्रयत्न करूंगा।

उषा : अति ही उत्तम।

कुमारी मार्गरेट ने उषा से आग्रह पूर्वक कहा : आप की उपस्थिति आवश्यक है। मैं अपने प्रदीप को भी तार द्वारा बुलाये लेती हूं।

मेरे अहोभाग्य।

डा० फिलिप : उषा की भावना धर्म के सच्चे स्वरूप को अलंकृत करती है।

श्रीमती फिलिप : उषा का हृदय सागर के समान गम्भीर और सन्तों के सदृश उदार है।

यह आप की महानता है महानुभाव।

राजकुमार : उषा साक्षात् देवी है। मैंने इन्हे अपने में उतार कर देखा। ऐसी पुनीत आत्मायें विश्व में विरला ही मिलेंगी।

हंस कुवरि : तुमने अपने अन्तर्दर्पण में उषा को उतार कर वस्तुत: अपने स्वरूप का परिचय दिया है।

इतने में नौ का घंटा बजा। राजकुमार ने शीघ्र ही फोनोग्राम द्वारा अपनी ओर से माता पिता की ओर प्रदीप को उषा की ओर से विशेष आवश्यक (अर्जेन्ट)। तार भेजकर अत्यन्त शीघ्र बुलाने के लिए लिखा। तत्पश्चात सब एक साथ भोजन करने बैठे। दस बजे कुमारी मार्गरेट सपरिवार होटल जाने के लिये तैयार हुई।

राजकुमार : कल प्रात: जलपान मे सम्मिलत होने का कष्ट करे।

मार्गरेट : आपकी जो आज्ञा।

दूसरे दिन प्रात: डा० फिलिप सपरिवार राजकुमार के महल में आ गये और एक घन्टे आमोद-प्रमोद के पश्चात सायकाल चार बजे अपने निवास स्थान बम्बई के ताज-महल होटल में राजकुमार, उषा और हंसकुवरि को चाय पर आमन्त्रित किया।

राजकुमार ज्यों ही उषा और हंसकुवरि को लेकर राज-महल की सीढियों से ताज-महल होटल जाने के लिये उतरे पोस्ट-मैन प्रदीप और महाराजाधिराज दोनों का एक साथ तार लेकर आया। दोनों तारों को खोलकर राजकुमार ने पढा।

१. प्रात: दस बजे ट्रेन से बम्बई पहुंच रहा हूं, प्रदीप।

२. कल मध्याह्न ढाई बजे शान्ता क्रूज पहुंच रहा हूं। महाराजाधिराज।

दोनों का एक साथ तार द्वारा समाचार पाकर उषा और राजकुमार पुलकित हो उठे। हृदय में एक नवीन उल्लास हुलसा। दोनों तार लेकर ताज-महल होटल की ओर प्रस्थान किया, पर निश्चित समय से पन्द्रह मिनट बाद होटल पहुंचे।

कुमारी मार्गरेट विकल हो वियुक्त कुरङ्गिनी की भांति गुलाबी कलाई पर काले फीते से बंधी सुनहली घडी की सुइयां प्रतिक्षण गिनती। कभी बाहर देखती और

कभी इधर उधर छट-पटाती और कार के हार्न की ओर ध्यान देती। दस मिनट की प्रतीक्षा ने उसे अधीर कर दिया। टेलीफून उठाकर ताजमहल के नम्बर पर डायल करती। मालूम हुआ वह चल दिये। कहां गये और क्या हुआ, विभिन्न कल्पनाओं की उड़ान में मन को उलझाती हुई अपने पिता से बोली: आप यहां रुकिये मैं अभी राजा-महल के मार्ग की ओर कार द्वारा पता लगाकर लाती हूं। कही कोई दुर्घटना तो नही हुई। इतना कहते ही ज्यो ही वह स्वयं कार लेकर ड्राइव करती हुई होटल के मुख्य गेट से बाहर की ओर मुड़ी कि दूसरी ओर के प्रवेश द्वार पर राजकुमार की कार हार्न बजाती हुई आ गई। कारो के हार्न की ध्वनि गति विचित्र प्रकार की थी, जो एक दूसरे के आगमन का एक फर्लांग की दूरी से सदेश वाहक का काम करती। दोनो ने कार के हार्न की ध्वनि सुनी। एक दूसरे ने परस्पर दृष्टिपात किया। मिस मार्गेट तत्क्षण अपने कार की गति को तीव्रकर चक्कर लगाती हुई प्रवेश द्वार की ओर ले गई। उधर राजकुमार पोर्टिगो के नीचे अपनी कार को खड़ी कर प्रतीक्षा करने लगे। कुछ ही पलों मे मार्गेट अपनी कार लेकर पहुची। राजकुमार ने मार्गेट के कार के द्वार को खोला। कार से उतर कर अपनी शिष्टता और सभ्यता के अनुसार राजकुमार का अभिवादन करती हुई भाव भरे शब्दों में कुमारी मार्गेट बोली: इतनी विलम्बता का कारण ?

आपको बड़ा कष्ट हुआ।

कष्ट तो कुछ नहीं बस यही कि मन ...

प्रेयसी का हृदय और प्रियतम के प्रतीक्षा की उत्सुकता मैं समझता हूं।

आप भी तो कुछ वैसा ही अनुभव करते होंगे। इतना कहते हुये मार्गेट के अधरो पर हलकी सी मुसकान विलस उठी।

उषा ने आकर मन्द मुसकान से कहा: डा० साहब प्रतीक्षा मे होगे। प्रेम का दार्शनिक विचार विनिमय बाद को उत्तम होगा।

सब लोग लिफ्ट पर बैठकर चाय के मुख्य कक्ष में पहुंच गये।

डा० फिलिप सपत्नीक हाथ मिलाकर बोले: मालूम पड़ता है इस विलम्ब का कोई विशेष कारण था।

जी हां। विशेष शुभ सूचक समाचार हैं।

फिलिप: क्या समाचार है, राजकुमार ?

पिता जी और प्रदीप दोनों के आगमन का तार आ गया। कल ही आ रहे हैं।

मार्गेट प्रसन्न मुद्रा में बोली : अहोभाग्य।

श्रीमती फिलिप . मालूम पड़ता है उषा अपनी दैवी शक्ति का आवाहन कर रही है।

वस्तुत. यह सब उषा की ही प्रेरणा से हो रहा है।

हंस कुंवरि : मुझे इस बात का आश्चर्य है कि श्रीमती फिलिप को भी किसी रहस्य के परखने की क्षमता है।

श्रीमती फिलिप : हमारे पाश्चात्य धार्मिक ग्रन्थो में भी दैवी शक्तियो का उल्लेख यत्र तत्र मिलता है। मेरे पति तो इस विषय के आचार्य और धर्म गुरू भी हैं।

कुंवरि : इसलिये परस्पर ध्यान, ज्ञान और विचार बहुत कुछ मिलता है।

श्रीमती फिलिप : हम सभी शाकाहारी है। विशेष कर हमारी मार्गेट तो तामसी पदार्थ कदापि ग्रहण नही करती।

आहार विहार से बुद्धि बनती है। वस्तुत यही मानव के गुण स्वभाव को परिल[illegible]त करता है। इसलिये इसका सयम नितान्त अपेक्षित है।

[illegible]ट तो पात्रों का भी विशेष ध्यान रखती है। क्योंकि पात्रो की शुद्धता भी आवश्यक है। इसलिये स्वर्ण या रजत पात्रों में ही भोजन करती है।

हंसकुंवरि : पर यह सर्वत्र सम्भव नही। इसलिए मिट्टी का पात्र व्यापक रूप से शुद्ध मानते हैं।

इस प्रकार विचारों का आदान-प्रदान होता रहा और रजत के पात्रो में विविध प्रकार के फलाहारी व्यञ्जनों को सब ग्रहण करते जाते। चाय के पश्चात सब लोग समुद्र के किनारे टहलने निकले और पास में पडी काष्ठ पीठिका पर जाकर बैठ गये।

उषा : भावी कार्य क्रम बनाना है।

मार्गेट : हम लोग प्रातः जलपान कर राज महल आ जायेंगे और आपके साथ साथ प्रदीप का स्वागत करने स्टेशन चलेंगे।

राजकुमार राजमहल में जलपान कर हमे अनुग्रहीत करे।

श्रीमती फिलिप : आपको बार २ कष्ट देना शोभा नही देता।

यह तो मुझे और भी प्रसन्नता होगी।

मार्गेट : आपकी प्रसन्नता से हमारी भी प्रसन्नता है।

उषा : मध्यान्होत्तर ढाई बजे शान्ताक्रुज पहुंचना होगा ।

डा० फिलिप : उचित होगा यदि हम लोग वायुयान आने के पन्द्रह मिनट पूर्व वहाँ पहुंचे, जिससे स्वागत करने में सुविधा हो ।

राजकुमार : आपको मध्याह्न में कोई विशेष असुविधा तो न होगी ।

श्री मती फिलिप : उनके दर्शनों से विशेष आनन्द मिलेगा ।

मार्गेट : हमारी महारानी भी तो साथ में होगी ।

राजकुमार : अनुमान तो यही है ।

इतना कहकर सब लोग वहा से उठकर अपने २ आवास की ओर चले ।

चतुर्दश पराग

प्रकृति की उषा ने प्राच्य नभ में अरुणिमा बिखेर दी थी। पाटल की कलियाँ प्रस्फुटित होकर प्रभात की वायु में सौरभ उड़ेल रही थी, बनों में विहंगावलियां चहक रही थीं, सभी ने अपने कक्ष के वातायन खोले और नित्य कर्म से निवृत्त होकर बम्बई के विक्टोरियाटर्मिनस स्टेशन पर प्रदीप के स्वागतार्थ आध घन्टे पूर्व ही पहुंच गये।

उषा, राजकुमार और हंसकुंवरि के हाथों में सुगन्धित पुष्प हार थे पर कुमारी मार्गेट, डा० फिलिप और श्रीमती फिलिप के हाथों में सुन्दर सुगन्धित विभिन्न रंगों के पुष्पों के गुच्छे थे। कुछ ही मिनटों में ट्रेन प्लेटफार्म पर पहुची। प्रदीप उत्सुकता से डिब्बे की खिड़की से प्लेटफार्म की ओर देख रहे थे। उषा की दृष्टि प्रदीप पर पड़ी और वह ट्रेन रुकने के पूर्व ही प्रदीप के डिब्बे के पास पहुंच गई। शीघ्र ही प्रदीप को पुष्पाञ्जलि समर्पित कर चरण स्पर्श करती। तत्पश्चात प्रदीप के दर्शनार्थ आतुर कुमारी मार्गेट पुष्पों का गुच्छा भेंट करती हुई भारतीय सभ्यता और शिष्टता की प्रतीक बनकर अभिवादन करती। इस प्रकार सभी ने प्रदीप का अभिवादन किया। उषा ने सब का सांकेतिक परिचय कराया। प्रदीप, उषा, राजकुमार और कुमारी मार्गेट राजकुमार की पैकार्ड कार पर बैठे। डा० फिलिप श्री मती फिलिप तथा हंस कुंवरि दूसरी डा० फिलिप की कार पर बैठकर सब लोग राज महल की ओर चले। मार्ग में उषा ने कुमारी मार्गेट का प्रदीप से परिचय कराते हुये कहा: आप भारतीय दर्शन की पण्डिता एवं राजकमार की भावी धर्म पत्नी हैं।

प्रदीप· मार्गेट और राजकुमार का अन्तर्राष्ट्रीय गठबन्धन विश्व-प्रेम का पथ-प्रदर्शक होगा।

राजकुमार ने प्रदीप से कहा: यह सब उषा की ही प्रेरणा से हो रहा है।

मार्गेट: उषा की ही आन्तरिक शक्ति ने हम दोनों के प्रेम का सूत्रपात किया। विश्व के समस्त दर्शनों की आत्मा भारत की ही देन है।

प्रदीप : मानवता को प्रेम बन्धन में बांधना ही उषा का ध्येय है।

राजकुमार : उषा दया की मूर्ति एवं निर्मल सिन्धु के समान है जिसमें मानव अपने मल विकारों को धोकर शुद्ध किया करता है।

उषा : हमारी मार्गेट शील सौजन्य की मूर्ति है। जो उसके सौन्दर्य को और भी द्विगुणित करता है।

प्रदीप : पाश्चात्य नारी का हृदय-सौन्दर्य और वाणी की कोमलता उसका मुख्य भूषण है।

मार्गेट : भारतीय नारी का त्याग और बलिदान विश्व में सर्वोत्कृष्ट सुना जाता था जिसका प्रत्यक्ष अनुभव मुझे उषा के जीवन दर्शन से हुआ।

प्रदीप . मानवता के नाते पाश्चात्य और प्राच्य का परस्पर प्रेम का स्थापकत्व सर्वथा अपेक्षित है।

मार्गेट . पाश्चात्य राष्ट्र, राकेट स्पुतनिक, एटम-बम, हाइड्रोजन-बम ऐसे वैज्ञानिकों को जन्म देने में अपना गर्व समझते हैं जबकि भारत ऐसे प्राच्य देश आध्यात्मिक शक्ति द्वारा आत्म तत्व का बोध कराकर मानवता की ज्योति जलाते हैं। आज के युग में विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय हो जाय तो वैज्ञानिकों का मन मस्तिष्क मानव के कल्याण मूलक रचनात्मक प्रवृत्तियों की ओर केन्द्रित हो जाय। उस समय समस्त राष्ट्रों के प्राणियों में परस्पर दया, ममता और सौहार्द की भावना प्रस्फुटित होकर संसार में एक धर्म और एक समाज का सृजन हो।

उषा . विदुषी मार्गेट के ऐसे दार्शनिक विचार आत्म-तत्व के अन्तर्नाद में गूंज कर निकले हैं इसमें अवश्य कोई रहस्य है। सम्भव है निकट भविष्य में एक विश्व-धर्म की कल्पना सत्य प्रमाणित हो जाय।

इतने में राज-महल आया और सब कार से उतर कर मुख्य-कक्ष में जाकर बैठे। राजकुमार ने डा० फिलिप तथा उनकी श्रीमती जी से प्रदीप का स्वस्थ चित्त होकर परिचय कराया।

डा० फिलिप : आपके दर्शनों का लाभ मुझे दो बार हुआ है।

प्रदीप : मुझे भी स्मरण हो रहा है।

आपका पाण्डित्य-पूर्ण भाषण और विचार की उदारता मन को आकर्षित कर लेती है।

प्रदीप : यह आप महानुभावों की सौजन्यता है जो आप हमें इतना ऊँचा उठा रहे हैं।

श्रीमती फिलिप : आपका जैसा नाम वैसे गुण। आपकी गुण गरिमा डा० साहब से सुना करते थे और प्राय समाचार पत्रों द्वारा भी पढ़ने को मिली; परन्तु आज आपके साक्षात्कार कर आन्तरिक आनन्द प्राप्त हुआ।

प्रदीप : पाश्चात्य देशों में भ्रमण करने से मुझे वहां की नारी की शक्ति, भक्ति एवं ममता का पता लगा। आज का मानव कठपुतली की तरह नारी के संकेत पर नाचता है और उसके समर्पण पर द्रवीभूत होता है। इसलिये नारी समाज से मानवता चेत सकती है और अन्तर्राष्ट्रीय प्रेम की लड़ियां जुड़ सकती है।

राजकुमार ने वार्तालाप के अन्तर्गत बोलते हुये कहा : आप शीघ्र ही स्नान, ध्यान से निवृत्त हो लें। समय कम है।

प्रदीप शीघ्र ही स्नान ध्यान करने चले गये। इधर सब लोग कुछ देर अपने २ कक्ष में गये। कुछ देर बाद प्रदीप नित्य कर्म से निवृत्त होकर आये। और सब एक साथ भोजन पर बैठकर भावी कार्यक्रम बनाते।

राजकुमार ने प्रदीप से कहा : हमारे महाराजाधिराज अभी ढाई बजे मध्याह्न शान्ताकुंज पर वायुयान से आने वाले हैं; अतः उनके स्वागतार्थ जाना है।

प्रदीप : बड़े हर्ष और संयोग की बात। मुझे भी उनके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हो जायगा।

उषा : सम्भवत महारानी भी साथ मे हो।

प्रदीप : और भी उत्तम।

उषा : कुमारी मार्गेट के साथ राजकुमार का विवाह-संस्कार किस प्रकार वैदिक रीति से सम्पन्न हो, इसकी युक्ति सोचना है जिससे महाराजाधिराज सपरिवार सहर्ष इस सम्बन्ध को स्वीकार कर लें।

प्रदीप : तुम्हारी दैवी शक्ति असम्भव को भी सम्भव कर सकती है।

उषा : प्रदीप के किरणों से ही उषा का प्रकाश विहंस उठता है।

राजकुमार : उषा का आत्म-तत्व विवेचन कितना सुन्दर है।

मार्गेट : मुझे तो अति ही प्रिय लगा।

हंसकुंवरि : कुमारी मार्गेट को भारतीय वेषभूषा से अलंकृत करना है।

उषा : मैं अपनी मार्गेट को इन्द्र धनुषी साड़ी एवं बाडी पहनाकर शान्ताकुंज ले चलूंगी।

मार्गेट : मुझे भारतीय वेष भूषा अति प्रिय है पर क्या करूं पहनना नहीं जानती। संकोचवश कुछ कह न सकी।

श्रीमती फिलिप : न हो शीघ्र हाट से बेटी के लिये साड़ी अभी जाकर ले लूंगी ।

उषा : समयाभाव के कारण सम्भव न होगा । मेरे पास परिधान के कई सेट हैं ।

डा० फिलिप . उषा को हर बात का ध्यान रहता है ।

हंसकुंवरि समय निकट है ।

भोजन समाप्त कर सब लोग कुछ काल के लिये विश्राम कक्ष में गये पर उषा और हंसकुंवरि कुमारी मार्गेट का शृङ्गार करने लगी । भारतीय वेषभूषा से अलङ्कृत कुमारी मार्गेट शृङ्गार कर ज्यों ही बाहर आई उसका सौन्दर्य द्विगुणित हो उठा । छरहरा पतले शरीर का गौरवर्ण, इन्द्रधनुषी रेशमी परिधान में परिवेष्ठित होकर अनुपम लावण्य बिखेरने लगा । कोमल गौर चरणों पर गुलाबी महावर एवं राजस्थान के गंगा जमुनी काम की मखमली चप्पल अद्वितीय शोभा दर्शा रही थी । सूक्ष्म कटि प्रदेश की कमनीयता सम्मुन्नत उरोजों को कसे हुये हरे ब्लाउज़ के साथ अनुपम सौन्दर्य उड़ेल रही थी । ग्रीवा में पड़ा हुआ एवं उभरे हुये वक्षों पर झूलता हुआ रत्न जटित हार नैनों को अपनी ओर बरबस खींच लेता था । पतले प्रवाल-वर्णीय अधर, पाटलीय-कमनीयता-सदृश कपोल, शुक सदृश नासिका एवं मादक-रस से परिपूर्ण बड़े २ नीले नेत्र उसके रूप की गरिमा के परिचायक थे । प्रशस्त बंकिम भ्रकुटियों के मध्य में उषा द्वारा लगाई हुई छोटी सी कुंकुम की बिन्दी ऐसी आभासित होती थी कि प्रियतम के अमङ्गल नाश हेतु शुभ्राकाश में मङ्गलतारा उदित हुआ है । कंधों तक लहराते हुये उसके स्वर्णिम केश-राशि को जब उषा ने स्पर्श किया तो कहा : सुन्दरी ! जब केश राशि के बीच भारतीय-प्रिय-सुहाग-सूचक हल्की सिंदूर की रेखा खिंच जायगी तब तुम विश्वमोहिनी बनकर प्रियतम का अखण्ड सौभाग्य प्राप्त करोगी ।

कुमारी मार्गेट की कान्त कमनीयता ने राजकुमार के मन को हर लिया । मानो उसका संसार उसके सौन्दर्य मे समा गया ।

प्रदीप . राजकुमार कैसे भाग्यशाली हैं । हम लोग तो मौलिक भाषणों से ही मानवता का पोषण करते रहे पर राजकुमार अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में स्वयं उदाहरण बन कर प्रस्तुत हो गये ।

राजकुमार : युग की पुकार मानव को प्रेरणा देती है । वह स्वयं अपनी दिशा

की ओर मानव को ले जाती है। जिसका नियन्ता एक अज्ञात शक्ति है। प्राणी तो एक निमित्त मात्र है।

उषा : हमारे राजकुमार वेद वेदाङ्ग के पारंगत, संस्कृत और अंगरेजी के प्रकाण्ड विद्वान और दर्शन के पंडित हैं। काल-धर्म की व्याख्या मूलक तथ्यों पर आपका गम्भीर अध्ययन है और आपने इस पर अनुसन्धान भी किया है।

प्रदीप : आपके सारगर्भित शब्दों से आपकी ज्ञान-गरिमा का पता चलता है।

मार्गेट : दर्शन शास्त्र में निमित्त, मात्र और हेतु पर विवेचन सुन्दर ढंग से किया गया है। राजकुमार की भावाभिव्यञ्जना कितनी सुन्दर है।

हंसकुंवरि : चलने का समय आ गया, कुमारिके।

राजमहल से पन्द्रह मील की दूरी पर मार्ग की भीड़ को पार करते हुये आम्नाकुञ्ज पर पहुँचे। भारतीय शिष्टता को अपनाती हुई कुमारी मार्गेट भी अन्य सबकी तरह विविध सुगन्धित घने पुष्पों से गुँथी हुई माला को हाथ में लिये थी। प्रकृति से गढ़ी हुई, आकाश की पुत्री उषा के समान, उषा के सौन्दर्य को यद्यपि मार्गेट न पाती फिर भी उसके मुख की छवि एवं लावण्यता तथा वाणी की माधुर्यता अप्सराओं से कुछ कम न थी। भारतीय रत्नाभूषणों के श्रृङ्गार से उसमें एक अद्भुत छटा प्रतिभासित होने लगी। उषा के इस कार्य कौशल एवं प्रसाधन की कला रञ्जना से श्रीमती रिचार्ड फिलिप का हृदय रसमय हो गया। अपनी मार्गेट के एक-एक पग को बार २ निहारती हुई आनन्द मे विभोर होने लगी।

डा० फिलिप ने कहा : आध्यात्मिक जगत का ऐसा आनन्द मानव को और कहा प्राप्त हो सकता है। उषा का जीवन मानवता का प्राण है।

राजकुमार : केवल अध्ययन से ही मानवता प्राप्त नही होती। सत्संग ही परम कल्याणप्रद है।

इसी मध्य मे महाराजाधिराज के वायुयान की ध्वनि क्षितिज से सुनाई पडी। सूर्य की रश्मियो से चमचमाता हुआ वायुयान निकट आ पहुचा। ज्यों २ वायुयान निकट आता दोनों पक्षों के मिलन की उत्सुकता बढती जाती। वायुयान उतरते ही आगे राजकुमार, प्रदीप, उषा और मार्गेट को दाये वाये लिये महाराजाधिराज श्री दिग्विजयसिंह और महाराणी श्रीमती यशोधरा के चरण स्पर्श करते। साथ ही प्रदीप, उषा और मार्गेट उन्हें हार पहनाकर चरण स्पर्श करते। तत्पश्चात हंसकुंवरि, डा० फिलिप और उनकी श्रीमती जी अभिवादन

करती और पृथ्वी के अन्तस्तक भेंट करती। राजकुमार सबका संक्षिप्त परिचय कराते हुये आगे बढ़े और कारों द्वारा आध घण्टे में सब राजमहल पहुंच गये। राजमहल के द्वारपाल तथा समस्त कर्मचारी गण ने द्वार पर अभिवादन किया। महाराजा और महारानी राजमहल पहुंचकर कुछ देर विश्राम के पश्चात नूतन वस्त्र पहनकर स्वस्थ चित्त हो चाय पर बैठे और सभी का सविस्तृत परिचय हुआ।

महाराजा ने कहा : पाश्चात्य और प्राच्य देशों के दार्शनिक विद्वानों का यह पुनीत मिलन विश्व प्रेम का पथ प्रशस्त करेगा।

महारानी बोली : उषा तो साक्षात देवी स्वरूपा प्रतीत होती है परन्तु पाश्चात्य देशों का प्रतिनिधित्व करने वाली कुमारी मार्गेट का आन्तरिक और वाह्य रूप-सौन्दर्य भी कुछ कम नहीं। ऐसा भास होता है कुमारी मार्गेट ने भारतीय दर्शन की आत्मा को अपने में धारण कर लिया है।

मार्गेट : भारतीय दर्शन ने मुझे अपना लिया और मैं उसमें लीन हो गई।

उषा : राजकुमार के दर्शन शास्त्र की ज्ञान गरिमा कुमारी मार्गेट को अधिक प्रिय लगी।

महारानी : दार्शनिक सार्वभौम-सह-अस्तित्व की मानता है। वह मानव जगत को अपना परिवार समझता है।

महाराजा : राजकुमार को बाल-काल से ही साहित्य और दर्शन में विशेष रुचि है। उन्हें यह सत्संग अधिक प्रिय है।

डा० फिलिप : हमारा आपका मिलन संयोग पूर्व जन्म के संस्कारों से सन्निहित है।

महाराजा : मुझे प्रसन्नता है कि पाश्चात्य दार्शनिक भी पूर्वजन्म के सिद्धान्त पर विश्वास करता है।

महारानी : हम लोग तो संस्कार को प्रधान समझते हैं। किससे किसका मिलन और वियोग कब और किस समय अथवा किस हेतु होता है यह सब काल के आधीन संस्कारों के वशीभूत होते हैं।

उषा : इसी काल की गति के अनुसार सतयुग त्रेता, द्वापर और कलियुग, इन चार युगों का आविर्भाव हुआ। जिन्हे हम युग धर्म कहते हैं। काल की गति में ढ़लते हुये युग धर्मानुसार मानव की प्रक्रियायें, आचार-विचार, यम-नियम आदि बदले जो उसी सांचे में ढलते गये।

महाराजा : उषा का दृष्टिकोण कितना व्यापक है। काल का कितना तार्किक विश्लेषण किया ।

प्रदीप : रोग का निदान करने में हमारी उषा प्रवीण है। साथ ही चिकित्सा में भी कुशला है।

हंस कुंवरि : संसार के रोगों में जात, मत, पन्थ, वर्ग, सम्प्रदाय आदि ऐसे भीषण रोग मानवता को उबरने नहीं देते थे ऐसे धर्म संकटों की नाड़ी परख कर उषा ने ऐसी औषधि का अनुसन्धान किया है जिसके सेवन से इस प्रकार के सारे विकार आमूल नष्ट हो जायेंगे।

महारानी उत्सुकता से बोली : उषा बताने का कष्ट करेंगी ?

उषा : प्रेमौषधि ।

कहाँ से प्राप्त होगी ?

भक्ति और ज्ञान से ।

भक्ति और ज्ञान की उपलब्धि कैसे और कहां से होगी ?

स्वाध्याय, जप, ध्यान और सत्संग से ।

आपने अनोपान तो बहुत ही सुन्दर बताया। पर इसका साधन ही समस्या है।

महाराजा : उषा यदि दीक्षा देने की कृपा करें तो बड़ा उत्तम हो।

महारानी : यह सुअवसर भी संस्कार वश मिल गया है।

राजकुमार : हम लोगों का यह सौभाग्य होगा। यदि हम सभी को दीक्षा देने की कृपा करें।

कुमारी मार्गेट : मेरे मन में यह भावना प्रथम मिलन मे जन्म ले चुकी है। अतः मुझे भी यदि शिष्या बना लें तो बड़ी अनुग्रह।

उषा : गुरु शिष्य का सम्बन्ध बड़ा जटिल होता है। इसका निर्वाह करना ही कठिन है।

महारानी : आप जो भी आज्ञा देंगी उसका पालन होगा।

प्रदीप : ज्ञान-विज्ञान की कसौटी पर शुभ मुहूर्त्त का सम्यक दृष्टि से विचार कर दीक्षा देना न्याय संगत है।

हंस कुंवरि : उचित होगा यदि प्रथम महाराजाधिराज और महारानी को एक साथ दीक्षा दी जाय।

महाराजा : बम्बई के प्रसिद्ध दैवज्ञ यज्ञकान्त जी को फोन द्वारा शीघ्र बुला लें।

राजकुमार ने तत्क्षण दैवज्ञ जी को फोन किया और पन्द्रह मिनट के अन्दर वह अपनी कार द्वारा राजमहल आ पहुँचे। दैवज्ञ को देखते ही सबने प्रणाम किया और एक सुन्दर चाँदी की चौकी पर उन्हें आसीन किया। श्रद्धा भावना में महारानी अनेक प्रकार के फल, मिष्ठान्न और स्वर्ण मुद्रा दैवज्ञ जी को भेंट करते हुये शीघ्रातिशीघ्र दीक्षा लेने के लिये उत्तम मुहूर्त पूछी। दैवज्ञ ने महाराजा और महारानी का जन्माग एवम् राशियों के आधार पर उक्त दिन से तीसरे दिन प्रातःकाल आठ बजे स्थिर लग्न में उत्तम मुहूर्त का निर्णय दिया। अन्त में दैवज्ञ जी विदा हुये।

इस प्रसंग के साथ आठ का घण्टा बजा और सब चहल-पहल करते समुद्र के किनारे चल दिये। नौ बजे उधर डा० रिचार्ड फिलिप सपरिवार ताज-महल होटल की ओर परस्पर एक दूसरे से अभिवादन करते हुये गये और महाराजा सपरिवार उषा और हंस कुंवरि को लिये राजमहल आये। कुछ देर भोजन कर सब अपने शयन कक्ष में गये। दूसरे दिन प्रातःकाल जलपान के पश्चात महाराज ने राजकुमार को बुलाकर कहा : दीक्षा से सम्बन्धित समस्त सामग्री आज मंगाकर रख लेना होगा। राजकुमार ने शीघ्र निजी सचिव को बुलाकर, फल फूल, मिष्ठान्न, पीताम्बर, मेवा, आदि समस्त पूजन सामग्री लाने का आदेश दिया। कुछ ही देर में पूजन की समस्त सामग्री आ गई। लगभग दस बजे राजकुमार, प्रदीप, उषा और हंस कुंवरि ताज-महल होटल पहुंचे। कुमारी मार्गेट प्रतीक्षा कर ही रही थी। सबने एक दूसरे को शिष्टता पूर्वक अभिवादन किया।

राजकुमार : दीक्षा ग्रहण की भावना ने हमारी आशाओं का दीप जलाया।

मार्गेट : हमारे महाराजा और महारानी का जीवन सात्विक भावनाओं से ओत-प्रोत है।

प्रदीप : उषा के दार्शनिक भाषणों से यद्यपि उनके विचार-पोषक एवं श्रद्धालु देश-विदेश में व्याप्त हैं परन्तु शास्त्रीय विधि से दीक्षा देने का यह प्रथम अवसर होगा।

उषा : अन्तर्राष्ट्रीय समस्या की गुत्थियों को सुलझाने के लिये हमें अपने दार्शनिक सिद्धान्तों पर हर सम्भव साधन करना है।

रेवरेण्ड फिलिप : किसी समय मानव को एक ग्राम से दूसरे ग्राम जाने के लिये अधिक समय लगता था। आज के शीघ्रगामी वाहनों एवं वायुयानों ऐसे साधनों का नितान्त अभाव था। इसलिये मानव अपनी छोटी २ दुनिया को बटोरे अगणित टुकड़ियों में यत्र तत्र बिखरा पड़ा था पर वैज्ञानिकों ने अपने प्रखर मस्तिष्क से मानव को एक दूसरे के निकट पहुंचने के लिये अक्षुण्य प्रयास किया। विश्व का मानव

आज कुछ ही घंटों में संसार का भ्रमण करने में सक्षम है। इस वैज्ञानिक देन ने मानव को एक दूसरे के निकट लाकर बैठाला और परस्पर प्रेम के आदान प्रदान का निकटतम साधन बना।

प्रदीप : इस दृष्टि से वैज्ञानिक सदैव धन्यवाद के पात्र है। मानव जगत उनका सदा आभारी रहेगा।

उषा : आज का पाश्चात्य वैज्ञानिक वाह्य जगत की ओर अपने विचारों को केन्द्रित किये है। परन्तु अध्यात्म-विज्ञान-वेत्ता आन्तरिक जगत में आनन्द की हिलोरे लेता है। इसे मूल को लेकर चलना है। भारत धर्म प्राण राष्ट्र है। धर्म ही आत्मा है, विज्ञान उसका स्वरूप देह है। देह और आत्मा की तदात्मीयता है। आत्मा का हनन अर्थात् देह का हनन। इसलिये पाश्चात्य वैज्ञानिको का भारत पर प्रहार मानो मानवता पर प्रहार करना है।

राजकुमार : उषा के इस गम्भीर आत्म-तत्व विवेचन से साधारण जन के पल्ले कुछ भी न पड़ेगा। इसलिये तथ्यों को उपहार रूप में प्रस्तुत कर सके तो अच्छा हो।

उषा : आज सायकाल का क्या आयोजन है?

मार्गेट : हम आप सबको अपने यहाँ चाय पर आमन्त्रित करते हैं।

राजकुमार : पता नही महाराजाधिराज का क्या विचार हो।

डा० फिलिप : उन्हे भी अभी जाकर आमन्त्रित करेंगे।

इतने में होटल का कर्मचारी रजत पात्रो मे फलों का रस लाया सब लोग रसास्वादन कर होटल के सामने पुष्प वाटिका मे बैठे और थोड़ी वार्तालाप के पश्चात् अपने आवास चले गये।

कुछ देर बाद डा० फिलिप राजमहल गये और महाराजाधिराज को सपत्नीक ताज-महल होटल में चाय पर सायंकाल आने के लिये आमन्त्रित किया। महाराजाधिराज ने सपरिवार सहर्ष आने की स्वीकृति दी। नियत समय पर ताजमहल होटल सब लोग पहुँच गये और चाय के साथ वार्तालाप आरम्भ हुआ।

डा० फिलिप ने महाराज से निवेदन किया। आपने हमारा आग्रह स्वीकार कर कृत-कृत्य कर दिया।

यह आपकी सौजन्यता है, डाक्टर फिलिप।

महारानी : आपकी मार्गेट का स्वभाव मुझे बहुत प्रिय लगा।

मार्गेट : मुझे आपके दर्शन से स्वाभाविक अपनापन मिला ।

उषा : इसमें पूर्व जन्म के संस्कार सन्निहित हैं ।

महाराजा : इस रहस्य को समझने की क्षमता आप ही में है ।

प्रदीप : एक पद है । 'पूर्व जन्म के दृढ़ संस्कार से अंकुर, अमर यह पूत प्रीति, फलती आती है सदैव यह सुखद सलोनी रीति ।।

महाराजा : आप कवि भी हैं ।

प्रदीप : कवि भी क्या पर यह कवि की कल्पना है ।

महारानी : कल्पनाओं से मानवता पनपी ।

उषा : कल्पना ने सृष्टि का सृजन किया ।

मार्गेट : कल्पना में ही संसार बसा है ।

उषा : हमारी मार्गेट तो आत्म-तत्व पर पहुंच गई ।

महारानी : हमारे राजकुमार को तत्व-मीमांसा का अच्छा अध्ययन है । पर पता नहीं इस समय मौन हैं ।

राजकुमार : उषा स्वयं हंस वाहिनी की उपासिका है । उनके समक्ष मुझे इन गूढ़ तथ्यों का कुछ कहना शोभा नहीं देता ।

उषा : भावाभिव्यञ्जनाओं का आहार-विहार कर मन स्वस्थ होता है ।

हंस कुंवरि : क्या सदा दार्शनिक विवेचन होते रहेंगे ?

श्रीमती फिलिप : दार्शनिकों का यही आहार-विहार है ।

इतने में छै का घंटा बजा और सब उठकर एक दूसरे को अभिवादन करते हुए अपने आवास की ओर चल दिये ।

महाराजा और महारानी राजमहल आकर परस्पर विचार विनिमय करने लगे ।

महाराजा : राजकुमार बाईस वर्ष के हो गये पर उनके मनोनुकूल दार्शनिक विचारधारा की कोई कन्या नहीं मिलती ।

महारानी : आज शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता है । लड़के पढ़ी लिखी विदुषी कन्यायें अपनी योग्यता को आंकते हुये चाहते हैं ।

पर हमारे क्षत्री-समाज में इतनी सुयोग्य विदुषी कन्यायें कितनी होंगी ।

यही विलम्ब का कारण है । एक से एक रूपवती कुमारियां हमारे समाज में हैं जिन्हें देखकर हमारा जी ललक उठता है । पर दार्शनिकों की कमी है ।

महाराजा : आपने यद्यपि उस कोटि की शिक्षा नहीं पाई पर रूप के साथ मन का सौन्दर्य भी है।

महारानी . मार्गेट के समान राजकुमार तो शिक्षा, ज्ञान, रूप और मन, सभी का सौन्दर्य चाहते हैं।

मार्गेट मे और तो सभी गुण राजकुमार के अनुकूल हो सकते हैं पर आंख की पुतली का सौन्दर्य संभवतः उनके मन को न भाये।

आपने बात तो ठीक ही कही। उषा के समान नेत्रों के सौन्दर्य को तो वह पाती नहीं।

पाश्चात्य और प्राच्य की भूमि का अन्तर प्रकृति-जन्य है।

प्रदीप कितने भाग्यशाली हैं भी जो उषा ऐसी देवि उन्हे मिली।

यह अपने प्रारब्ध-कर्म और संस्कार की बात है।

सभी गुणों से सम्पन्न, मन वाञ्छित लड़की ढूंढना और फिर कुण्डलियों द्वारा निर्णय के पश्चात विवाह का परिणाम देखना, एक समस्या है।

बिना कुण्डलियों का परस्पर मिलान कराये विवाह कैसे सम्भव है। सौराष्ट्र और विजया नगरम् की राज कुमारियां राजकुमार के विचारानुसार सभी गुण सम्पन्न थीं। परन्तु जन्म कुण्डलियों के न मिलने से आशाओ पर पानी फिर गया।

कल प्रातः दीक्षा लेने के बाद उषा पथ-प्रदर्शिका हो ही जायेगी। यह सब भार गुरुजनों पर छोड़कर हम हलके हो जायेंगे।

हमारी महारानी बडी सूझ बूझ की हैं। राजकुमार की भी उन पर अकाट्य श्रद्धा है। उनकी बात टाल नहीं सकते। आइये इस प्रसग को समाप्त कर भोजन कक्ष मे चलें।

दूसरे दिन प्रातः महाराजा दिग्विजय सिंह ने महारानी यशोधरा के साथ गांठ जोड़कर रेशमी पीताम्बर पहिने पूजन कक्ष मे प्रवेश किया। देवमन्दिर के पुजारी ने दीक्षा से सम्बन्धित नूतन रजत के थाल, पांच अन्य रजत पात्र, ग्यारह रेशमी साड़ियां, रत्न जड़ित आभूषण, हल्दी, कुंकुम, गंध, पुष्पहार, धूप, दीप, विविध प्रकार के फल और मिष्ठान्न, ग्यारह स्वर्ण मुद्रायें आदि लेकर पूजन कक्ष में रख दिया था। कुछ ही क्षण बाद उषा ने गम्भीर मुद्रा से रेशमी श्वेत परिधान धारण किये पूजन कक्ष में प्रवेश किया। महाराजा और महारानी ने उठकर प्रणाम किया। उषा, रजत की चौकी पर जाकर बैठ गई। विधिवत वैदिक मन्त्रों से दीक्षा का कार्य आध घण्टे में

समाप्त हुआ । स्फटिक की मालायें उषा ने दोनों को दीक्षा मन्त्र का जप करने के लिये दीं । दीक्षा-संस्कार के बाद सब अपने निवास कक्ष में गये । दो घण्टे के पश्चात् महाराजा और महारानी ने दस लाख का गुरु दक्षिणा के रूप में एक लक्षरौप्य-मुद्रा और राजस्थान की एक कोठी उषा को भेंट में दी ।

उषा : इसकी क्या आवश्यकता थी, महाराज ।

महारानी : गुरु दीक्षा पर यह तुच्छ भेंट मर्यादा के रूप में है । अन्त में उषा ने उक्त धन राशि एवं भवन को सार्वजनिक कार्यों के लिये संकल्पित कर दिया ।

महाराजा : अब आपसे एक प्रार्थना है ।

उषा : क्या चाहते हैं, महाराज ?

महारानी : राजकुमार के लिये कोई सुयोग्य वधू आपको ही खोज करना है ।

राजकुमार का दार्शनिक-जीवन जातीय-बन्धनों से परे है । जिसे आप सम्भवतः उचित न समझें ।

हां । इसका ध्यान तो रखना ही है अन्यथा हमारा धर्म-कर्म का रूप विकृत हो जायगा ।

उषा : दैव संयोग से यदि ऐसा हो जाय तो ''

महारानी : दैव संयोग की बात ही दूसरी है । विवशता सब कुछ कराती है ।

उषा : अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से यदि कोई समस्या उठ खड़ी हो तब''''

महाराजा : वस्तुतः सनातन-धर्म-परम्परा के सर्वथा प्रतिकूल तो होगा ही ।

उषा : सनातन धर्म है क्या? सनातन का अर्थ सदा रहने वाला है । यह वह धर्म है जो जीवमात्र का कल्याण चाहता है । इसी अविच्छिन्न रूपी सनातन धर्म से विश्व बंधुत्व की भावना जाग सकती है । इसी धर्म के स्रोत से ज्ञान रूपी सरस्वती, भक्ति रूपी मन्दाकिनी और कर्म रूपी कालिन्दी यह तीनों त्रिपथगा, त्रिधारायें, त्रिगुणात्मक भाव को लिये निकली है । धर्म का स्वरूप जातीय बन्धनों से परे है । सनातन धर्म के प्रणेता ऋषि मुनियो ने स्वयं जातीय बन्धनों को तोड़कर देश विदेशों की कन्याओं में विवाह किया । इतिहास और पुराण इनके साक्षी हैं । जाति, वर्ण, सम्प्रदाय और पन्थ ने धर्म पर आवरण डालकर उसे कूप मण्डूकत्व प्रदान कर दिया है जो विकार बनकर मानवता को खाये जा रहा है । इस प्रकार स्वार्थवादियो के जाल में फसकर कुछ लोग

पथ-भ्रष्ट हो गये थे। पर आज का मानव धर्म के सच्चे स्वरूप को परखने लगा है। संकीर्ण विचारों की ऊँची भरु भूमि मे वह भटकना नही चाहता। दार्शनिक इन विचारों मे श्रद्धा रहित नहीं। इसलिये सनातन धर्म के आधार पर प्रायश्चित अंग की पूर्ति करते हुये अन्तर्राष्ट्रीय विवाह धर्म के विरुद्ध नही।

महारानी विनम्र भाव से बोली : परिस्थिति-वश सभी कार्य क्षम्य होते है पर जातीय समाज इन बन्धनों मे जकड़ा है।

उषा : इसी प्रकार जब समर्थवान कर्म क्षेत्र में अग्रसर होगे तो साधारण जन स्वतः उनका अनुसरण करेंगे।

महाराजा ने पूछा : आपका संकेत सम्भवत कुमारी मार्गेट से तो नही है।

आप का अनुमान ठीक है।

मार्गेट तो विचारों से बहुत कुछ मिलती जुलती है।

हमे तो गुरु-आज्ञा शिरोधार्य है।

महारानी : प्रथम तो दोनों के जन्मांगो की ग्रह स्थिति एवं गुण गणना पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना होगा।

उषा : यह तो शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक दोनो दृष्टि से शिरोधार्य है।

आपसे अधिक हमारा कल्याण चाहने वाला कौन हो सकता है।

इतना कहकर दोनों ने उषा को प्रणाम किया और अपने कक्ष में जाकर परस्पर विचार विमर्श करने लगे।

महारानी : ऐसा आभासित होता है कि कुमारी मार्गेट का राजकुमार से प्रेम हो गया है।

आपका अनुमान यथार्थ है, महारानी।

यदि दोनों का ज्योतिर्विज्ञान की दृष्टि से बनाबन्न न बना तब ?

फिर तो राजकुमार भी विवाह को उचित न समझेगे।

हमारे गुरु जी भी सम्भवत: उचित न समझेगे।

संस्कार की ही बात है, जहा सयोग हो।

इस प्रसंग के पश्चात दोनों भोजन के लिये गये। उधर उषा शीघ्र ही राजकुमार को बुलाकर परिस्थिति से अवगत कराती और दोनों जन्मांगो को शीघ्र मंगवाती। बातों ही बातों मे दोनो के जन्मांग आ गये और दैवज्ञ श्री यज्ञकान्त शास्त्री जी को सायंकाल राज-महल मे बुलाया गया। उधर महाराज और महारानी अपने गुरु-कक्ष मे पहुंचे। दैवज्ञ जी के समक्ष राजकुमार और मार्गेट की

कुण्डलियां ग्रह मेलापक के लिये रखी गई। दैवज्ञ जी ने दोनों जन्मांगों का कर विवाह उत्तम कोटि का बताया और विवाह की तिथि माघ शुक्ल त्रयोदशी की।

प्रदीप : यह तिथि अधिक अनुकूल है। हम सभी सम्मिलित हो सकेंगे।

हंसकुंवरि : यद्यपि समय कम है पर आजकल क्या असुविधा।

महाराजा : विवाह भारतीय पद्धति से ही होगा।

उषा : सभी आवश्यक कृत्य परम्परानुगत किये जायेंगे।

महारानी : इस विवाह में सादगी में ही शोभा है।

इस प्रकार विवाह की योजना तत्क्षण बन गई। उषा ने शीघ्र ही डा० फिलिप का फोन पर बुलाकर सपरिवार राज महल आने को कहा। डा० शीघ्र आ गये और विवाह का निर्णय सुनाया गया।

डा० फिलिप ने कहा : मैं आप सबका आभारी हूं।

महाराजा : बम्बई के इसी राज महल में विवाह कर दिया जायगा।

डा० फिलिप : यह तो आपकी महान अनुकम्पा है।

श्री मती फिलिप : महाराजाधिराज की उदारता के लिये मैं सदा कृतज्ञ

महाराजा : गुरुजनों की कृपा और आशीर्वाद है।

डा० फिलिप : परम आदरणीया उषा की ही कृपा का फल है।

महारानी : यथार्थ है।

डा० फिलिप : मानव समाज किसी व्यक्ति विशेष को उसके गुणों की का आदर करता है।

महाराजा : विवाह की तिथि माघ कृष्ण त्रयोदशी निश्चित हुई है। एक मास शेष है। विवाह से सम्बन्धित कुछ आवश्यक प्रबन्ध करना ही होगा

महारानी : उत्तम होगा यदि रेवरेण्ड फिलिप सपरिवार होटल से महल में आकर ठहर जायें।

डा० फिलिप : आपकी बड़ी उदारता।

महाराजा : हम लोग कल प्रातः वायुयान से राजस्थान चले ही जायेंगे।

इतने में डा० फिलिप ने सपरिवार अभिवादन किया और अपने त. होटल चल दिये।

इधर महाराजा, महारानी राजकुमार को बुलाकर विचार विमर्श करने

महारानी : पाश्चात्य और प्राच्य संस्कृतियों के अन्तर्निहित प्रेम को वैवाहिक बन्धनों द्वारा निकट लाने की दृष्टि से ही सम्भवत तुमने कुमारी मार्गेट को अपनाया।

राजकुमार : इसलिये विशेष कि वह भारतीय दर्शन की प्रतीक है।

महाराजा : मानव की समस्यायें ही किसी मानव को घेर कर विवश कर देती है।

राजकुमार : आत्म तत्व की कसौटी पर खरी भी उतरी।

महाराजा : दार्शनिक की भूख इसी से मिट सकती है।

महारानी : फिर भी संस्कार प्रधान होता ही है।

महाराजा : कल प्रातःकाल राजस्थान जाने के लिये दो सीटें वायुयान मे सुरक्षित करा देना, राजकुमार।

राजकुमार : जो आज्ञा।

कुछ देर पश्चात दोनों ने उषा के कक्ष में जाकर अभिवादन किया और वैवाहिक कृत्यों पर विचार विनिमय हुआ।

महारानी : इस विवाह की कार्य पद्धति क्या निर्धारित होगी?

उषा : प्राच्य और पाश्चात्य का समन्वय-वादी दृष्टिकोण।

देवी-देवताओं की मान्य-मान्यतायें एव उनकी स्थापना पूजा-अर्चना तो हमारे धर्म शास्त्र के अनुसार क्या सम्भव होगा।

सभी कार्य धर्म शास्त्र विहित ही मान्य है। इस प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय विवाह धर्म का आदर्श स्थापित करते हैं।

हमारे सनातन धर्म के आचार्य पण्डित प्रवर इसे सम्भवतः उचित न समझें।

यह उनकी कूप मण्डूकता होगी। वस्तुतः वह सनातन धर्म के भावार्थ को ही नहीं समझे।

आपही के आदेशानुसार सारे वैवाहिक कृत्य करना है। अतः आप विवाह के पन्द्रह दिन पूर्व राजस्थान आकर दर्शन दे।

सभी कार्य सुचारुता से हो जायेंगे।

इतने मे दोनों उषा को प्रणाम कर विश्राम कक्ष मे गये। दूसरे दिन प्रात नौ बजे वायुयान का समय राजस्थान जाने के लिये नियत था। अत सब लोग नित्य कर्म से निवृत्त होकर तैयार हो गये। डा. रिचार्ड फिलिप भी सपरिवार समय पर आ गये और शान्ताक्रुज तक सब पहुचाने गये। वायुयान पर बैठने के पूर्व सबने एक दूसरे का अभिवादन किया। राजकुमार ने चरण स्पर्श किया तत्पश्चात कुमारी

मार्गरेट भारतीय शिष्टता की प्रतीक बनकर ज्यों ही महाराजा और महारानी के चरण स्पर्श करती, महारानी का हृदय प्रेम से भर आया और उसे हृदय लगाया। उषा ने आशीर्वाद दिया। इस दृश्य ने अन्तर्राष्ट्रीय प्रेम बन्धनों को और भी सुदृढ़ कर दिया। उपस्थित नर नारियों ने इस प्रेम रस की विलक्षणता का रसास्वादन किया।

उसी दिन सायंकाल डा० फिलिप सपरिवार होटल से राजभवन आ गये। कुछ ही देर में चाय पर बैठकर भावी कार्य क्रम पर विचार हुआ।

डा० फिलिप : मुझे इस विवाह में क्या २ करना होगा।

उषा : सभी अभीष्ट मित्रों और सम्बन्धियों को आमन्त्रण कर वर पक्ष के लोगों का स्वागत सत्कार।

वैवाहिक संस्कार के अवसर पर कुछ विशेष कार्यक्रम।

विविध आचार्यों एवं महानुभावों के अभिनन्दन शुभ कामनायें एवं आशीर्वाद।

प्रदीप : राजकुमार और मार्गरेट का आदर्श विवाह विश्व प्रेम की भावना जगायेगा।

श्री मती फिलिप : इसी प्रकार यदि प्रेम आध्यात्मिकता के आधार पर विश्व में पल्लवित होता गया तो निश्चय ही मानव की सभी समस्यायें सुलझती जायेंगी।

हंस कुंवरि : राजकुमार की मन वांछित कामना सफल हुई।

राजकुमार : आपही के वरद हस्त से यह सब संस्कार बने।

प्रदीप : इस प्रेम सूत्र से राजकुमार की अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति होगी।

उषा : अब हमें अपने कार्य क्षेत्र में और भी महत्व पूर्ण योग मिलेगा।

कुमारी मार्गरेट : मुझे जो भी सेवायें करने का अवसर देंगी उसका निर्वाह करूंगी।

उषा . धर्म के नाम पर बिखरे हुये प्राणियों में धर्म के ही मूल मन्त्र को भर कर धर्म की ज्योति जगाना है।

डा० फिलिप : धर्म के नाम पर वाद-विवाद एवं मत-मतान्तरों को धर्म ही सुलझा सकता है, मानवता ही धर्म है। आपके साथ हम सभी हैं।

हंस कुंवरि : हम लोगों को भी कल प्रातःकाल जाना है। उषा के विवाह का सारा प्रबन्ध करना है। मार्गरेट का विवाह होने के सातवें दिन ही उषा के विवाह की तिथि निश्चित है।

राजकुमार : आपका कार्य क्षेत्र बहुत बड़ा है।

प्रदीप : निमंत्रण यदि हो सके तो उत्तम होगा।

राजकुमार ने टेलीफोन द्वारा निमंत्रण करा दिया। इसके पश्चात भोजन कर सब शयन कक्ष में चले गये। प्रातः जलपान के पश्चात सब लोग उषा को स्टेशन पहुंचाने गये। ट्रेन छूटने के पूर्व सबने एक दूसरे का अभिवादन किया, परन्तु मार्गेट के नेत्रों से स्नेह के अश्रु-बिन्दु छलके जिसे उषा ने अपने अंचल से पोंछ कर मार्गेट को हृदय से लगाते हुये सान्त्वना दी और सब एक दूसरे से विदा हुये।

त्रयोदशी सर्व सिद्धा तिथि और प्रदोष काल था। दिनमणि अनुराग की लालिमा से रंजित हो क्षितिज प्रतीची प्रिया के अङ्क मे उतर रहा था एवं प्राची से यामिनी सुन्दरी सुनहले तारों जड़ी नीली साड़ी पहने हुये भाल पर सिंदूरी मयंक बिन्दु को धारण किये सुहागिनी सी धीरे २ सानुराग बढ़ रही थी, इसी शुभ वेला पर दो तरुण प्राणी मधुमास के मधुर मिलन में पुष्पों से सुशोभित मंडप की ओर बढ़े। देश विदेश के नर-नरेश, रानी-महारानी, सभी धर्म, सम्प्रदाय के आचार्य वर्य, पाश्चात्य दार्शनिक एवं वैज्ञानिक इस सगम के पर्व पर सम्मिलित हुये। भारतीय दर्शन की आत्मा को अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज तक पहुंचाने वाली कुमारी उषा तथा प्रदीप अपने भक्त जनों एवं मित्रों को साथ लिये एक सप्ताह पूर्व बम्बई के राजमहल मे पहुंच गये थे। महाराजाधिराज दिग्विजयसिंह तथा महारानी यशोधरा सपरिवार पन्द्रह दिन पूर्व आ पहुंची थी। राजमहल का लान सौ गज चौड़ा और ढाई सौ गज लम्बा था। सारा लान अशोक पल्लवों के बन्धनवारों से सजा था। बीच मे नवरङ्गो से अलंकृत मण्डप की छटा उस भूमि की शोभा को द्विगुणित कर रही थी। राजकुमार द्वारा उपहार में दिये हुये समस्त रत्नाभूषण, साड़ियां तथा अन्य विशेष सामग्री अपनी ओर से उपहार रूप मे उषा लाई और एकान्त में कुमारी मार्गेट को उन रत्नालंकारों से सजाकर राजकुमार को साथ में लिये मण्डप में ले जाकर ज्यों ही बिठाला देश के चुने हुये वैदिक सस्वर मन्त्रों का उच्चारण करने लगे। तत्पश्चात सजी हुई नव युवतियों ने मंगल गीत गाये। पाणिग्रहण संस्कार वैदिक पद्धति एवं परम्परा के अनुसार सम्पन्न हुआ। कुछ देर पश्चात सभी धर्मो के आचार्यों ने अपनी २ परम्पराओं और रीतियों के अनुसार विविध भाषाओं में वैवाहिक कृत्य सुसम्पादित किये। अन्त में शुभ कामनायें और बधाइयों के संदेश सुनाये गये।

इस प्रकार राजकुमार के साथ कुमारी मार्गेट का पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न हुआ। दूसरे दिन प्रातः उषा, प्रदीप, हंस कुमारि तथा अन्य मित्र एवं भक्त जन राजमहल से वापिस जाने के लिये तैयार हुये। हंस कुमारि ने सभी को उषा के विवाह मे आमन्त्रित किया।

रिचार्ड फिलिप ने कहा, परम आदरणीया उषा ने धर्म के मर्म को जिस प्रकार मानव के अन्तर्जीवन में उतारा वह इतिहास में युग युग तक स्वर्ण अक्षरो मे लिखा जायगा।

हमें विश्वास है राजकुमार धर्म का पालन करते हुये हमारी मार्गेट को उसी भावनाओं में ढालेंगे। इन शब्दों के साथ कई कारों द्वारा उषा अपने परिवार के साथ राज महल से विदा हुई।

इधर उषा की विवाह वेला ज्यों २ निकट आती संख्यायिका अपनी प्रगति करती जाती। विश्व के समस्त राष्ट्रो मे हर जाति, धर्म, सम्प्रदाय तथा विभिन्न वर्ग के नर नारी अगणित संख्या मे उषा और प्रदीप के सच्चरित्र एवं सदुपदेशो से प्रभावित होकर उनके अनुयायी हो गये थे। इस कारण विवाह के पन्द्रह दिन पूर्व एक समाचार सम्मेलन द्वारा सबको पुण्य मिलन की सुखद वेला पर उपस्थित होने के लिये आमन्त्रित किया गया था।

समाचार पत्रो द्वारा प्रसारित सूचना पाते ही शुभ कामनायें और बधाइयों का ताता बंध गया। सहस्रो नर नारियों ने अपने आने की स्वीकृति भेजी।

वर-कन्या दोनों पक्षो का विवाह-स्थल एक दूसरे से लगभग दो मील की दूरी पर था। आमन्त्रित महानुभावों को ठहरने के लिये सभी संस्थायें, धर्म शालाये आवास-गृह एवं विद्यालय केन्द्रो मे प्रबन्ध किया गया।

वसन्त पञ्चमी की गोधूलि वेला थी। पिकी का स्वर वन प्रान्तर मे मुखरित हो रहा था, मधु प्रेमी भ्रमर अपनी भ्रमरियों के साथ कमलों में मधुपान करते हुये पंखुड़ियों के सम्पुट के बन्धन में बंध रहे थे एवं रजनी गंधा अपने सौरभ को वायु में बिखेर रही थी, वृक्षों पर पक्षी कलरव कर रहे थे, सरिताओं की तीव्र धारा मन्दगति से प्रवाहित हो रही थी, प्राची से कुमकुम मयंक रत्नाकर की धाराओं पर तैरता प्रकृति को अपने आलोक से मण्डित करता हुआ ऊपर उठ रहा था। देव गृहों में पूजन प्रारम्भ हो गया था एवं कामिनियां द्वार तथा वातायन पर उत्सुकमना अपने प्रियतम की पग-आहट को जुहार रही थी। विवाह मण्डप विविध सुगन्धित

पुष्पों से सुसज्जित हो रहा था। मण्डप की अष्टदिशाओं में रजत चौकियों पर रंग बिरंगी बंदिशा रखी थीं। वेदियों पर प्रतिष्ठापित दीपक युक्त रजत के कलशो पर ज्योति जगमगा रही थी। भारत के चुने हुये वैदिक मंत्रों और सधे कण्ठ को लिये सस्वर वेद पाठ करने के लिये एक ओर आतुर थे। सभी धर्मों के धर्म गुरु एव आचार्यवर्य अपनी अपनी धर्म परम्पराओं तथा मान्यताओं के अनुसार नव दम्पति को आशीर्वाद और बधाइयां देने सज-धज के साथ एकत्रित हुये थे। धर्म से भटके हुये प्राणियो का मार्ग बताने वाले दो युगुल प्राणी मुख्य वेदी पर ज्यो ही आकर आसीन हुये, चारो ओर वेद पाठ हुआ तत्पश्चात सभी धर्मों के प्रधान अपनी अपनी भाषाओ मे बारी बारी पाठ करते जाते। अन्तर्राष्ट्रीय धर्म ससद के सुसम्मानित सदस्यगण तथा अन्तर्राष्ट्रीय विश्व विद्यालय की छात्र छात्रायें इस शुभ अवसर पर अपनी अपनी श्रद्धाञ्जलिया अर्पित करने क्रमश सम्मिलित हुये।

श्रीमत क्राइस्ट अर्थात् ईसा मसीह धर्म के प्रमुख प्रतिनिधि श्री रेवरेन्ड मैथ्यू ग्रीनाल्ड ने कहा : आज के युग में जब कि धर्म के नाम पर दुनिया विभिन्न मत मतान्तरों में उलझ कर मानवता को गर्त की ओर लिये जा रही हो ऐसी विषम परिस्थिति में धर्म का यथार्थ दिग्दर्शन कराने के लिये जिन्होने अपना जीवन लगाया उन दो युगुल प्राणियों का नया संसार बसाने के लिये हम बधाई के साथ उनके चिरायु की मंगल कामना करते है।

बौद्ध धर्म के प्रमुख प्रतिनिधि आनन्द भिक्खु वात्सायन से कहा : उषा और प्रदीप नाम के दो तरुण प्राणी जिन्होने धर्म को परख कर संसार के सभी धर्मों के मूल सिद्धान्तों को लेते हुये 'अन्तर्राष्ट्रीय धर्म संसद' की स्थापना कर तथा सभी धर्मों मे प्राण डालकर उन्हें पुनरुज्जीवित किया, वह अस्तुत्य है। ऐसे युगुल प्राणियों का वैवाहिक जीवन सुखद हो। इस शुभ कामना को लेकर हम अपने बौद्ध धर्म की ओर से आप दोनों को बधाई देते हैं।

इस्लाम धर्म के सर्वोच्च माननीय उल्माओं और मुल्लाओं ने कहा : उषा और प्रदीप इन दो प्राणियों ने अपना जीवन विश्व व्यापी सभी धर्मों के मूल तत्वो को एक सूत्र में पिरो कर विश्व कल्याण के लिये जो कदम उठाया वह सराहनीय है। ऐसे नव दाम्पत्य की सुखद वेला पर हम अपने धर्म की ओर से उन्हे बधाई देते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय धर्म संसद के अध्यक्ष ने कहा : धर्म की ज्योति जगाने वाले दो प्राणी जिन्होंने अपनी आध्यात्मिक शक्ति से विश्व बंधुत्व की बेलि फैलाई उनके इस विवाहोपलक्ष में ससद तथा अपनी ओर से हम शुभ कामनाये अर्पित करते हैं।

धर्म निरपेक्षवाद, पूंजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद, साम्राज्यवाद आदि के प्रतिनिधियों ने मिलकर अपना एक संयुक्त अभिनन्दन पत्र समर्पित करते हुये कहा उषा और प्रदीप दो युगल शक्तियों ने मिलकर धर्म का यथार्थ निरूपण जिन दस लक्षणों के आधार पर किया और जाति-भेद वर्ण-भेद, समाज-भेद रंग-भेद, सम्प्रदाय-भेद ऐसे समस्त पारस्परिक भेदों को भुलाकर आदर्श धर्म को मानवता के हाथों जिस कुशलता से सौंपा है वह इस युग की पुकार है। विश्व का समस्त मानव यदि आज इन्हीं दस लक्षणों को अपने में धारण करले तो निश्चय ही समस्त लोक आनन्दमय हो जाय। यह आन्दोलन विश्व के कोने कोने में व्याप्त होकर मानव की सभी गुत्थियों को सुलझाने में सक्षम है। हमारी सभी समस्याओं को धर्म की वेदी पर सुलझाने में सतत प्रयत्नशील इन दोनों विभूतियों का हम नत आभार प्रदर्शित करते हुये उनकी इस मुक्त सेवा पर बधाई देते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय धर्म विश्व विद्यालय के कुलपति ने कहा आज का मानव कहीं धर्म और कहीं सम्प्रदाय के लिये लड़कर संघर्ष करता है। कहीं जाति-पांति और रंग-भेद नीति को लेकर एक दूसरे को नोचने, खसोटने और निगलने लगा है इन सब खाइयों को पाटने के लिये उषा और प्रदीप जैसी दो दैवी शक्तियों ने संसार के समक्ष जो ठोस और रचनात्मक पग उठाया वह प्रशंसनीय है। ऐसे प्राणियों का पुनीत दाम्पत्य जीवन अमर होकर संसार में सुख सरसाता रहे यही हमारी मंगल कामना है। इन शब्दों के साथ स्वर का कार्य ज्यों ही समाप्त हुआ वेद पाठियों ने दोनों का ग्रन्थि-बन्धन कर वेद ऋचाओं का गान आरम्भ किया। तत्क्षण आकाश से पुष्प वर्षा हुई और अप्सरायें रजत पात्रों में आरती संजोये मंगल गान करती हुई धर्म-पुत्री उषा और धर्म-पुत्र प्रदीप पर बार २ बलिहारी जाती।

इसके पश्चात हंस कुंवरि और जयन्ती बख्श सिंह सम्मिलित होकर उषा के कन्यादान की पावन रीति सम्पन्न करने बैठे और युवतियां मंगल गीत गातीं। कन्यादानके उपरान्त कुलदीप सिंह अपनी धर्म पत्नी सूर्यभानु कुंवरि के साथ नव दम्पति की न्योछावर करते। इस प्रकार उपस्थित सम्बन्धी, बन्धु एवं मित्र जन सभी वर वधू को आशीर्वाद देने और तिलक करने आये।

उपसंहार

कुछ समय पश्चात् ।

ग्रीष्म मास था संध्या अपने घूंघट-पट की ओट से झांक रही थी, पशु-पक्षी रैन बसेरा करने आ रहे थे, प्रदीप का भवनोद्यान भीनी भीनी पुष्पों की सुगन्ध बिखेर रहा था, किसलयकर चरणा, नवचम्पकांगी, मृगाङ्क-वदना, कज्जल-रञ्जित हरिणी-सदृश चंचलाक्षी, बालेन्दुरेखा-धवलितजयनी उषा दोनो कर्णों में शिरीष के पुष्प लगाये, वक्षस्थल पर सिंदुवार के सुमनो का हार धारण किये, कटि प्रदेश मे नव-रत्न जटित स्वर्ण की करधनी बांधे, तथा नवीन मृणाल-तन्तुओं के कंकण कर-कमल-प्रकोष्ठ-नाल-भुजाओं मे पहने, अपने प्रियतम प्रदीप का कर ग्रहण किये भुवन कक्ष के सोपान से धीरे धीरे उतरी और भवन के रमणीय उद्यान में पडी रजत आसंदियों पर दोनों बैठ गये ।

आकाश के सरोवर में हंस के समान विहार करने वाला तथा शृंगार-रस का उद्दीपक शुभ्र-मयंक, मुचकुन्द पुष्पों के केसर की शोभा के सदृश शोभा वाली किरणों को बिखेरता हुआ धरा पर धीरे धीरे उदय हो रहा था और अपने सुधा-रस पूरित शीतल रश्मियों से नव-दम्पति को सिंचित कर रहा था, ऐसे सुखद वातावरण मे उषा ने स्मित मुख हो प्रदीप की ओर निहारते हुये कहा : अब हम दोनो परिणय-सूत्र में बंध कर गृहस्थ-आश्रम-धर्म में उतर आये । धर्म के सत्यान्वेषण में हम दोनों चले और धर्म-पथ पर चलते हुये धर्म के अनेक सुमनो का संग्रह किया ।

हमारा धर्म कैसा व्यापक है, प्राण वल्लभे !

प्रदीप, स्नेह पूरित दृगों से उषा के मुख कान्ति की ओर देखते हुये बोले : धर्म के सत्यान्वेषण मे हमें धर्म की कैसी सुन्दर झांकियां देखने को मिली । मानव जाति को धर्म-संकटों में उलझते देखा, विविध धर्म सम्प्रदायों को धर्म की वेदी पर जलते देखा, अनेक जातियों को धर्म के आवरण में छिपते देखा, वर्ग-द्वेष, ऊंच-नीच, धर्म-विविधता

आदि को धर्म मञ्च पर प्रतिष्ठापित कर धर्म के स्वरूप को विकृत करने देखा; यह धर्म की कैसी विडम्बना है, हृदय वल्लभे!

उषा : हमारा धर्म निष्कलंक है। धर्म किसी प्रकार का किसी से अणुमात्र भी भेद-भाव नहीं रखता।

प्रदीप : धर्म का प्रतिनिधित्व करने वाला विश्व का अधिकांश धर्म-सम्प्रदाय-वर्ग आज धर्म के दसों लक्षणों को धारण करने की क्षमता नहीं रखता।

उषा : आज का धर्म-सम्प्रदाय द्वेष-पूर्ण भावनाओं को त्यागकर दल गत वर्गी-करण से प्रयत्नशील हो भटक रहा है।

प्रदीप : विश्व का बहु धर्म-समाज आदि में जिनके हाथों धर्म की पूरी बागडोर थी और जिसमें धर्म के सभी लक्षणों को ग्रहण करने की क्षमता थी, अनेक मत-मतान्तरों में समाकर संघर्ष का केन्द्र बन गया।

उषा : इसीलिये धर्म उन सम्प्रदायों से बहिर्मुख हो मानवता में आ गया।

प्रदीप : सत्य कहती हो, धर्म प्रिये! आज का अधिकांश धर्म सम्प्रदाय बिना धर्म के खोखला हो गया है। उसमें केवल धर्म का आवरण-मात्र ही रह गया है।

उषा ने अपने-प्रेम रस पूरित नेत्रों की पलकों पर धर्म के दसों लक्षणों का साधुवाद करते हुये कहा : 'धृति' ने हमें धैर्य रूपी धरा पर आसीन किया, 'क्षमा' ने अपकारी और उपकारी के प्रति समत्व का पाठ पढ़ाया, 'दम' ने हमारी रागात्मक वृत्तियों को निम्नगा होने से बचाया, 'अस्तेय' ने हमें पर-द्रव्य हरण से नदिान किया, 'शौच' ने हमारे मन, वचन और देह का शोधन किया, 'इन्द्रिय निग्रह' ने हमारी अन्तंजगत की इन्द्रिय-दासता से हमें मुक्त किया, 'धी' ने सत्य और असत्य का विवेचन कराया, 'विद्या' ने धर्म और अधर्म का यथार्थ ज्ञान दर्शाया, 'सत्य' ने हमारे अन्तःकरण को निर्मल किया और 'अक्रोध' ने हमारे शान्ति मार्ग का पथ प्रशस्त किया। वस्तुतः यही दस लक्षण धर्म के यथार्थ सत्य स्वरूप को अलंकृत करते हैं प्राणेश्वर!

प्रदीप ने चन्द्र रश्मियों की ओर एक पलक देखकर उषा के प्रवाल अधरों को अपनी कोमल उंगलियों से स्पर्श करते हुये कहा : सत्य प्रिये! तुम्हारी धारणा यथार्थ है। मुनि जी के सद् उपदेशों से हम सदा ऋणी रहेंगे।

उषाः—ज्ञान ने हमें धर्म का आलोक कराया, भक्ति ने हमारे धर्म का उद्भव किया, और वैराग्य ने हमें त्याग का मार्ग बताया, तन्त्र और योग ने धर्म के स्वरूप

को और भी अलंकृत कर धर्म की साधनाओं और सोपान का दिग्दर्शन कराया; हम उन सब के चिर ऋणी रहेंगे।

प्रदीप : मानवता आज धर्म के लिये कलप रही है। धर्म के दस लक्षणों को न धारण करने से आज का मानव दानव हो रहा है और धरा कम्पित हो रही है। परन्तु युग धर्म की साधना हेतु आज का सज्ञान प्राणी धर्म और परख के संवाद को अपने जीवन में उतारकर यदि "प्रेम" को अपनाले तो प्रेम-सुधा-सिन्धु में अवगाहित हो मानव अपने मन-मैल को धोकर विश्व-बन्धुत्व स्थापित कर सकता है। आज के युग मे धर्म के यथार्थ रूप को अलंकृत करने वाला एवं धर्म को विविध साम्प्रदायिक विभीषिका से एक मात्र मुक्त कराने वाला सुगम सोपान 'प्रेम' है।

उषा ने दीर्घ निश्वास भर कर कहा : प्रेम की परिभाषा मे मैंने लेखनी को मूक होते देखा, प्रेम तरुवर की कोमल कोपलों को मैंने कम्पित होते देखा, प्रेम को मैंने उसकी प्रणय-बेला में गतिशील होते देखा। प्रेम की उपासना साधारण नहीं, मेरे हृदयेश! मानव अपने प्राणों की बाजी लगा देता है।

प्रदीप ने उषा के वक्ष स्थल पर हाथ धरकर कहा : प्रेम-धर्म-धाम में पहुंचकर प्राणी एक स्वरूप हो जाता है। प्रेम ही अपनी रसना से विश्व के सभी राष्ट्रों मे परस्पर ममता के बीज अंकुरित कर सकता है। अम्बर और अवनि, प्रभात और सन्ध्या, उद्गम और संगम, यौवन और जरा, जन्म और मरण, प्रकृति और पुरुष, जल और थल, भय और प्रीति, पाप और पुण्य, गरल और सुधा तथा मेघ और जलधि की आत्माओं के मिलन का अक्षय श्रेय प्रेम ही को है। प्रेम ही अपने प्रसून बिछाकर मानवता मे नूतन जीवन डाल सकता है। प्रेम अपने सूत्र मे सभी धर्मों को गुंथकर विश्व-धर्म का रूप अलकृत कर सकता है।

उषा अपने प्रियतम को हृदयालिङ्गन करती हुई बोली : प्राणनाथ! तुमने प्रेम को धर्म मे उतारकर मानवता में प्राण डाल दिया। आस्था श्रद्धा और विश्वास प्रेम ही के सोपान है। धर्म का आधार प्रेम ही है, प्रेम ही के माध्यम से धर्म अपने दसों लक्षणों को सुचारुता से अलंकृत कर सकता है। प्रेम के बिना धर्म का जगत अलौना है। प्रेम ही समस्त धर्म सम्प्रदायो में समन्वय स्थापित कर सकता है। जाति, मत, रङ्ग-भेद-नीति, पूँजीवाद, साम्राज्यवाद, समाजवाद, साम्यवाद आदि की अनेकरूपता में प्रेम ही एकरूपता स्थापित कर सकता है।

प्रदीप : राजनीति के क्षेत्र में समस्त वादो में विश्व जन-नायक ब्रह्मीभूत श्री पं० जवाहर लाल नेहरू जी का सोशलिस्टिक सिक्युलिरिजम अर्थात समाजवादी

धर्मनिरपेक्षवाद ही वस्तुतः ऐसा वाद है जो धर्मों के सभी सद्गुणों को आत्मसात् करता है। ऐसा धर्म निरपेक्षवाद अन्त में समस्त धर्मों में एकत्व स्थापन वाली दृष्टि अपना कर शान्ति, सत्य, अपरिग्रह, बुद्ध-नेहरू-नीति, गांधीवाद, समाजवाद साम्यवाद आदि को अपनी माला मणियों में पिरोने की क्षमता रखता है।

उषा : जीवन के प्रत्येक क्षण में हम धर्म का दर्शन पाते हैं। हमारे जीवन की गति-विधि में धर्म ही नियन्त्रण करता है। बिना धर्म को धारण किये मानव का जीवन दुर्लभ है। भौतिकता की सत्ता धर्म ही पर टिकी है।

प्रदीप : हमारे धर्म के सत्य स्वरूप को देखकर विश्व का मानव अपनाने के लिये अधीर हो जायगा। इसलिये हमें अपने धर्म के इन सद्गुणों को जन-जन के हृदय में उतारने के लिये व्यापक प्रचार और प्रसार करना चाहिये।

उषा : मुझे विश्वास है कि हमारे धर्म आज भी यह परिभाषा संसार में चेतना जाग्रत करेगी और विश्व में एक नई शान्ति लायेगी।

प्रदीप अपनी प्रिया का कर ग्रहण करते हुये आगे बढ़े और उन्होंने आत्मदृष्टि से अन्त-क्षितिज में धर्म का साक्षात्कार कर मस्तक से अभिवादन किया और धर्म-पथ पर चल दिये।